जैन युग निर्माता

अथवा

आदर्श जैन चरित्र।

सम्पादक—

पं० मूलचन्द्र जैन "वत्सल"

विद्यारत्न-कलानिधि, साहित्यशास्त्री-दमोह।

ऐसे तो कई तीर्थंकर, कई महामुनि, कई महान् सम्राट् व कई आचार्योंके चरित्र प्रकट हो चुके हैं, लेकिन एक ऐसे ग्रन्थकी आवश्यकता थी जिसमें जैन युग-निर्माता, जैन युग-पुरुष व जैन युगाधार व जैन युगान्त महापुरुषोंके चरित्र एक साथ सरल भाषामें हों अतः ऐसे ऐतिहासिक कथा-ग्रन्थकी आवश्यकता इस ग्रन्थसे पूर्ण होगी।

इस ग्रन्थकी रचना जैनाचार्य, जैन कवियोंका इतिहास, ऐतिहासिक महापुरुष, आदि २ के रचयिता श्रीमान् पं० मूलचंदजी जैन वत्सल विद्यारत्न, विद्या-कलानिधि, साहित्यशास्त्री-दमोह-निवासीने महान् परिश्रमपूर्वक की है। दो वर्ष पहिलेकी बात है कि जब आपने हमें इस ग्रन्थके प्रकाशनके विषयमें लिखा तो हमने इसे देखकर इसके प्रकाशनकी स्वीकृति बड़े हर्षसे दी थी जो आज हम प्रकाशन कर रहे हैं। हमसे जितने हो सके उतने भाव-चित्र इस कथा-ग्रन्थमें संमिलित किये हैं जो पाठकोंको अधिक रुचिकर होंगे।

वत्सलजीकी लेखनी इतनी सरल व सुबोध होती है कि उसे पढ़नेसे मन नहीं हठता। अतः इस चरित्र ग्रन्थका अधिकाधिक प्रचार हो इसलिये हमने इसे प्रकट करना उचित समझा है। आशा है इस प्रथम आवृत्तिका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा। इसमें कोई त्रुटि रह गई हो तो सुज्ञ पाठक उन्हें सूचित करनेकी कृपा करें ताकि वे दूसरी आवृत्तिमें सुधर सकें।

ऐसे महान् ग्रन्थका संपादन करनेवाले पंडित वत्सलजी जैन समाजके महान् उपकारके पात्र हैं, तथा हम भी आपके परम उपकारी हैं कि आपने ऐसी महान् कथा-ग्रन्थकी रचना प्रकाशनार्थ भेज हमें कृतार्थ किया, अतः आप अतीव धन्यवादके पात्र हैं।

निवेदकः—

सूरत-वीर सं० २४७७
श्रावण सुदी १५
ता० १७-८-५१.

मूलचन्द किसनदास कापड़िया

-प्रकाशक।

प्रस्तावना

इन पुराने युगकी यह कथाएं हैं जब हमारी सभ्यता विकासके गर्भमें थी। तब भोग युगके महासागरसे कर्मयुगकी तरंगें किस मृदुगतिसे प्रवाहित हुयीं, कर्मयुगके आदिसे मानव सभ्यताका विकास किस तरह हुआ? रीति रिवाजोंकी आवश्यक्ता कब और क्यों हुई, उनकी उत्पत्ति और वृद्धि किन साधनोंसे हुई, इन सबका मनोरंजक वर्णन इन कथाओं द्वारा किया गया है।

प्राचीन भारतीय सभ्यताकी प्रारंभिक स्थिति क्या थी? प्राचीन भारतीय किस दिशामें थे? उनका अन्तिम आदर्श क्या था? आत्म विकासके लिए उनके हृदयमें कितना स्थान था, ये कथाएं यह सब रहस्य उद्घाटित करेंगी।

इन कथाओंमें उन चित्रोंके दर्शन होंगे जिनके बिना हमारी सभ्यताके विकासका चित्रपट अधूरा रह जाता है।

ये कथाएं केवल मनोरंजन मात्र नहीं हैं, किन्तु प्राचीन युगके प्रारंभ कालकी इन कथाओंको पढ़नेपर पाठकोंको इसमें और भी कुछ मिलेगा। इसमें सभ्यताके मूल बीज मिलेंगे और भारतीयोंका अतीत गौरव, महान त्याग और आत्मोत्सर्गकी पुण्य स्मृतियां प्राप्त होंगी।

इन कथाओं द्वारा प्राचीन मान्यताओंको प्राचीन कथानकोंमेंसे निकालकर, उन्हें मौलिक रूपमें जनताके सान्हने रखनेका थोड़ासा प्रयत्न किया गया है। इसमें वर्णित मान्यताओं और महत्वके

दृष्टिकोणमें मतभेद हो सकता है लेकिन उस समयकी परिस्थितिको साम्हने रखकर तुलना करनेवालोंको यह सब जंचेगा।

आदिकी ५ कथाएँ कर्मयोगी-ऋषभदेव, जयकुमार, सम्राट् भरत, श्रेयांसकुमार और बाहुबलि इनमें भारतकी आदि कर्मभूमिकी प्रवृतिऐं मिलेंगी, और अन्य कथाओंमें आत्म त्याग, सहनशीलता, वीरत्व, आत्मस्वातंत्र्य और पवित्र आत्मदर्शनकी छटा दिग्दर्शित होगी।

प्रत्येक युगका संक्रान्ति समय महत्व पूर्ण हुआ करता है। उस समय पुरानी सृष्टिके अंतके साथ नई सृष्टिका सृजन होता है। वह सृष्टि ही आगेकी रचनाके लिये आधारभूत हुआ करती है। उस समयकी परिस्थितिको काबूमें रखना, उद्वेलित जनताको संतोष देना और उसका मार्ग प्रदर्शन करना अत्यंत महत्वशाली होता है। यह कार्य महानतर व्यक्ति द्वारा ही पूर्ण होता है। परिस्थितिको सम्हालनेका चातुर्य, महत्व और ज्ञानवैभव किन्हीं विरले पुरुषोंमें हुआ करता है।

दिग्मूढ़ और अव्यवस्थित जनताका मार्ग प्रदर्शन साधारण महत्वका कार्य नहीं है, ऐसे महा संकटके समयमें जिन महापुरुषोंने पथ प्रदर्शकका कार्य किया है वे हमारी श्रद्धा और आदरके पात्र हैं। प्राचीन इतिहासमें उनका गौरवमय स्थान है। उन्हें अपनी श्रद्धांजलियां समर्पित करना हमारा कर्तव्य है।

आजके विकासवादके युगमें जब कि भौतिकविज्ञान आत्म-विज्ञानका स्थान ले रहा है, त्याग और आत्मसंतोषकी यह कथाएं नया जीवन और शांति दे सकेंगी। भोगवाद और इन्द्रिय विलासमें जीवनकी सफलता माननेवालोंके साम्हने आत्म प्रकाशका यह प्रदर्शन सफल हो सकेगा अथवा नहीं इन सन्देहोंमें हम नहीं पड़ना चाहते। हम तो जनताके साम्हने महापुरुषोंके महत्वको

प्रदर्शित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं इनमें यदि कुछ व्यक्तियोंको ही आत्मलाभ मिल सका तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

इन कथाओंके प्रकाशनका प्रथम श्रेय पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसको है जिन्होंने इन्हें भारतीय ज्ञानपीठ बनारस द्वारा प्रकाशित करानेके लिए मुझे उत्साहित किया था। अतः बहुत समयसे अस्त व्यस्त पड़ी हुयीं ये कथाएं पुनः प्रकाशनके योग्य बन सकीं। इन्होंने इस उपरोक्त संस्था द्वारा प्रकाशित करानेका अथक प्रयत्न किया, किन्तु वहांसे इनका प्रकाशन नहीं हो सका. तब जैन साहित्यके प्रकाशनमें उत्साही श्री० सेठ मूलचन्द किसनदासजी कापड़िया (मालिक, दि० जैन पुस्तकालय सूरत) द्वारा इन कथाओंका प्रकाशन सचित्र हो रहा है, इस प्रकाशनके लिए श्रीमान् कापड़ियाजी अतीव धन्यवादके पात्र हैं।

साहित्य सेवक—

मूलचन्द्र वत्सल।

विषय-सूची ।

प्रथम खंड—युगपुरुष ।

+ + +

तीसरा खंड—युगान्त ।

\+ \+ \+

चौथा खंड—परिशिष्ट ।

भूल शुद्धि—इस ग्रन्थमें पृ. ३८४ के बाद ३९५ छप गये हैं लेकिन सम्बन्ध बराबर है। अर्थात् पृष्ट ३८५ से ३९४ हैं ही नहीं, पाठक शंका न करें।

जैन युगनिर्माता-चित्रसूची।

नं० चित्र

युग पुरुष-संक्षिप्त परिचय।

ऋषभदेव—भोगभूमिके अंतमें आदिनाथ ऋषभदेवका जन्म हुआ था तब कर्मयुगका प्रारंभ हुआ। कल्पवृक्षोंका अभाव हो जानेपर आपने भोजनकी उचित व्यवस्था की। प्रत्येक व्यक्तिके योग्य मानव कर्तव्यका निरूपण किया। कर्मके अनुसार वर्ण व्यवस्थाकी स्थापना की, साधुमार्गका प्रदर्शन किया और आत्मधर्मकी विवेचना की। आपने कैलाश पर्वतसे निर्वाण लाभ लिया।
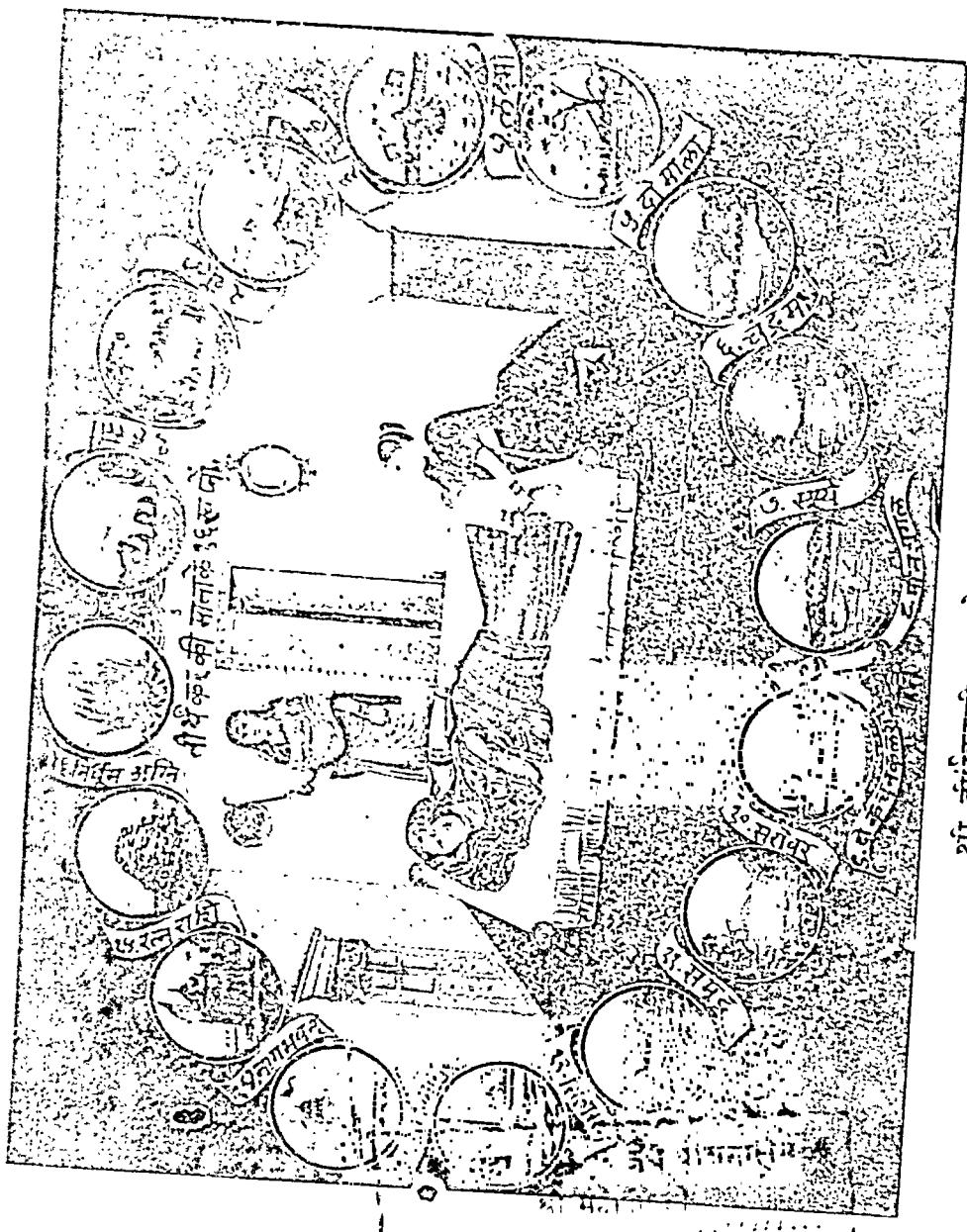
जयकुमार—चक्रवर्ति भरतके सेनापतिके रूपमें आपने म्लेच्छ राजाओंसे सर्व प्रथम युद्ध किया।
आपके समयमें स्वयंवर प्रथाका प्रारंभ हुआ। आप स्वयंवरके प्रथम विजेता थे।
एकपत्नी व्रतके आदर्शको आपने सर्व प्रथम स्थापित किया और देवताओं द्वारा परीक्षणमें सफल हुए।

चक्रवर्ति भरत—भारतके आप आदि चक्रवर्ती समाट् थे। आपने सम्पूर्ण भारत और म्लेच्छ खंडोंमें दिग्विजय की थी। आपने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की। आत्मज्ञानके आदर्शको आपने प्रदर्शित किया।

दानवीर श्रेयांसकुमार—आपने दान प्रथाका सर्व प्रथम प्रदर्शन किया, चार दानोंकी व्यवस्था की और उनकी विस्तृत विवेचना की।

महाबाहु बाहुबलि—आपने स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपने भाई चक्रवर्ति भरतसे युद्ध किया और उसमें विजयी हुए। वर्षों तक आप अचल समाधिमें स्थिर रहे।

श्री तीर्थंकरकी माताके १६ स्वप्न ।

॥ ॐ ॥

जैन युग-निर्माता।

प्रथम खंड-युगपुरुष।

कर्मयोगी श्री ऋषभदेव।

(१)

पवित्र पुरी अयोध्या अपनी पुण्य गोदमें अनेक महापुरुषोंको खिला चुकी है। प्राचीन युगसे लेकर आज तक वह पवित्र भूमि बनी हुई है।

कर्मयुगके प्रारंभ होनेका वह समय था। उस समय मानव-श्रेष्ठ नाभिराय अयोध्याके शासक थे। वे नीतिनिपुण और कुलधर्मके ज्ञाता

थे। उदारता और गंभीरता उनके गुण थे। किसी तरहकी कठिनाई आनेपर जनताको धैर्य देकर उसका पथ-प्रदर्शन करते थे।

नाभिरायकी पत्नी मरुदेवी थीं, वे सुशीला और पतिभक्ता थीं। वे भारतीय श्रेष्ठ नारीके संपूर्ण गुणोंसे पूर्ण थीं। सौन्दर्य, सद्गुण और सदाचारने उनका आश्रय लिया था। नारीसुलभ लज्जा और नम्रता उनके शरीरमें व्याप्त थी। अपने पतिके प्रत्येक कार्यमें वे पूर्ण सहयोग प्रदान करती थीं।

दंपतिका जीवन अत्यंत सुखपूर्ण था। उन्हें न तो अपने अधिकारोंके प्रति किसी प्रकारका झगड़ा था और न किसी कारणसे कभी भी घृणा और ईर्षाके विचार ही उठते थे, उनके हृदय सरल और निर्दोष थे। प्रेम और सहानुभूतिकी भावनाएं उनमें सदैव जागृत रहती थीं।

नाभिराय अपने शासन-कार्योंको पूर्ण मनोयोग सहित किया करते थे। उनके द्वारा जनताको पूर्ण न्याय सुख और संतोष मिलता था। नागरिकोंके प्रत्येक कष्टको वे ध्यान पूर्वक सुनते और उसके प्रतिकारका उचित प्रयत्न करते थे।

नागरिकोंके प्रति नाभिरायके हृदयमें सच्चा स्नेह था, वे उन्हें अपने प्रिय पुत्रकी तरह समझते थे। वे कुल धर्मके प्रवर्तक थे इसलिए जनता उन्हें 'कुलकर' नामसे संबोधित करती थी।

नाभिरायके समयमें भारतवर्षमें एक विचित्र परिवर्तन हुआ। उस समय वहां अनेक जातिके इस तरहके वृक्ष उत्पन्न हुआ करते थे जिससे मानव समाज अपनी आवश्यक्ताकी संपूर्ण सामग्री उनसे

अनायास ही प्राप्त कर लेती थी। और इन्हें खाद्य अथवा अन्य पदार्थोंके उपार्जनकी कोई चिन्ता नहीं रहती थी। ये सदैव निश्चिन्त और सुखपूर्ण रहते थे। स्वतंत्र भ्रमण, परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार, और निष्कपट वार्तालाप करनेके अतिरिक्त उनके साम्हने कोई कार्य नहीं था।

धीरे धीरे संपूर्ण सुख-सामग्री प्रदान करनेवाले वे कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे और पृथ्वी हरित तृण समूहसे हरीभरी होने लगी। कुछ वृक्ष जो शेष रह गए थे उनसे पूर्ण खाद्य सामग्री न मिलनेके कारण जनता एक प्रकारके कष्टका अनुभव करने लगी।

कुछ समय तक उन्होंने इस प्रकार कष्टको सहन किया किन्तु उन्हें इसके प्रतिकारका कोई उचित उपाय नहीं सूझ पड़ा तब एकदिन एकत्रित होकर उन्होंने नभिरायके साम्हने अपने कष्टोंको प्रकट करनेका विचार किया।

नाभिरायका अभिवादन कर नागरिकोंने उन्हें अपनी कष्टकहानी सुनाई। वे कहने लगे-नरश्रेष्ठ! ये कल्पवृक्ष अब हमसे रुष्ट होगए हैं। प्रथम तो वे हमें अपने आप ही इच्छित खाद्य द्रव्य प्रदान करते थे किन्तु अब प्रार्थना करने पर भी वे हमें पूर्ण सामग्री नहीं देते। हम और हमारे बालक खाद्य पदार्थोंकी कमीके कारण भूखे रहने लगे हैं, आप हमें अपनी क्षुधा-पूर्तिका उचित उपाय बतलानेकी दया कीजिए।

नागरिकोंकी कष्टपूर्ण प्रार्थना सुनकर इन्हें संतोष देते हुए नाभिरायने कहा-नागरिको! अब काल-दोषके प्रभावसे कल्पवृक्षोंकी उत्पत्ति शक्ति क्षीण होगई है और अब वे बिलकुल नष्ट होजायेंगे इससे तुम्हें घबड़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अब पृथ्वीपर जो

यह हरित तृण-समूह तुम्हें दिख रहा है इससे ही उचित खाद्य द्रव्य प्राप्त होगा। किन्तु अब इसकी वृद्धि और रक्षाके लिये तुम्हें कुछ श्रम करना पड़ेगा।

अभीतक तो तुम सब सभी तरहके श्रम और कार्य करनेसे मुक्त थे किन्तु अब आगे इसतरह नहीं चलेगा।

नागरिकोंने कहा—नर श्रेष्ठ! हमें आप जो कार्य और श्रम बतलायें उसके लिए हम सब करनेको तैयार हैं, आप हमें कार्यकी उचित व्यवस्था बतलायें, आपकी जो आज्ञा होगी उसका हम सहर्ष पालन करेंगे।

नाभिरायने वृक्षोंकी वृद्धि और उनसे खाद्य सामग्री प्राप्त होनेके उपाय बतलायें। जिन वृक्षोंके फल हानिकर थे और जिनसे रोगादि उपाधियें उत्पन्न होनेकी संभावना थी उन्हें अलग करनेकी व्यवस्था बतलाई। इसके सिवाय उन फलोंको पकाने तथा उन्हें स्वादिष्ट बनानेकी विधियां भी दिग्दर्शितकीं। फलोंको पकाने और उन्हें सुरक्षित रखनेके लिए जिन पात्रोंकी आवश्यक्ता थी उनके योग्य सामग्री तथा निर्माण कला भी बतलाई।

खाद्य पदार्थोंकी उत्पत्ति और उसके रक्षणके उपाय जानकर जनता संतुष्ट हुई और अपनी आवश्यक्ताके लिए उचित श्रम करनेमें संलग्न हो गई।

(२)

रात्रि आधी व्यतीत हो चुकी थी। नाभिरायके प्रासादमें जलते हुए दीपकोंका प्रकाश कुछ मंद होचला था। सारा संसार निद्रादेवीकी

सुखमय गोदमें निमग्न था। संसारका कोलाहल पूर्णरूपसे शान्त होगया था।

मरुदेवी गहरी निद्राका आनन्द ले रही थीं, प्रभात होनेमें अभी विलम्ब था। इसी समय उन्होंने सुन्दर स्वप्नोंका निरीक्षण किया। स्वप्नके अन्तमें अपने मुंहमें वृषभको प्रविष्ट होते देख वे आश्चर्यसे चकित हो गईं। अनायास ही उनकी निद्रा भंग हो गई। वे उठीं। स्वप्नोंके निरीक्षणसे उनका मन, उल्लास और आनंद—मग्न हो रहा था।

पक्षियोंने मधुर कलरवके साथ प्रभातका संदेश सुनाया। सूर्य वियोगसे कुम्हलाए हुए पंकजोंके मुंह खुल गये। मंद पवन प्रत्येक गृहमें जाकर अलसता भंग करने लगी।

रात्रिमें देखे हुए अभूतपूर्व स्वप्नोंका फल जाननेके लिये मरुदेवीका हृदय चंचल हो उठा था। प्रभात होते ही वे प्रसन्न मुद्रासे अपने पतिके पास पहुंचीं।

नाभिरायने उन्हें अपने समीप आसनपर बिठलाते हुए इतने सवेरे आनेका कारण पूछा—

मरुदेवीने अत्यंत प्रसन्न होकर रात्रिमें देखे हुए स्वप्नोंको कह सुनाया और उनके फल जाननेकी इच्छा प्रकटकी।

नाभिरायने स्वप्नोंके फलोंका निर्देश करते हुए कहा—देवी! तुमने जो यह शुभ स्वप्न देखे हैं उनका फल घोषित करता है कि तुम्हारे गर्भमें अत्यंत तेजस्वी और जगत्प्रसिद्ध व्यक्तिने स्थान ग्रहण किया है। वह संसारका महान कर्मयोगी होगा। अपने उज्ज्वल चारित्रबलसे वह विश्वको आत्मदर्शनका संदेश सुनायेगा।

अपने पतिके मुँहसे स्वप्नोंका फलादेश सुनकर मरुदेवीका हृदय उसी तरह खिल गया जिस तरह सूर्य-रश्मियोंसे कमलिनी मुकुलित हो उठती है। वह प्रसन्न मनसे उठी और अपने गृहकार्योंमें संलग्न होगई।

आजसे मरुदेवीके हृदयमें आनंदकी अनूठी भावनाएं जागृत होने लगीं। उसे प्रत्येक कार्यमें एक अनुपम नवीनता दिग्दर्शित होनेलगी। उसने आजसे अपने आपको परम सौभाग्यशालिनी समझा।

सुखसंपन्न मानवोंको अपना जाता हुआ समय मालूम नहीं पड़ता। दुखी मानव, शोकसंतप्त व्यक्तिको जो समय युगसा दिखता है, सुखी मानव उसे हर्षित हृदयसे एक पलकी तरह गुजार देता है। पाप और पुण्य समयको परिवर्तित करनेमें एक अद्भुत शक्ति रखते हैं। पुण्यकी छायामें सुप्त मानव पर समयके परिवर्तनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। गर्मीका तप्त मध्याह्न वर्षाकी घनघोर काली रजनी शीत हिमाच्छादित दिन उसके एक सुख-स्वप्नकी तरह चले जाते हैं, किन्तु वही मध्याह्न, वही रात्रि और वे दिन पुण्य क्षय होते ही कलपते हुए कठिनाईसे कटते हैं।

संपूर्ण सुख-सामग्रियोंसे सज्जित सुन्दर भवनमें रहती हुई मरु-देवीके नव मास चुटकी बजानेकी तरह समाप्त होगए। वयस्क रमणियों और विनोदपूर्ण वातावरणसे घिरी रहनेके कारण उसका हृदय हर्षसे सदैव व्याप्त रहता था। उसके चारों ओर सुखके घन घुमड़ते रहते थे।

निश्चित समयपर मरुदेवीने पुत्ररत्नको जन्म दिया। मंद मलयके मधुर झोकेने यह शुभ संदेश अयोध्याके प्रत्येक गृहमें सुना दिया।

अयोध्याका-गौरव पूर्ण मस्तक आज और भी ऊंचा हो उठा। पुण्यके प्रभावमें एक किरणकी और वृद्धि हुई—नागरिकोंके मन-मयूर घनकी तरह नाच उठे, सुखका समूह उमड़ उठा।

अयोध्याके जनप्रिय शासक, नाभिरायका प्रांगण, मंगल गानसे गूंजने लगा।

हर्षसे उत्तेजित जनता सुख-मग्न होकर नृत्य करने लगी। क्षण मात्रमें संपूर्ण अयोध्यामें एक नवीन परिवर्तन दृष्टगत होने लगा। प्रत्येक गृह मंगलपूर्ण तोरणोंसे सुसज्जित हो गया। एकत्रित जनता नाभिरायके गृहकी ओर प्रवेश करने लगी।

देवताओंसे गृह शुभ शकुनोंसे परिपूर्ण हो गया। अचानक ही होनेवाले वाद्य यंत्रोंकी ध्वनिने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया।

देवता और मानव मिलकर पुत्र जन्मका उत्सव मनानेके लिए नाभिरायके द्वार आए। अप्सराओंका मनमोहक नृत्य होने लगा। इन्द्राणी बालकको गोदमें लेकर उसके प्रभापूर्ण मुख मंडलको देख अपने नेत्र तृप्त करने लगी।

बाल-चन्द्रकी तरह बालक ऋषभ धीरे २ बढ़ने लगे। देवकुमारोंके साथ खेलते हुए वे माता पिताके हृदयको हर्षित करते थे। देवकन्याएं उन्हें रत्नजडित पालनेमें झुलाती हुई हर्षसे फूली नहीं समाती थीं। वे कभी बालरेतपर गिरकर कभी घुटनोंके बल चलते हुए पृथ्वीपर गिरकर और कभी चन्द्र बिंब लेनेके लिये मचल कर जननीका मन मोहते थे।

बालक ऋषभ अत्यन्त प्रतिभाशाली थे। बालक वयसे ही उनमें

चमत्कारिणी ज्ञान शक्ति थी । अपनी अपूर्व प्रतिभाके बलपर अल्पाव-स्थामें ही उन्होंने अनेक विद्याओं और कलाओंको प्राप्त कर लिया ।

विद्या और कलाप्रेमी होनेके अतिरिक्त वे नम्रता, दयालुता आदि अनेक सद्गुणोंसे युक्त थे ।
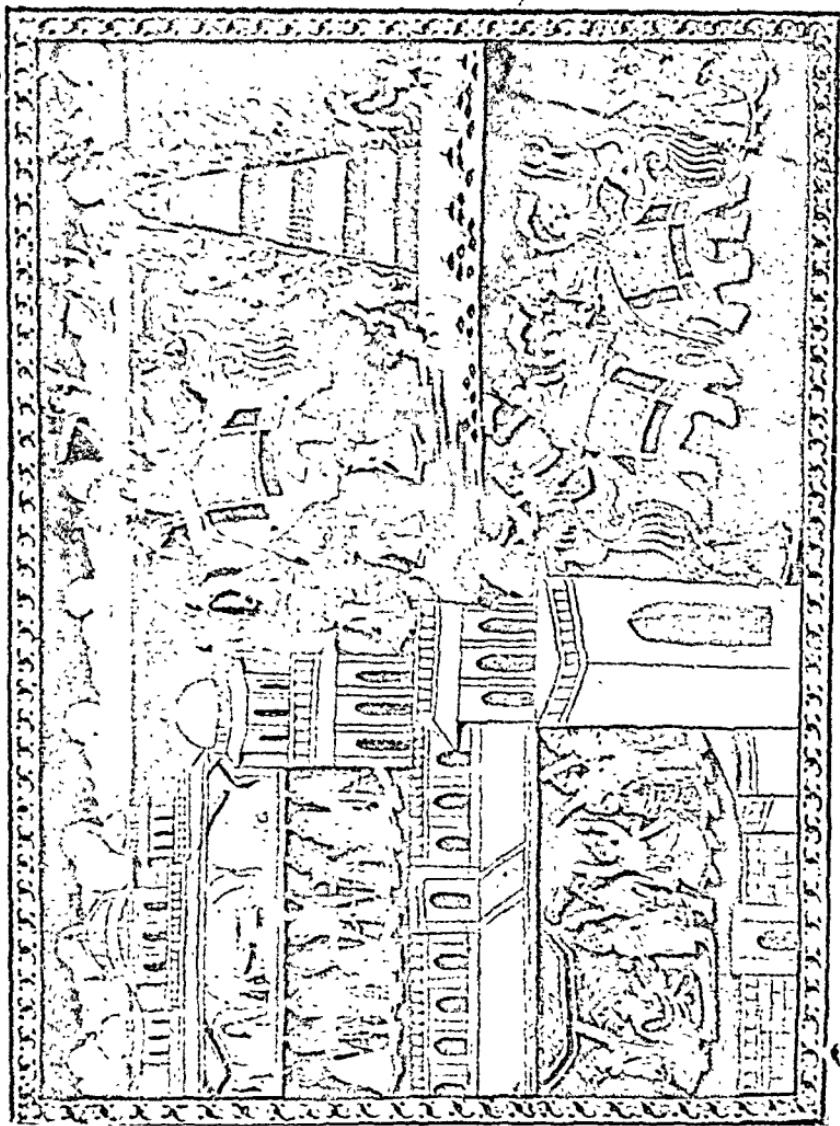
युवा होनेपर उनका शरीर अत्यन्त दृढ़ और तेजपूर्ण दर्शित होने लगा । वे अतुल बलशाली थे । उनके संपूर्ण सुडौल अवयव देखनेवालेके मनको आकर्षित करते थे ।

युवक ऋषभने अब यौवनके क्षेत्रमें अपना पैर बढ़ाया था । पूर्ण यौवन-संपन्न होने पर भी काम उनके पवित्र हृदयमें प्रवेश नहीं कर सका था । विषयविकारसे वे जलमें कमलकी तरह निर्लिप्त थे। उनका संपूर्ण समय जनसेवा, ज्ञान विकास और परोपकारमें ही व्यतीत होता था ।

सेवा और परोपकार द्वारा उन्होंने अयोध्याकी संपूर्ण जनताके हृदयपर अपना अधिकार जमा लिया था । वे अपने प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करते थे । सदाचार और पवित्रता उनके मंत्र थे और जनसेवा उनका कर्तव्य था ।

कुमारऋषभको यौवन पूर्ण देखकर नाभिरायको उनके विवाहकी चिंता हुई । यद्यपि वे जानते थे कि कुमार ऋषभ काम जयी हैं । किन्तु उनका योग्य विवाह संस्कार कर देना वे अपना कर्तव्य समझते थे। वे यह भलीभांति जानते थे कि गृहस्थ जीवनको भलीभांति संचालन करनेके लिए विवाह अत्यंत आवश्यक है । जीवन संग्राममें विजय पानेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको एक योग्य साथी आवश्यक होता है । इसलिए वे कुमार ऋषभके लिए सुयोग्य कन्यारत्नकी खोजमें रहने लगे ।

पांडुक शिलापर श्री १००८ तीर्थंकर (भगवान) के जन्मकल्याणकका दृश्य।

विदेह क्षेत्रके कुलपति कच्छ और सुकच्छकी सुंदरी कन्याओंको उन्होंने अपने पुत्रके लिये चुना। दोनों कन्याएं रूपमें और गुणमें परम श्रेष्ठ थीं। नाभिरायने उन दोनों कन्याओंकी कच्छ और सुकच्छसे याचना की। उन्होंने इसे अपना सौभाग्य समझा और प्रसन्न मनसे स्वीकृति प्रदान की।

निश्चित समयपर बड़े समारोहके साथ कुमार ऋषभका पाणिग्रहण हुआ। विवाहोत्सवमें अनेक स्थानके कुलपति निमंत्रित हुए थे। नाभिरायने सबका उचित सत्कार सम्मान किया। इस विवाहसे भरत और विदेह क्षेत्रके कुलपतियोंका स्नेहबन्धन अत्यन्त सुदृढ़ होगया।

(२)

सुन्दरी यशस्वती और सुनन्दाके साथ युवक ऋषभदेव सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे। दोनों पत्निएं उनके हृदयको निरंतर प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करती थीं। उनका गृहस्थ जीवन आदर्श रूप था।

एक रात्रिको सुंदरी यशस्वतीने मनोमोहक स्वप्नोंको देखा। स्वप्नोंको देखकर उनका हृदय अत्यंत प्रसन्न हो उठा। सवेरे ही उन्होंने अपने पतिसे स्वप्नोंके फलको पूछा। पतिदेवने अत्यंत हर्षके साथ कहा—प्रिये! तूने जिन सुन्दर स्वप्नोंको देखा है वे यह प्रदर्शित करते हैं कि तेरे गर्भसे पृथ्वीतलपर अपना अखंड प्रभुत्व स्थापित करनेवाला वीर पुत्र होगा। स्वप्नका फल जानकर देवी यशस्वतीका हृदयकमल खिल उठा।

निश्चित समयपर यशस्वतीने सुन्दर पुत्ररत्नको जन्म दिया। बालक अत्यंत कांतिवान और तेजस्वी था। पौत्रजन्मसे नाभिरायके

हर्षका ठिकाना न रहा। अयोध्या सुखद उत्सवसे एक वार फिर सुसज्जित हो उठी। ज्योतिषियोंने वीर बालकका नाम भरत रक्खा।

कुछ दिन वाद देवी सुनन्दाने भी पुत्र प्रसव किया जिसका नाम 'बाहुबली' रखा गया।

पुत्रजन्मके कुछ समय पश्चात देवी यशस्वती और सुनन्दाने दो कन्याओंको जन्म दिया जिनका नाम ब्राह्मी और सुन्दरी निर्धारित किया गया।

नाभिरायका प्रांगण बालक बालिकाओंकी मधुर क्रीड़ा और विनोदसे भर गया। सभी बालक बालिकाएं परस्पर खेल कूदकर घर-भरमें आनंद रसकी वर्षा करने लगीं। नगरके सभी नर नारी उन सुन्दर बालकोंको देखकर फूले नहीं समाते थे।

श्री ऋषभदेव सभी बालकोंको अल्पावस्थासे ही योग्य शिक्षण देने लगे। बालिकाओंको भी वे पूर्ण शिक्षित और ज्ञानवान् बनाना चाहते थे इसलिए कुमारी ब्राह्मी और सुन्दरीको भी उन्होंने शिक्षा देना प्रारंभ किया। सभी बालक बालिकाएं बड़े मनोयोगके साथ शिक्षा ग्रहण करते थे इसलिए थोड़ी आयुमें ही वे विद्यावान् बनगए।

भरत, बाहुबलि और वृषभसेन तीनों कुमारोंको राजनीति, धनुर्विद्या, संगीत, चित्रकला तथा साहित्यकी शिक्षा दी गई। इनमें भरतने नीतिशास्त्र, और नृत्य कलामें विशेष अनुभव प्राप्त किया। वृषभसेन संगीत और बाहुबलि वैद्यक, धनुर्वेद, तथा रत्न और अश्व-परीक्षामें अधिक कुशल हुए।

(४)

कल्पवृक्षोंके नष्ट होजानेपर महामना नाभिरायने जनताको फलादि द्वारा अपनी क्षुधा पूर्ति करनेका उपाय बतलाया था। लेकिन कुछ समय बाद उन फलोंमें रसकी मात्रा कम होने लगी। जनताकी भूख रसकी कमीसे बढ़ने लगी और वे सब मिलकर अपने प्रिय नेता नाभिरायके पास प्रार्थना करनेको आए।

नाभिरायने उन सबको धैर्य देते हुए कहा—मेरे प्रिय बंधुओ! तुम्हारे दुःखको मैं भली भांति अनुभव कर रहा हूं, लेकिन मेरी समझमें इससमय कोई उपाय इस दुखसे छुटकारा पानेका नहीं आरहा है। कुमार ऋषभ नीतिकुशल और अत्यन्त ज्ञानवान हैं, तुम सब उनके निकट जाओ, वे तुम्हारी कठिनाइयोंको दूर करनेका प्रयत्न करेंगे।

नाभिरायके आदेशानुसार वे सब प्रजाजन विनीतभावसे कुमार ऋषभके निकट उपस्थित हुए और अपनी करुण कहानी सुनाने लगे। वे बोले—कुमार! हम सब आपके पास बड़ी२ आशाएं लेकर आए हुए हैं, हमें पूर्ण विश्वास है कि आपके द्वारा हमारे कष्ट अवश्य ही नष्ट होंगे। कुमार! अभी तक वृक्षोंमें पर्याप्त मात्रासे फल फलते थे और उनमें इतना रस निकलता था कि उनको पीकर हम पूर्ण संतुष्ट रहते थे लेकिन अब कुछ समयसे वृक्षोंमें फल कम होने लगे हैं और उनमें रस इतना कम निकलता है कि उनको पीकर हमारी भूख ज्योंकी त्यों बनी रहती है। निरन्तर बढ़ती हुई इस भूखकी ज्वालाको हम और हमारे कुटुम्बके लोग सहन करनेमें असमर्थ हैं इसलिये कृपया आप हमें ऐसा उपाय बतलाइये जिससे हमारा यह कष्ट नष्ट हो।

जनताकी प्रार्थना सुनकर जनकल्याणके पथपर चलनेवाले ऋषभदेवने कहा—प्रिय नागरिको ! तुम्हें होनेवाले कष्टोंका मैं अनुभव कर रहा हूं, उनसे मुक्त होनेका उपाय भी मैं सोच चुका हूं। देखो, अब भोगभूमिका समय समाप्त होगया। अब आगे कर्मयुगका सुंदर प्रभात काल दिख रहा है, इस कर्मयुगसे प्रत्येक मानवको अपनी शक्ति, बुद्धि और योग्यतानुसार कर्म करना होगा और अपने किए हुये श्रमके अनुसार ही वह भोग सामग्रियें उपार्जन कर उनसे अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करेगा। प्रत्येक मानव, अबसे अपनी कार्य-कुशलता और बुद्धिके प्रयोग द्वारा ही श्रेष्ठ बनेगा और उसीसे वह भोज्य सामग्री भी प्राप्त करेगा। अब तुम सबको अपनी आजीविकाके लिए उचित श्रम करना आवश्यक होगा।

प्रतिभाशाली युवक ऋषभकी पवित्र वाणी सुनकर नागरिकोंने कहा। युवकरत्न ! आप हमारे लिए जो भी व्यवस्था और कार्य बतलाएंगे उसे हम सब करनेको तैयार हैं। बतलाइए हमें क्या करना होगा ?

ऋषभदेवने कहा—देखो ! अबसे सबकी उचित व्यवस्था चलाने और समय २ पर होनेवाले परिवर्तनोंके अनुसार कार्य संचालित करनेके लिए तुम्हें अपना एक शासक नियुक्त करना होगा जो कि 'राजा'के नामसे संबोधित किया जायगा। उसकी सभी उचित आज्ञाएं तुम्हें पालन करना होंगी। उसकी आज्ञा पालन करनेवाले तुम सब 'प्रजा' के नामसे पुकारे जाओगे। तुम सबको उचित रीतिसे चलानेके लिए कुछ नियम बनाए जावेंगे वह 'राज्यविधान' कहलायगा। उन नियमोंके अनुसार ही तुम सबको चलना होगा। आजीविका उपार्जनके लिये नीचे

लिये कार्य निश्चित होंगे। कार्यानुसार ही वर्ण रहेगा। प्रधान कार्य निम्न प्रकार होंगे--

असि-शस्त्र द्वारा कार्य करना। इस कार्यको करनेवाले क्षत्रिय कहलाएंगे। वे शस्त्र धारण करेंगे और राजाकी आज्ञानुसार उन्हें युद्ध-द्वारा देश और प्रजाकी रक्षा करनी होगी। मसि-(लेखन कार्य) कृषि-(भोजनके काममें आनेवाले धान्य आदिको उत्पन्न करनेका कार्य। वाणिज्य-(आवश्यकीय पदार्थोंका लेन देन) इन कार्योंके करनेवाले वैश्य कहलायेंगे।

शिल्प-(रहनेके लिये मकान और पहननेके वस्त्र निर्माण करना)। सेवा, कला-(नृत्य, गान आदिका प्रदर्शन) इन कार्योंके करनेवाले शूद्र कहलायेंगे।

श्रेणी द्वारा विभाजित व्यक्तियोंको बिना किसी भेदभावके परस्पर अपना कार्य करना होगा और अपने कार्यों द्वारा परस्पर सहयोग देना होगा। मैं तुम्हें वर्ण व्यवस्था बतला चुका। अब भोजन प्राप्तिके उपाय बतलाऊंगा। देखो! इस पृथ्वीमें जो एक तरहके अंकुर तुम देख रहे हो, उनकी तुम्हें रक्षा करनी होगी और उन पौधोंको तोड़कर उनसे अन्न समूहको निकालना होगा। उस अन्न-समूहमेंसे कुछको भोजनके कार्यमें लाना होगा और कुछको रक्षित रखकर पृथ्वीमें बोना होगा जिससे फिर अधिक संख्यामें भोजन पदार्थ उत्पन्न होगा। इसमेंसे कुछ पौधे ऐसे होंगे जिनसे वस्त्र निर्माण होगा, कुछ ऐसे होंगे जिन्हें कोल्हमें पेरनेसे मिष्ट रस निकलेगा। इसीसे तुम्हें क्षुधा तृप्ति भी करनी होगी।

इस तरह व्यवस्था बतलाते हुए कुमार ऋषभने अन्नके पौधोंकी विस्तृत व्याख्या की और अन्नोंको उत्पन्न करनेके साधन बतलाए। फिर उन्होंने नागरिकोंकी बुद्धि, कार्यकुशलता और योग्यतानुसार उन्हें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्णोंमें विभाजित किया।

समस्त जनताने कुमार ऋषभकी बतलाई हुई व्यवस्थाको मानना स्वीकार किया और एकदिन संपूर्ण जनताने एकत्रित होकर उन्हें अपना शासक नियुक्त किया, उनका अभिषेक किया और उन्हें अयोध्याके 'राजा' का पद प्रदान किया।

(५)

राजा ऋषभ रत्नकिरणोंसे चमत्कृत राजसिंहासन पर बैठे थे। मुकुटके प्रकाशमान हीरोंके आलोकसे सभामंडप दीप्यमान होरहा था सभामंडप विशेष रूपसे सजाया गया था। आजकी सभामें अनेक देशोंके शासक पधारे थे। देवता भी आमंत्रित थे। अयोध्याके नागरिक आज किसी आन्तरिक प्रसन्नतामें मग्न थे। समुद्रकी उत्तुंग तरंगोंके समान चंचल नेत्रवाली सुराङ्गनाएं मधुर हास्य सहित नृत्य कर रही थीं। उनकी हृदयहारिणी नाट्यकला पर जनसमूह मुग्ध होरहा था।

यौवनके तीव्र वेगसे उन्मत्त अनेक देवङ्गनाए अपने२ अद्भुत नृत्यकलाका प्रदर्शन कर चुकी थीं। अब नीलांजना नामक सुन्दर सुबाला नृत्यके लिए उपस्थित हुई थी उसने कोयल विनिंदित मधुर स्वरसे मनोमुग्ध करनेवाले गीतोंको गाया। हृदय तृप्त करनेवाले नृत्योंका दिग्दर्शन किया। दर्शकगणोंको आश्चर्यमें डालनेवाली वह सुबाला कभी आकाश और कभी पृथ्वीपर पवनके समान चंचल

गतिसे नृत्य करती थी । मानव नेत्र उसकी मनोरम नृत्यकलापर आकर्षित थे । इसी क्षण अचानक एक घटना हुई । नृत्य करती हुई उस सुरबालाका सुन्दर और दर्शनीय शरीर अचानक ही विलय हो गया । उसकी मधुर ध्वनि पवनके साथ दशों दिशाओंमें बिखर गई । उसकी आयु समाप्त होगई थी ।

उसी समय उसके स्थानपर दूसरी सुरबाला नृत्य करने लगी । दूसरी सुरबाला ठीक नीलांजना समान थी । वह उसी तरह नृत्य भी करने लगी थी । साधारण दर्शकोंने इस रहस्यको नहीं समझा । परन्तु दिव्यज्ञान-निधान ऋषभदेवजीने इस भेदको जाना, वे सब कुछ समझ गए । उनके हृदय पर इस परिवर्तनका विलक्षण प्रभाव पड़ा । वे एक क्षणको सोचने लगे—ओह ! मानव शरीर कितना नश्वर है ? वह एक क्षणमें ही किस-तरह नष्ट हो जाता है । यह देवबाला अभी मेरे नेत्रोंके सामने किस तरह नृत्य कर रही थी, वह एक पलमें ही किस तरह विलय होगई ! मानव शरीरकी इस नश्वरता पर क्या कहना चाहिए ? आह ! इसी नाशवान शरीरके मोहमें पड़ा मानव उसके रक्षणके लिए कितनी चिंताएं करता है और इस संसारमें कितना व्यस्त रहता है ! इसके स्नेहमें अंधा होकर अपने कल्याण—पथको भूल जाता है । मोहका साम्राज्य कितना लुभावना है ? इसमें मानव अपनी अनंत आत्मशक्ति और दिव्य प्रभावको भूल जाता है । मेरा यह शरीर भी तो एक दिन नष्ट होगा । तब क्या मुझे इस मोह-जालमें पड़ा रहना चाहिए ? नहीं, मैं इस शरीरके मोह-बंधनको तोड़ूंगा, इस राज्यवैभवके जालको नष्ट करूंगा और आत्म-ज्ञानके दिव्य नंदन-निकुंजमें विचरण करूंगा ।

मैं पूर्ण आत्मज्ञान प्राप्त करूंगा और आत्म पथसे विचलित इस संसारको आत्मसंदेश सुनाऊंगा ।

इन विचारोंने उनके हृदयमें हलचल पैदा कर दी । मोह और स्नेहकी दीवालें चूर चूर हो गईं और एक क्षणमें उनके विचारोंमें काया-पलट होगया ।

नृत्य समाप्त हुआ । देव और सभासदोंने हर्षित हृदयसे अपने स्थानको प्रस्थान किया-किन्तु आज राजा ऋषभका हृदय किन्हीं अन्य भावनाओंसे भर गया था । आज उन्हें अपने चारों ओर एक विचित्र परिवर्तन नजर आरहा था । इसी समय "लौकान्तिक" नामक देवोंने आकर उन्हें प्रणाम किया । लौकांतिकदेव आध्यात्मिक रहस्यको जानते हैं । उन्हें वैराग्य प्रिय होता है और वे तीर्थंकर जैसे महान् पुरुषोंके वैराग्यकी सराहना करनेको आया करते हैं । उन्होंने विरागी ऋषभके पवित्र विचारोंकी सराहना की । वे बोले-भगवन् ! आज हम आपके हृदयमें जो परिवर्तन देख रहे हैं वह संसारके लिये कल्याणकारी होगा । हम विश्वास करते हैं कि आपके द्वारा शीघ्र ही संसारमें एक महान् क्रांति होगी । आप संसारके बद्ध पुरुषोंके लिये आत्मिक स्वतंत्रताका द्वार खोलेंगे । आप उस विश्वका दर्शन करायेंगे जिसमें सत् चित आनंदकी लहरें उमड़ रही हैं आपके पवित्र विचारोंका हम स्वागत करते हैं । आपके अतिरिक्त ऐसा कौन महापुरुष है जो इस तरहकी कल्याण भावनाओंको जागृत कर सके ! हमारी कामना है कि आपका यह त्याग सफल हो, आप संसारका मार्ग प्रदर्शन करें ।

देवता अपना कर्तव्य पालन कर चलेगये । वैराग्यकी चोटी पर
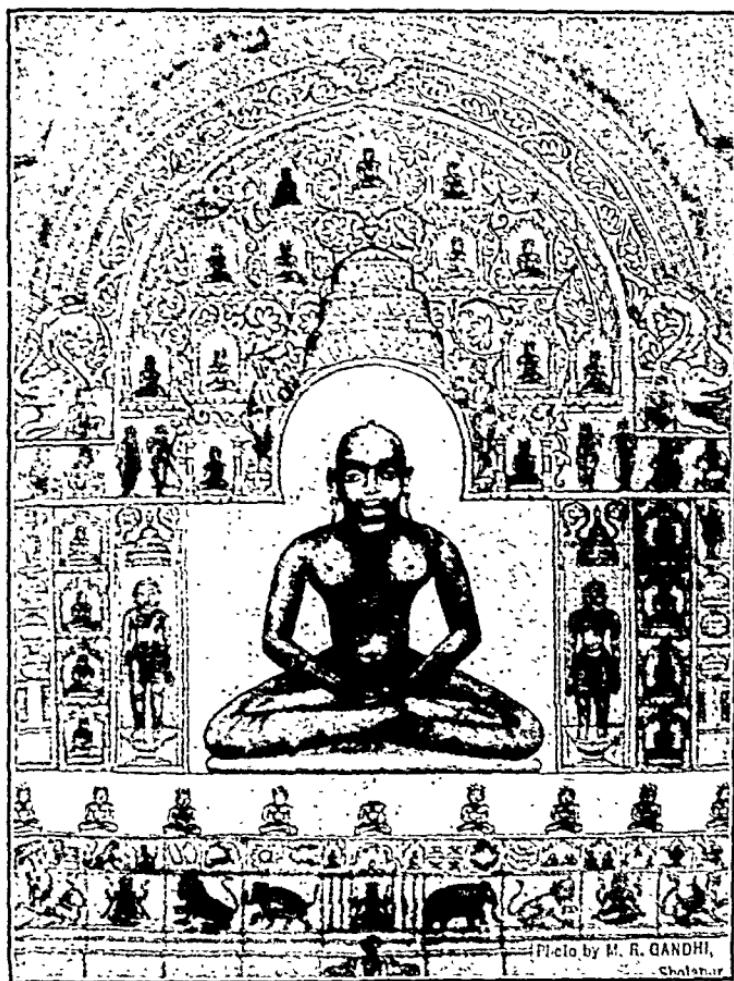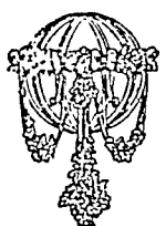
श्री १००८ कर्मयोगी श्री ऋषभदेव।

[देखो पृ० १]

चढ़े हुए ऋषभदेवने जब नीचे उतरना उचित नहीं समझा, वे एक क्षण ही विलंब अब अपने लिए अनुचित समझते थे, उन्होंने युवराज भरतको अयोध्याका राज्य प्रदान किया। दूसरे राजकुमारोंको भी उनके योग्य व्यवस्था उन्होंने की। फिर माता, पिता और पत्नीको संबोधित किया। उनके हृदयके मोहके जालको तोड़ दिया। वे तपश्चरणके लिए जंगल हो चल दिए।

[२]

मेघेश्वर जयकुमार।

[एकपत्नीव्रतके आदर्श]

(१)

सोमप्रभ न्यायप्रिय राजा थे। हस्तिनापुरकी प्रजाके वे प्राण थे। प्रजाके प्रति उनका व्यवहार अत्यंत सरल और उदार था। रानी लक्ष्मीमती भी उन्हींके अनुरूप थीं। सुन्दरी होनेके साथ ही वे सुशील नम्र और कलाप्रिय थीं। दोनोंका जीवन शांति और सुखमय था।

वसंतमें आम्रमंजरी मधुरससे भरकर सरस हो उठती है, लतिकाएं लहर उठती हैं और पुष्प-समूह हर्षसे खिल उठते हैं। रानी लक्ष्मीमतिका हृदय भी बालपुष्पोंको धारणकर खिल उठा था।

ठीक समयपर उन्होंने बालसूर्यका प्रसव किया। हस्तिनापुरकी

जनताका हर्ष उमड़ उठा । महाराजाने उदारताका द्वार खोल दिया, याचकों और विद्वानोंके लिए इच्छित दान और सम्मान मिलने लगा । बालक अत्यंत कांतिवान था । अपनी प्रभासे वह कामका भी जय करता था । उसका नाम जयकुमार रक्खा गया ।

जयकुमार बालकपनसे ही स्वतंत्रताप्रिय, स्वाभिमानी और वीर थे । उच्च कोटिकी शस्त्र और नीति शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने अपने गुणोंको दूना चमका दिया था । लक्ष्यवेधमें वे अद्वितीय थे, उसकी समता करनेवाला उस समय भारतमें कोई दूसरा धनुर्धर नहीं था । साहस और धैर्यमें वे सबसे आगे थे । इन्हीं गुणोंके कारण उनकी कीर्ति अनेक नगरोंमें फैल गई थी । उनके साहस और पराक्रमको देखकर सोमप्रभजीने उन्हें युवराज पद प्रदान किया था और वे इसके सर्वथा योग्य थे ।

संध्याका समय; नीलाकाश चित्रित हो रहा था । आकाशकी पृष्ठ भूमिपर प्रकृति बड़े ही सुन्दर चित्रोंका निर्माण कर रही थी लेकिन बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे चित्र स्थिर नहीं रह पाते थे । मालूम पड़ता था प्रकृति कोई अत्यंत सुंदर चित्र निर्माण करनेका प्रयत्न कर रही थी । किन्तु इच्छानुसार सुन्दर चित्र निर्माण कर सकनेके कारण वह उन्हें बिगाड़कर फिरसे नया चित्र चित्रित करती थी । कितना समय बीत गया था, प्रकृतिको इस चित्र निर्माणमें ।

आसमानको छूनेवाले महलके शिखरपर बैठे हुए सोमप्रभजी प्रकृतिकी इस चित्रकला निर्माणका रस ले रहे थे। उनकी दृष्टि जिस ओर जाती आकर्षित होजाती थी । न मालूम कितने समयतक अतृप्ति

रूपसे वे इन दृश्योंको देखते रहे। अचानक ही उनकी नजर महलके नीचेवाले शुभ्र सरोवरकी ओर गई। सरोवरके स्वच्छ जलमें सायं-कालीन लालिमाने विचित्र ही दृश्य करदिया था—सारा सरोवर प्रभासे स्वर्णमय बन गया था। एक ओर यह दृश्य उन्होंने देखा; दूसरी ओर उन्होंने कमलोंके संकुचित कलेवर पर दृष्टि डाली। अरे! इस सुन्दर समयमें उनका मुख इतना म्लान क्यों होरहा था। उनकी वह प्रातः—कालीन मधुर मुस्कान विषादमें परिणत होरही थी। वह हर्ष, वह लालिमा, वह सुकुमारता उनकी किसीने हरण करली थी।

उनके नेत्रोंके साम्हने प्रभातका वह सुन्दर दृश्य नृत्य करने लगा। जब मलय बह रही थी और मुस्कुराते हुए कमल पुष्पोंको मीठी मीठी थपकी दे रही थी। सूर्य उसके सौन्दर्य पर अपना सार्वस्व न्योछावर कर रहा था। उसकी प्रकाशमयी किरणें प्रत्येक अंगका आलिंगन कर मनो-मुग्ध होरही थीं, मधुपगण मधुरस पीकर मदोन्मत्त होरहा था, गुन गुन नादसे अपने प्रेमीका गुणगान कर रहा था, और अब यह संध्याका समय कमलोंको उनकी मृत्युका संदेह सुना रहा था।

वे अपना सिर झुकाए हुए सब सुन रहे थे, किरणें उनसे दूर भाग रहीं थीं, सूर्यका आलिंगन शिथिल हो रहा था। इस विपत्तिके समय भौंरे भी उसका साथ छोड़कर न मालूम कहां चले गए थे। कुछ वेचारे जिन्होंने उनके मधुर मधुरसका पान किया था, दृष्टिसे आलिंगन किया था वही उसके साथी इस विपत्तिके समयमें उन्हें अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। कमल अब अपने इस संकुचित और मलिन मुखको संसारके साम्हने नहीं दिखलाना चाहते थे। वे भी धीरे २ अपनी

आंखे मूंद लेना चाहते थे। ओह! अब तो उनका मुंह बिलकुल बंद हो गया ! लेकिन वह पागल भ्रमर अके ! वह भी क्या इसीमें बंद हो गया ! हां हो गया। सोमप्रभजीने देखा वह मधु–लोलुपी भ्रमर कमलके साथ ही साथ उसमें बंद हो गया। उनका हृदय तिलमिला उठा, वे अचानक बोल उठे—अरे! अब उस मूर्ख मधुपका क्या होगा? क्या रात्रिभर कमल कोप्यमें बंद रहकर वह अपने प्राणोंको सुरक्षित रख सकेगा ? उन्हें उसकी आसक्तिपर हृदयमें बड़ी ग्लानि हुई। ओह! भ्रमर तुमने क्या कभी यह सोचा है कि प्रभात होनेतक कमल तुम्हें जीवित रख सकेगा ? तुम्हें यह भी मालूम था कि तुम्हारी इस अनुरक्तिका अंतिम परिणाम क्या होगा ? और मूर्ख मानव ! तू भी तो इस मधुर वासना और कमनीय कामनाओंके कलरवमें प्रभातसे लेकर जीवनके अंतिम सायंकाल तक अपनेको व्यस्त रखकर काल-रात्रिके हाथों सौंप देता है। तूने कभी भी यह सोचा है कि इसका अंतिम परिणाम क्या होगा ? जीवनके इस सौन्दर्यपूर्ण पटका दृश्य परिवर्तन कितना भयंकर होगा ? ओह! मुझे भी तो इस परिवर्तनमेंसे गुजरना होगा।

सोमप्रभकी आत्मापर संध्याके इस दृश्यने विचारोंकी विचित्र तरंगें लहरायीं। उनका हृदय एकाएक संसारसे विरक्त होने लगा। धीरे धीरे आत्मज्ञानका सुन्दर प्रभात उदित हुआ, उसमें उन्होंने अनंत शक्तिसे आलोकित प्रभाको देखा। वैभवसे उन्हें विरक्ति हो उठी, इन्द्रिय सुखकी इच्छाएं जलने लगीं और वे वैराग्यकी उज्ज्वल कीर्तिका दर्शन करने लगे। निर्मल आकाशमें दिशाएं जिसतरह शांत होजाती

हैं उसी तरह विषय विकार और आशा तिमिरसे शून्य उनके हृदयमें शुद्धात्माका दिव्य प्रकाश प्रतिभासित होने लगा। वे उठे और अपने सिरसे राज्यका भार उतारनेका प्रयत्न करने लगे।

योग्य युवकको कन्या समर्पित कर पिता चितासे मुक्त होजाता है और योग्य पात्रको दान देकर निर्मोही पुरुष आत्म-तृप्तिका अनुभव करता है। गुणवान और योग्य वीरपुत्रको राज्य दे सोमप्रभने संसारसे मुक्त होनेका निश्चय कर लिया। प्रजाजन और परिप्पर्योकी विराट सभामें युवक जयकुमारका उन्होंने राज्य अभिषेक किया और प्रजाजनको संतुष्ट रखनेकी और उनके रक्षणकी शिक्षा दी। राज्यभार सौंपकर वे तपश्चरणके लिए चले गए।

(२)

सम्राट् भरतको चक्र प्राप्त होनेपर वे अपनी विश्वविजयिनी सैना संगठित कर भारत विजयके लिए चल दिए। अपने पराक्रमसे उन्होंने मार्गके सभी नरेशोंपर विजय प्राप्त की। शक्तिका अभिमान रखनेवाले बड़े २ राजा उनकी शरणमें आए। विजयका डंका बजाते हुए उन्होंने गंगानदीको पार कर महा सागरमें प्रवेश किया। वहांके सभी प्रतापी राजाओंको जीतकर वे विजयार्थ पर्वतके उत्तर भारत निवासी राजाओं पर दिग्विजय करनेके लिए चल दिए।

सम्राट् भरतने कुरुदेशेश्वर महाराजा जयकुमारके अद्वितीय पराक्रमको सुना था, उन्हें अपनी सैनामें सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्रदान किया और अपनी विजय-यात्रामें साथ लिया। विजयार्ध पर्वतके तटवाले पश्चिमी खंडको जीतकर उन्होंने अब मध्यखंड जीतनेके लिए प्रस्थान किया।

और उस खंडके किलोंपर अपना अधिकार जमा लिया । इसी समय म्लेच्छोंके प्रचंड सैन्यदलसे सुसंगठित 'चिलात' और 'आवर्त' नामक बलवान म्लेच्छराजाओंने अपने स्वत्व रक्षणके लिए चक्रवर्तीसे युद्ध करनेका निश्चय किया। असंख्य धनुर्धारी म्लेच्छ योद्धाओंसे रणक्षेत्र व्याप्त होगया । पूर्ण संगठित शरीरवाले सैनिकोंके साथ दोनों वीरोंने सम्राट् भरतकी सेनापर भीषणतासे प्रहार किया। भयानक संग्राम होने लगा । चक्रवर्तिकी विशाल सेना सुगठित थी । नवीन शस्त्रोंसे वह सुसज्जित थी । म्लेच्छ राजा उन शस्त्रोंके प्रहारोंको सहन नहीं कर सके और शीघ्र ही पीछे हटने लगे ।

चक्रवर्तिकी सेनासे हारे हुए म्लेच्छ राजाओंने विजयकामनाके लिए अपने कुलदेवताओंकी उपासना की । उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर नागमुख नामक दैत्य प्रगट हुए । उन्होंने अपने दिव्य शस्त्रोंसे चक्रवर्तिकी सेनापर भयंकर आघात करके उन्हें विकल कर दिया । बहादुर सैनिकोंको पीछे हटते देखकर वीर जयकुमारका तेज उमड़ उठा और सिंहनाद करते हुए वे उन दैत्योंसे युद्ध करनेको आगे बढ़े । वीर जयकुमार और नागमुखोंमें संसारको चकित कर देनेवाला संग्राम हुआ । बेकार न जानेवाले तेज बाणोंका नागमुखोंने जयपर प्रहार किया लेकिन जिसतरह आंधीका वेग हिमालयको हिलानेमें असमर्थ होता है उसी तरह उनके सभी शस्त्र बेकार हुए । अब वीर जयकुमारने अपनी निशानेबाजीका परिचय देना प्रारंभ किया। अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर उन्होंने नागमुखोंको व्याकुल कर दिया । न कटनेवाले बाणोंकी भयंकर वर्षा करता हुआ दिव्य कवच धारण किए

हुए वह जयकुमार सचमुच ही बरसातके मेघ मंडलकी तरह मालूम पड़ता था। कान तक खींचकर धनुषपर संधान कर छोड़े गए। तीक्ष्ण बाण बिजलीकी तरह चमक कर युद्धके मैदानमें छिपे हुए नागमुखोंके शरीरोंको प्रकाशित करने लगे। नागमुख उनके तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारको न सह सके और पराजित होकर भागने लगे। विजय श्री जयकुमारके हाथ लगी। विजयसे सजे हुए वीर जयकुमारके चमकते हुए अंगोंका कीर्तिकामिनीने प्रसन्न होकर स्पर्श किया। देवबालाएं यशोगान करने लगीं और आकाशसे विकसित पुष्पोंकी वर्षा होने लगी।

जय-लक्ष्मीसे सुसज्जित, विजयका उच्च नाद करते हुए जयकुमारका चक्रवर्तिने प्रसन्न हृदयसे अभिवादन किया, उसके प्रबल पराक्रमकी प्रशंसाकी और इस अभूतपूर्व विजयके उपलक्षमें प्रसन्न होकर उन्हें 'प्रधान वीर' का पद प्रदान किया। वे मेघेश्वरके सम्मान पूर्ण पदसे सुशोभित किए गए।

नागमुखोंके हारे जानेपर सभी म्लेच्छ राजाओंने चक्रवर्तिका शासन स्वीकार किया, विजय समाप्त कर वे अपनी राजधानीको लौट आए।

(३)

सुलोचनाका सौन्दर्य अनुपम था। प्रकृतिने उसे सजानेमें अपनी अद्भुत-कलाका परिचय दिया था। अधखिली कलियोंकी मुसकान, कोकिलका मधुर स्वर और वसंतकी विकसित शोभा उसे मिली थी। विद्या और कलाओंका वरदान उसे प्राप्त था। नम्रता और विनयने उसका आश्रय लिया था। बनारसके राजा अकंपनकी वह विदुषी कन्या

थी । बनारसकी पूजाके लिए वह एक दिव्य ज्योति थी । यौवन उसके शरीरमें प्रतिदिन एक नई चमक और सुन्दरता करने लगा था। उसे देखकर अकंपनके हृदयमें उसके योग्य संबंधकी चिंता बढ़ने लगी। प्रत्येक पिता अपनी कन्याके मधुर जीवनकी कल्पना करता है। वह उसके लिए कुबेर जैसा वैभवशाली और इन्द्र जैसा प्रतापी वर चाहता है। इसी इच्छाको लेकर एक दिन उन्होंने अपने सुयोग्य मंत्रियोंसे परामर्श किया। मंत्रियोंने अनेक राजकुमारोंका परिचय दिया जो रूप, गुण और विद्या कलामें निपुण थे किन्तु अकंपनजीके हृदय पर किसीकी छाप नहीं पड़ी। अंतमें उन्होंने अपने प्रधानमंत्रीसे सलाह ली। प्रधानमंत्रीने कहा—महाराज ! सुलोचना साधारण कन्या नहीं है, वह बहुत ही विचारशील और लज्जानिपुण है, उसके लिए स्वयंवरकी योजना ठीक होगी। सभी नगरोंके राजकुमारोंको स्वयंवरमें निमंत्रित किया जावे और कन्या जिसको स्वीकार करले उसीके साथ उसका संबंध किया जावे। वह अपने योग्य वरको स्वयं चुन सकती है, इसलिए उसे स्वतंत्रता पूर्वक वर चुननेका अधिकार दिया जाए। प्रधानमंत्रीकी राय महाराजको ठीक मालूम हुई। उन्होंने स्वयंवर रचनेकी आज्ञा दी। राजाओंको निमंत्रण भेजे गए, स्वयंवर मण्डप सजाया गया। राजकुमारोंका आना प्रारम्भ हुआ, उनके ठहरने तथा भोजन आदिका उचित प्रबन्ध किया गया।

राजकुमारोंके मुकुट और अलंकारोंकी चमकसे स्वयंवर मंडप चमकने लगा। कमनीय कुसुमोंके गुच्छोंसे सजी हुई नवीन लतिका वायुके मंद झोंरोंसे अपनी सुरभि बिखेरती हुई मानवोंका मन मुग्ध

करती है। हरित अंकुरोंसे सुसज्जित वर्षा ऋतु नेत्रोंको तृप्त करती है। मेदिनी अशि पर पड़ी हुई पूर्णेन्दुकी धवल रश्मिएं हृदयको शीतल करती हैं और कुशल कलाकारके हाथोंसे गून्थी हुई रत्नमाला हृदयको सुशोभित करती है। दिव्य, रत्न भूषित अलंकारोंसे वेष्टित कर पल्लवमें पारिजात कुसुमोंकी माला लिए हुए स्वयंवर मंडपमें हंस गतिसे जाती हुई विश्व-सौन्दर्यको लज्जित करती सुलोचनाको राजकुमारोंने देखा। उसे देखकर उनके नेत्र उसकी ओर खिंच गए। सूर्यकी सुनहरी किरणों पर कंज पुष्पोंका मधुर मुख जिस तरह आकर्षित हो जाता है, इन्दुकी नवीन प्रभापर चालक जैसे चित्रित होजाता है उसी तरह स्वयंवर मंडपमें क्रीड़ा करती सुलोचना हंसिनी पर राज-कुमारोंका मन आकर्षित हो गया। प्रत्येक राजकुमारके हृदयमें आशा और निराशाका द्वन्द युद्ध हो रहा था। वे उसके कमनीय करों द्वारा अपने हृदय पर पड़ी हुई वरमाला देखनेको उत्सुक होरहे थे।

कल्पलतिकाकी तरह सुकोमल सुलोचना, रूप सौन्दर्यके मदसे मदोन्मत्त राजकुमार वृक्षोंको लांघती हुई जयकुमार कल्पतरुके सामने जाकर रुक गई। उसका हृदय धड़कने लगा, पैर आगे नहीं बढ़ सके, उसने अपने दोनों करपल्लवोंको ऊंचे उठाया, और विजय सूचक तोरण बांध कर वरमाला जयकुमारके गलेमें डाल दी। अपना हृदय समर्पण कर वह कुछ समयतक उनके सामने हर्ष और लज्जाके आवेशमें चित्र-लिखितसी खड़ी रही। उसने अपने हृदयसे उन्हें अपना पति स्वीकार किया। विजयी जयकुमारका हृदय विजयोल्लाससे फूल उठा, उसने अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझा।

(४)

स्वयंवर मंडपमें सम्राट भरतके ज्येष्ठ पुत्र युवराज अर्ककीर्ति भी बैठे थे उन्हें विश्वास था कि सुन्दरी सुलोचना मुझे ही स्वीकार करेगी। मेरे अतिरिक्त ऐसा व्यक्ति कौन है जिसके गलेमें वरमाला पड़ सकेगी, ऐसा वे सोच रहे थे, किन्तु अपनी आशाके प्रतिकूल जयकुमारके गलेमें वरमाला पड़ती देख उनका हृदय लज्जा और क्रोधसे जल उठा, अपमानकी ज्वाला उनके सारे शरीरमें धधक उठी। कुचले गए सर्पके फणकी तरह उनके नेत्र रक्तवर्ण होगये। नीतिका अंकुश न माननेवाले मदोन्मत्त हाथीकी तरह वे उच्छृंखल हो उठे। विवेक उन्हें सान्त्वना न दे सका और वे जयकुमार जैसे वीर सिंहसे भिड़नेको तैयार होगये। उन्होंने अपने सेनापतिको सैन्य सजानेका हुकम दिया। अपमानित नरेश अर्ककीर्तिके साथी बने और सभीने जयकुमार पर एकत्रित होकर हल्ला करनेका निश्चय किया। कुछ नीतिज्ञ नरेशोंने उन्हें रोकनेका प्रयत्न किया, मंत्रियोंने भी समझाया, किन्तु इन सब बातोंका उसके धधकते क्रोधाग्नि कुंडमें आहुति जैसा प्रभाव पड़ा, वह अपने आपेको भूल गया और जयकुमार पर निंद्य और कुत्सित वचनोंकी कीचड़ फेंकने लगा।'

जयकुमार वीर था, नीतिज्ञ था, वह इस अन्याय युद्धको आगे बढ़ाना नहीं चाहता था। चक्रवर्ति पुत्रके लिए उसके हृदयमें स्नेह था, वह फूलनेवाली स्नेह बल्लरीको तोड़ना नहीं चाहता था, किन्तु अपना अपमान भी उसे असह्य था। उसने स्नेह भरे शब्दोंसे अर्ककीर्तिको समझानेका प्रयत्न किया। वह बोले—युवराज! मेरी इस

विजयसे तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए था। लेकिन मैं देखता हूं कि तुम इससे क्षुब्ध हो उठे हो—चक्रवर्ति पुत्रके लिए यह शोभाप्रद नहीं। मैं जानता हूं तुम वीर हो, लेकिन वीरताका इस प्रकार दुरुपयोग करना, होनेवाले भावी भारत-सम्राट्के लिए अनुचित है। वीरता अन्याय प्रतिकारके लिए होना चाहिए, दुष्ट दलनके लिए ही उसका प्रयोग उचित होगा। इसके विरुद्ध एक अन्याय युद्धमें उसका उपयोग होता देख कर मेरा हृदय दुखित होरहा है। वीर कुमार! तुम्हें शांत होना चाहिए और मेरी इस विजयमें सम्मिलित होकर अपने स्नेहका परिचय देना चाहिए।

अर्ककीर्ति मानो इन शब्दोंको सुननेके लिए तैयार न था, बोला—जयकुमार! गलेमें पड़े हुए फूलोंको देखकर तुम विजयसे पागल हो गए हो, इसलिए ही तुम्हें मेरा अपमान नहीं खलता। राजाओंकी विराट् सभामें चक्रवर्ति पुत्रके गौरवकी अवहेलना करना तुम्हारे जैसे पागलोंका ही काम है, मैं यह तुम्हारा पागलपन अभी ठीक करूंगा। तुम्हें अभी मालूम हो जायगा कि वीर पुरुष अपने अन्यायका बदला किस तरह लेते हैं। यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय हैं, तो अब भी समय है तुम इस कुमारीको सादर मेरे चरणोंमें अर्पण कर दो। तुम जानते हो कि श्रेष्ठ वस्तु महान् पुरुषोंको ही शोभा देती है, क्षुद्र व्यक्तियोंके लिये नहीं! इसलिए मैं तुम्हें एकबार और समय देता हूं, तुम खूब सोच लो। यदि तुम्हें अपना जीवन और भारतके भावी सम्राट्का सम्मान प्रिय है तो सुलोचना देकर मेरे प्रेम-भाजन बनो।

जयकुमारका हृदय इन शब्दोंसे उत्तेजित नहीं हुआ। उसने

एकबार और अपनी सहृदयताका प्रयोग करना चाहा। वह बोला—कन्या अपना हृदय एकबार ही समर्पण करती है और जिसे समर्पण करती है वही उसके लिए महान् होता है। महानता और तुच्छताका नाप उसका परीक्षण है। अपने मुंहसे महान् बनना शोभापद नहीं। कुमारीने मुझे वरण किया है, वह हृदयसे अब मेरी पत्नी बन चुकी है। किसीकी पत्नीके प्रति दुर्भावनाएं लाना नीचताके अतिरिक्त कुछ नहीं है। चक्रवर्ति पुत्रके मुंहमें इस तरहकी अनर्गल बातें सुननेकी मुझे आशा नहीं थी। तुम्हें जानना चाहिए कि वीर पुरुष महिलाओंकी सम्मान रक्षा अपने प्राण देकर करते हैं। यदि तुम नहीं मानते, तुम्हारी दुर्बुद्धि यदि तुम्हें अन्यायके लिए प्रोत्साहित करती है तो मुझे तुम्हारे अविवेकको दंड देनेके लिए युद्धक्षेत्रमें उतरना होगा। मैं तुमसे डरता नहीं हूं, जयकुमार अन्याय और युद्धसे कभी नहीं डरता। यदि तुम्हारी इच्छा युद्धका तमाशा देखनेकी ही है तो मैं वह भी तुम्हें दिखला दूंगा।

कुपित अर्ककीर्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह बोला—युद्ध तो तुम्हारे शिरपर खड़ा हुआ है, तुम उसे बातोंसे टालनेका प्रयत्न क्यों करना चाहते हो? यदि तुम्हें मृत्युका भय है तो शीघ्र ही मुझे सुलोचना समर्पित करदो, नहीं तो तुम्हें मृत्युकी गोदमें सुलाकर मैं इसका उपभोग करूंगा।

शांत ज्वालाको पवनने उभाड़ा। जयकुमारके हृदयका वीरभाव अब सोता नहीं रह सका। वह बहादुर, अर्ककीर्ति और उसके उभाड़े सैकड़ों राजकुमारोंके साम्हने कुपित केशरी, सिंहकी तरह बढ़ चला।

अकंपनकी सेनाने उसका साथ दिया। अर्ककीर्तिका विशाल सैन्य और राजाओंके समूहने एकत्रित होकर उसे घेर लिया। तीक्ष्ण वाणोंकी वर्षा होने लगी और मानव जीवनके साथ मृत्युका खेल होने लगा। अर्ककीर्तिकी संगठित विशाल सेनाके साम्हने जयकुमारका सैन्यबल पीछे हटने लगा। जयको यह सहन नहीं हुआ। वीरताकी धारा बहाते हुए उसने अपने सैनिकोंको तीव्र आक्रमणके लिए उत्तेजित किया और शत्रुके दलको चीरता हुआ वह अर्ककीर्तिके निकट पहुंचा। उसने अर्ककीर्तिको संबोधित करते हुए कहा—इन बेचारे गरीब सैनिकोंका वध करनेसे क्या लाभ? परीक्षण तो हमारे और तुम्हारे बलका है, आओ हम और तुम युद्ध करके शक्तिका निर्णय करें।

जयकुमारके शब्द पूर्ण होनेके साथ ही उसपर एक तीक्ष्ण वाणका वार हुआ लेकिन उस तीरको अपने पास आनेके पहिले ही उसने काट डाला तब तो अर्ककीर्तिने उसपर और भी अनेक अचूक शस्त्रोंका प्रयोग किया परन्तु युद्ध-कुशल जयने उन सभी शस्त्रोंको बेकार कर दिया और बड़ी कुशलतासे शस्त्र प्रहार करके उसे नीचे गिराकर दृढ़ बंधनमें कस लिया।

अर्ककीर्तिके पराजित होते ही सभी राजकुमारोंने हथियार डाल दिए। विजयने जयकुमारका वाण किया किन्तु अर्ककीर्तिके प्रति उसके हृदयमें कोई प्रतिहिंसा अथवा विरोध नहीं था। वह तो अन्यायका बदला देना चाहता था इसलिए उन्हें उसी समय बंधन मुक्त कर दिया। अर्ककीर्तिका मुंह इस अपमानसे ऊंचे नहीं उठ सका।

वीर जयकुमारकी इस विजयसे अकंपन बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने विजय और विवाहके उपलक्षमें एक विशाल उत्सवकी योजना की। युद्धस्थल विवाहोत्सवके रूपमें बदल गया। अर्ककीर्ति और अन्य राजाओंने इस महोत्सवमें सम्मिलित होकर पिछले विरोधको प्रेममें बदल दिया। नृत्य, गान और आनंदका मधुर मिलन हुआ और जयकुमारके गलेमें डाली वरमालाका फल सुलोचनाने विवाहके रूपमें पाया।

(५)

सुलोचना जैसी सुन्दरी और सुशील पत्नी पाकर जयकुमारका जीवन स्वर्गीय बन गया था। सुलोचनाके लिए उसके हृदयमें निःछल स्नेह था। वह नारी जातिका सम्मान करना जानता था। उसका स्नेह उस अजस्र झरनेकी तरह था जो कभी सूखता नहीं है। दोनों ही एक दूसरे पर हृदय न्योछावर करते थे और मानवीय कर्त्तव्योंका पालन करते थे। गृहस्थ जीवनके कर्त्तव्योंको वह भूल जाना नहीं चाहते थे। जनताकी सेवा, दया, सहानुभूति और उपकारकी भावना-ओंसे उनका मन भरा हुआ था, धर्मपर उनकी अटूट श्रद्धा थी। देव और गुरुभक्तिको वे जानते थे। उनका जीवन एक आदर्श जीवन था।

जयकुमारको जो कुछ भी वैभव प्राप्त था उससे वह सुखी थे। वे अपने जीवनको संयमी और धार्मिक बनाना चाहते थे। मन कहीं संयमकी सीमा उल्लंघन न कर जाए इसके लिए उन्होंने आजीवन एकपत्नी व्रत लिया था। वीर, साहसी और सुन्दर होनेके कारण वह अनेक सुन्दरियोंके प्रिय थे। लेकिन सुन्दरताके इस आलोकमें

उनके नेत्र सुलोचनाकी दिव्य आभा पर ही अनुरंजित रहते थे। वासनाओंके बीहड़ जंगलमें वे उसकी कमनीय कांतिको नहीं भूलते थे।

देवराज इन्द्रकी सभामें एक विवाद उपस्थित था, वे कहते थे, पूर्ण ब्रह्मचारीकी तरह एक-पत्नीव्रतीका भी महत्व कम नहीं है। गृहस्थ जीवनमें सुन्दरी महिलाओंके संपर्कमें रहते हुए, प्रभुता और वैभव होने पर भी अपने आपपर काबू रखना भी महान् ब्रह्मचर्य है। अखंड ब्रह्मचारी अपनी वासनाएं विजित करनेके लिए कहीं समर्थ है जब कि एकवार अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर देनेवाले व्यक्तिको अपने लिए अधिक समर्थ बनानेका प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति ब्रह्मचारी रह सकता है और उसकी सफलता एक महान सफलता कही जासकती है।

देवगण इसमें सहमत नहीं थे। वह कहते थे कि जिस पुरुषने एकवार स्त्री संसर्ग कर लिया हो वह अपने आपको काबूमें नहीं रख सकता। किसी सीमामें बद्ध रह सकना उसके लिए संभव ही नहीं। वासनाकी आगमें एकवार ईंधन पड़ चुकनेपर उसकी लपटें फिर ईंधनको छूना चाहती हैं। इस दृष्टिसे एकपत्नीव्रत कहीं ब्रह्मचर्यसे अधिक मूल्यवान पड़ जाता है लेकिन उसका होना कष्टसाध्य है। इतना त्याग मनुष्य कर सकता है लेकिन कोई उदाहरण नहीं दे सकता। दलित व्यक्तिको पददलित करनेमें कुछ अधिक साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती। गतिशील वासनाकी दिशाको अन्य दिशाकी ओर लेजाना कोई कठिन नहीं। भुक्तभोगी व्यक्तिकी वासना शीघ्र

सुलोचना स्वयंवर व मेघेश्वर जयकुमार।

ही उत्तेजित होसकती है और किसी समय भी वह पत्नीव्रतको भंग कर सकता है, उसके ब्रह्मचर्यकी कोई गारन्टी नहीं हो सकती। एकबार फिसलनेवाला दूसरीबार भी फिसल सकता है।

देवराजको यह विचार पसंद था परन्तु वे इसके अंततक पहुंचना चाहते थे। वे आगे बोले—एक उपभोगका आनंद लेनेवाले व्यक्तिके लिए अपनी इच्छाओंका सीमित रख सकना कठिन अवश्य है लेकिन वह उन्हें सीमित रख सकता है। उसे इसके लिए अधिक आत्मबलवाला और मजबूत हृदय बनना होगा। एक पत्नीव्रतके महत्वको कायम रखनेके लिए उसे एक निश्चित लक्ष्य बनाना होगा और उसी लक्ष्यपर अपने विकार और वासनाओंको लेजाना होगा। विषयकी ओर जाता हुआ मन और इन्द्रियां एक केन्द्र पर रहकर भी उसीके चारों ओर घूमती अवश्य हैं लेकिन घूमकर भी अपने केन्द्रपर ही स्थिर होती हैं। कुतुमनुमाकी सूईको चारों ओर घुमा देनेपर भी भी वह अपनी एक निश्चित दिशापर ही ठहरती है। मालाकी जाप करनेवाले साधककी उंगलिएं सभी दानोंपर जाती हुई अन्तमें सुमेरु पर ही स्थिर होती है, कहीं भी उड़नेपर भी पतंगकी सत्ता डोरवालेके हाथमें ही रहती है, इसी तरह दृढ़ प्रणवाले संयमी मनुष्यका मन एक पत्नीके बंधनको तोड़कर कहीं नहीं जाता।

देवता इन्द्रकी बातका प्रमाण चाहते थे, वे इस बातके इच्छुक थे कि पृथ्वीपर उन्हें इसकी कोई जीवित मिशाल मिले। वे इन्द्रदेवसे बोले—आप अपने सिद्धांत प्रतिपादनके लिए कोई प्रमाण दे सकेंगे? क्या आपकी दृष्टिमें कोई ऐसा व्यक्ति है जो इस कसौटीपर खरा उतर

सके? हम केवल विवादसे तुष्टि नहीं चाहते, हमें तो आदर्श देखना है। यदि आप कोई आदर्श रख सकते हैं तो उसे रखकर इस विवादको समाप्त कीजिये नहीं तो यह विवाद तो खड़ा ही रहेगा।

इन्द्रदेवने कहा—आपको प्रमाण मिलेगा और वह भी इसी समय। मैं बिना प्रमाणके कोई बात नहीं करता। रविव्रत! तुम इसी समय भारतके हस्तिनापुर नगरको जाओ, उसके नवयुवक शासकका नाम जयकुमार है। वह सुन्दर और आकर्षक भी है। उसने आजीवन एक-पत्नीव्रत पालनकी प्रतिज्ञा ली है। मानव तो ठीक हैं लेकिन मैं समझता हूं तुम देवता भी उसे व्रतसे चलित नहीं कर सकते। मैं अपने प्रमाणको सत्य साबित करनेके लिए तुम्हें वहां जानेकी आज्ञा देता हूं, तुम जाकर उसकी परीक्षा लो।

रविव्रतके हृदयमें एक गुदगुदी पैदा हुई। वह ऐसा सुयोग तो चाहता ही था—परीक्षणमें बहुत कुशल भी था। इन्द्रकी आज्ञा पाते ही वह शीघ्र ही हस्तिनापुरकी ओर चल दिया।

जयकुमार उस समय अपनी पत्नीके साथ एक वनमें क्रीड़ा कर रहे थे। उसने विद्यावलसे सुलोचनाको कुछ समयके लिए कहीं गायब कर दिया फिर उसने एक सुन्दरी सुरबालाका रूप धारण किया। अपनी प्रभासे जंगलको प्रकाशित करती हुई वह देव-बाला अचानक ही जयकुमारके साम्हने पहुंची और भयभीत स्वरसे बोली—देव! आप मेरी रक्षा कीजिए, मैं सताई हुई एक बाला हूं, आप मुझे विरचिसे बचाइए।

जयकुमार उसके भयको दूर करते हुए बोले—बहिन! बोलो तुम पर किस विरचिने आक्रमण किया है, मैं तुम्हें उससे छुटानेका वचन देता हूं।

देवबाला बोली—देव ! मैं राजा देवसेनकी कन्या हूं । आज सवेरे ही मैं अपने पिताके साथ वायुयान पर निकली थी, निकटके उस विशाल वनमें मेरा वायुयान अटक गया, मेरे पिताजी मरणोन्मुख हैं । मैं किसी तरह बचकर आपके पास आई हूं, आप मेरी अवश्य ही सहायता कीजिए ।

जयकुमारने कहा—बहिन, किसी भी प्राणीकी सेवा करना मैं अपना सौभाग्य समझता हूं, मुझे प्रसन्नता होगी यदि मैं तुम्हारी कुछ भी मदद कर सकूंगा ।

देवबाला बोली—देव ! तब आप शीघ्र चलिए । शीघ्र सहायता न मिलनेपर कहीं मेरे पिताजीके प्राण संकटमें न पड़ जांय । बालाकी सरल बातोंमें वह आगए और उसके साथ चल दिए । कुछ दूर वनमें उन्होंने प्रवेश किया ही था कि वह सुंदरी बड़े आहत स्वरमें बोली—ओह प्रभो ! मुझे बचाइए ।

तुम्हें क्या हुआ ? यहां कौन है ? जिससे तुम डर रही हो । जयकुमारने कहा । बाला जयकुमारका स्पर्श करती हुई बोली—देखिए वह अपने धनुषबाणको ताने हुए मेरी ओर भयानक दृष्टिसे देख रहा है ।

बहिन ! मुझे तो यहां कोई नहीं दिखता, तुम व्यर्थ ही संदेह करके डर रही हो । जयकुमारने सरलतासे उत्तर दिया ।

बाला अत्यंत निकट होकर बोली—ओह ! आप उसे नहीं देख पाते ! वह निर्दय मदन है ! आपके साथ मुझे इस एकान्तमें देखकर ही तो वह रुष्ट हुआ है मैं अब आपकी शरण हूं, आप मेरी रक्षा कीजिए ।

जयकुमारने कुछ रुष्ट होते हुए कहा—बहिन ! तुम यह क्या कहती हो ? तुम मुझे अपने पिताजीकी रक्षाके लिए यहां लाई थीं बतलाओ ! तुम्हारे पिताजी कहां हैं ? मैं उनकी क्या सहायता करना चाहता हूं।

बाला बोली—देव ! पिताकी रक्षा तो होचुकी, अब मैं अपनी रक्षा आपसे चाहती हूं। आपको देखकर मेरा मन विकल होरहा है, वेदनासे मेरा सारा शरीर जला जारहा है। आप मुझपर अपने शीतल स्नेहरसकी वर्षा कीजिए और मुझे अपने हृदयमें स्थानदेकर तृप्त कीजिए।

जयकुमार धैर्यके साथ बोला—बहिन ! अपने मनके विकारको इस तरह प्रकट करना भारतीय ललनाओंके लिए शोभा नहीं देता। भारतीय बहिनें कभी भी किसी अन्य पुरुषके प्रेमकी भिक्षा इस तरह नहीं मांगती, तुम्हें अपने हृदयकी पवित्रता इस तरह खोना नहीं चाहिए। बहिन ! अपने विवेकको जागृत करो और अपनेको मलिनताकी कीचड़में सान कर अपवित्र मत बनाओ। मैं विवाहित हूं। अपनी पत्नीके अतिरिक्त सभी महिलाओंसे मेरा पवित्र माता और बहिनका नाता है तुम मुझे क्षमा करो और अन्य सेवा और सहायताके लिए आज्ञा दो।

बाला और भी अधिक स्नेह जागृत करती हुई बोली—देव ! आप ठीक कहते है। लेकिन मेरा मन तो मेरे काबूमें नहीं है, मैं क्या करूं ? उसपर तो मदनदेवका अधिकार होचुका है, वह मुझे जो आज्ञा देगा वह मानना ही होगी। मनमोहन ! मेरा हृदय तो आपके रूप और सौन्दर्यका दास बन चुका है वह बरबस बिक चुका है। आपके

इस नवयौवन पर। मैं कुमारी हूं राज कन्या हूं, सौभाग्यसे सौन्दर्य भी मुझे प्राप्त है। यह एकान्तका सुयोग भी है, इस सुन्दर एकान्तमें नव युवती पाकर आपको कृतार्थ होना चाहिए और इस स्वर्ण योगको सफल बनाकर स्वर्गीय सुखका उपभोग करना चाहिए। पुण्यका फल बारबार नहीं मिलता।

जयकुमारका हृदय उसकी निर्लज्ज बातें सुनकर कांप उठा, उसे स्वप्नमें भी ऐसी बातें सुननेकी आशा नहीं थी लेकिन उसका हृदय चलित नहीं हुआ। वह दृढ़ताके स्वरमें बोला—बहिन! मुझसे तुम्हें ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिए। तुमने अपने हृदयकी कालिमाका मुझपर व्यर्थ ही प्रयोग किया। आर्यपुरुषके लिए इसतरह प्रलोभनमें फंसा लेनेकी बात सोचना छलना मात्र है। बहिन! तुम मेरी बहिन हो। बहिनकी पवित्र वाणी इसतरह विषमय बन गई है इससे अधिक दुःखकी बात मेरे लिए और क्या होगी? मैं चाहता हूं मेरी बहिन, बहिनके स्थानपर ही रहे। यदि मेरे भ्रातृभावमें शक्ति है तो वह बहिनको बल देगा ताकि वह अपनेको पवित्र बना सके। इससे अधिक सेवा मेरी और क्या होसकेगी कि मैं अपनी बहिनकी कालिमाको धो सकूंगा। बहिन! भाई बहिनके मनको एकांत और सुन्दरता क्या? संसारकी सारी शक्ति भी चलित नहीं कर सकती। तुम बलवान बनो, हृदयकी निर्बलता निकाल दो, निर्भयता और विवेकको अपना साथी बनाओ, फिर मदन तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकेगा। तुम अब सावधान बनो और अपने अन्दरके नारी तेजको देखो। सुनो! वह तुमसे क्या कह रहा है? वह यही कहता

है कि पवित्रता ही नारी जीवन है और शील ही नारी-मर्यादा है, तुम उसे संभालो।

पवित्रताके साम्हने देवताका छल-छद्म नहीं टिक सका। उसे पराजित होकर प्रकट होना पड़ा। रविव्रतने अपना मायावेश बदला। देवबालाका चोला उतारकर वह अपने असली रूपमें आया और इन्द्र सभाका सारा हाल सुनाकर जयकुमारसे बोला-जयकुमार! वास्तवमें आप जयकुमार ही हैं। आप एक-पत्नीव्रतके आदर्श हैं। आप जैसे व्रती पुरुषोंके बलपर ही देव सभामें इन्द्र इस व्रतपर निर्भय बोल रहे थे। आजीवन बाल ब्रह्मचारी महान हैं किन्तु आप जैसे एक-पत्नीव्रतधारी भी महानतासे कम नहीं हैं। मैं आपकी दृढ़ताकी प्रशंसा करता हूं और निःसंकोच रूपसे कहता हूं कि भारतको आप जैसे दृढ़ व्यक्तियोंपर अभिमान होना चाहिए। संसार आपसे दृढ़ताका पाठ सीखे और प्रत्येक भारतीय आपके आदर्शको ग्रहण करे।

रविव्रतने इन्द्रसभामें जाकर अपने परीक्षणकी रिपोर्ट देवगणके साम्हने प्रस्तुत की, देवताओंने इन्द्रके दृष्टिकोणको समझा और उनकी विचारधाराको स्वीकार किया।

जयकुमारने एकपत्नीव्रतका निर्वाह करते हुए सेवा और परोपकारमें जीवनके क्षणोंको व्यतीत किया। प्रजापर उनके संयमी जीवन, न्याय-प्रियता और वीरताका एकांत प्रभाव पड़ा था।

एक दिन उनके हृदयमें लोककल्याणकी भावना जागृत हुई। वे राज्य बंधनमें नहीं रह सके। वे तपस्वी बने, आत्मकल्याणके पथपर बढ़े और धर्मके एक महा स्तंभ बने।

(३)

चक्रवर्ति भरत ।

(भारतके आदि चक्रवर्ति-सम्राट् ।)

(१)

संसारसे विरक्त होने पर ऋषभदेवजीने अयोध्याका राज्य-सिंहासन युवराज भरतको समर्पित किया था। भरतजी भारतवर्षके सबसे पहले प्रतापी सम्राट् थे। जिसके प्रबल प्रतापके आगे मानवोंके मस्तक भक्तिसे झुक जाते, ऐसे दिव्य रत्नोंसे चमकनेवाले राज्यमुकुटको उन्होंने अपने सिरपर रक्खा था। वे भारतवर्षके भाग्य विधाता थे। उन्होंने संपूर्ण भारत विजय कर अपने अखंड शासनको स्थापित किया था, अपने नामसे भारतको प्रसिद्ध किया था।

राज्य सिंहासनपर बैठते ही उन्होंने अपनी महान सामर्थ्य और पराक्रमसे बड़े २ राजाओंके मस्तकको झुका दिया था।

प्रभातका समय, सम्राट् भरत अनेक नरेशोंसे शोभित सिंहासन पर बैठे थे। सामंतगण शस्त्रोंसे विभूषित नियमित रूपसे खड़े थे। भरतकी वह सभा इन्द्र सभाके सौन्दर्यको पराजित कर रही थी। इसी समय प्रधान सेनापतिने राज्य सभामें प्रवेश किया। उसका हृदय हर्षसे भर रहा था। अपने मस्तकको झुकाकर वह बड़ी नम्रतासे बोला—अपने भुजबलसे नरेशोंका मानमर्दन करनेवाले सम्राट्! आज आप पर देवताओंने कृपा की है, सौभाग्य आपके चरणोंपर लोटनेको आया है। आज आपकी आयुधशाला प्रकाशसे जगमगा रही है, जिसके तेजके आगे शूरवीरोंके नेत्र झपक जाते हैं, सूर्यका प्रकाश भी मंदसा पड़ जाता है और कायरोंके हृदय भयसे कातर होजाते हैं। वही अद्भुत चक्ररत्न आपकी आयुधशालाको सुशोभित कर रहा है आप चलकर उसे ग्रहण कीजिए।

भरतनरेशने हर्षसे यह समाचार सुना, वे आयुधशाला जानेके लिए तैयार होरहे थे इसी समय एक ओरसे मंगलगान करती हुई महलकी परिचारिकाओंने प्रवेश किया, वे सम्राट्का सुयश गान करती हुई बोली—राजराजेश्वर! आज हम बड़ी प्रसन्नतासे आपको यह संदेश सुना रही हैं, आज हमारा हृदय हर्षसे परिपूर्ण होरहा है, सुनिए जो प्रबल पुण्यका प्रतिफल है जिसे देखकर हर्षका समुद्र उमड़ने लगता है और जो कुलकी शोभा है ऐसे आनन्द बढ़ानेवाले युवराजने आपके राजमहलको प्रकाशित किया है आप चलकर उसे देखिए अपने नेत्रोंको तृप्त कीजिए और हमारी बधाई स्वीकार कीजिए।

समयकी गति विचित्र है। जब किसीका सौभाग्य उदित होता

है तब उसके चारों ओर हर्षका साम्राज्य विखर जाता है। सफलता और यश उसके चरणोंपर अपने आप लौटने लगता है। आज भरतका सौभाग्य सूर्य मध्याह्न पर था, समयने उन्हें चारों ओरसे हर्ष ही हर्ष प्रदान किया था। दोनों शुभ संवाद उनके हृदयको हर्षसे भर रहे थे इसी समय सभी ऋतुओंके फल फूलोंकी डाली सजाए हुए और असमयमें ही वसंतकी सूचना देनेवाले वनमालीने राज्य सभामें प्रवेश किया। पृथ्वीतक मस्तकको झुकाकर उसने सम्राटको प्रणाम किया फिर सुगंधिसे भरे पुष्प और फूलोंको उन्हें भेंट दिया।

आजके पुष्पमें कुछ अनूठी ही सुगंधि थी। उनकी शोभा भी विचित्र थी। भरतजीने इस चमत्कारको देखा, वे बोले—शुभे! आज मैं इन फल फूलोंके रूप और गंधमें कैसा परिवर्तन देख रहा हूं? क्या मेरे नेत्र मुझे धोखा देरहे हैं? बोलो इसका क्या कारण है?

वनमाली बोला—नाथ! मैं उपवनमें घूम रहा था, सारे उपवनको मैंने आज एक नई शोभासे ही सजा देखा। मैंने देखा जिस आम्रकी डालियें शुष्क हो रही थीं वे नवीन मंजरियोंसे सजकर झुक गई हैं, मधुपोंका गान होरहा है और सभी ऋतुओंके फल फूलोंसे वनश्री वसंतकी शोभा प्रदर्शित कर रही है। जब मैं और आगे वनमें पहुंचा तो देखा कि मृगका बच्चा सिंह शावकके साथ खेल रहा है और शांतिका साम्राज्य सारे जंगलमें फैला हुआ है। मैं यह सब देख ही रहा था कि इसी समय मुझे आकाशसे कुछ विमान आते दिखलाई दिए मैंने। आगे बढ़कर सुना कुछ मधुर-कंठ भगवान ऋषभदेवका जयगान कर रहे हैं, उस ध्वनिमें मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ा, कोई कहता था आगे

बढ़ो मुझे भी भगवान ऋषभके दर्शन करनेदो। मैं यह कुछ नहीं समझ सकता और आपकी सेवामें यह समाचार सुनाने आया हूं।

भरतजीने वनमालीसे सब कुछ सुना। वे समझ गए कि आज योगेश्वर ऋषभदेवको कैवल्य प्राप्त हुआ है। वे अपनी सुधि बुधि भूल गए। भक्तिसे नम्र होकर वे सिंहासनसे नीचे उतरे और विनत मस्तक होकर वहींसे परोक्ष नमस्कार किया। फिर यह शुभ संवाद लानेवाले वनमालीको बहुमूल्य वस्त्राभूषण दान दिए और सब कामोंको भूल कर वे कैवल्य उत्सवमें जानेकी तैयारी करने लगे। उनका हृदय धर्मप्रेमसे पूरित था। सांसारिक कार्योंकी अपेक्षा उन्हें अध्यात्मसे अधिक प्रेम था यही कारण था कि उन्होंने चक्र प्राप्ति और पुत्रोत्सवकी अपेक्षा कैवल्य महोत्सवको अधिक महत्व दिया। उन्होंने नगरमें घोषणा करादी कि आज भगवान् ऋषभदेवका कैवल्य कल्याणक मनाया जायगा, प्रत्येक नरनारीको इस उत्सवमें सम्मिलित होना चाहिए और रात्रिको दीपक जलाना चाहिए।

घोषणा सुनते ही संपूर्ण जनता थोड़े समयमें ही एकत्रित हो गई और चक्रवर्ति भरतके साथ केवल महोत्सव मनानेको चल दी। उनके जानेके पहले ही मानव और देवताओंका समूह वहां एकत्रित हो चुका था। सभी जन योगेश्वर ऋषभकी दिव्य मूर्तिके दर्शन करने और उनका उपदेश सुननेको आतुर थे। भक्ति और श्रद्धासे सभीके मस्तक नत थे। चक्रवर्तिके पहुंचने पर सभीने हर्ष ध्वनि प्रकट की फिर सभी एकत्रित जनताने भगवान् ऋषभको भक्तिसे प्रणाम किया। श्री ऋषभदेवजीने उपस्थित जनताको आत्मकल्याणका संक्षिप्तमें उपदेश

दिया। चक्रवर्तिने धर्मका रहस्य जाननेके लिए उनसे कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर पाकर वे संतुष्ट हुए। उपदेश समाप्त हुआ और वे जनताके साथ अपने नगरको लौट आए।

(२)

नगरमें आकर भरतजीने पुत्रजन्मका उत्सव मनाया। सुरीले बाजे बजने लगे और स्थान स्थानपर नाच गान होने लगा। सारा नगर वंदनवारसे सजाया गया और नगरनिवासी आनंदविभोर होगये। अपने आश्रितोंको उन्होंने उत्तम वस्तुयें प्रदान कीं फिर नगरनिवासियोंको निमंत्रित कर उनका यथेष्ट सत्कार किया, और कुटुंबीजनोंको सम्मानित किया। पुत्रोत्सव समाप्त होनेपर अपने सामंतोंके साथ वे आयुधशालाको गए। वहां उन्होंने चक्ररत्नकी पूजा की और फिर भारत दिग्विजय पतिको सैन्य तैयार करनेकी आज्ञा दी।

युद्धका बाजा बजने लगा। सैनिक अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित होगये। हाथी, घोडे और पैदल सिपाहियोंसे सजकर अपनी विजयी सेनाको करनेके लिए सेना लेकर चक्रवर्ती भरत विजयके लिए चल दिए।

अयोध्यासे चलकर उन्होंने पूर्व पश्चिम और दक्षिणके सभी आर्यवंशीय राजाओंको अपने आधीन बनाया। जिस दिशाकी ओर चक्रवर्तिकी विशाल सेना जाती थी उसी ओर विना युद्धके ही राजाओंको अपने आधीन बना लेती थी। फिर वे उत्तर दिशाकी ओर सिंधु नदीके तट पर चलते हुए विजयार्धगिरिके निकट पहुंचे। पर्वत पर रहनेवाले सभी देव और मानवोंने उनका अभिषेक किया और उन्हें अपना स्वामी घोषित किया। विजयार्द्धके दक्षिण भागको जीतकर वे उत्तरभारतके मलेच्छ राजाओं पर अपना अधिकार जमानेके लिए चलदिए।

उत्तर भारतकी दिग्विजयको जाते हुए मार्गके अनेक राजा बहुतसी भेंट और सैनाएं देकर चक्रवर्तिकी शरणमें आए थे। उस देशके महाराजा जयकुमार भी अपनी सैन्यसहित सम्राट्से मिले थे। राजाओंके विशाल सैन्य समूहके साथ, सम्राट् विजयार्धकी उत्तरी गुफाके मार्गपर पहुंच गए। वहां उन्होंने अपनी महान् शक्तिके प्रभावसे गुफाके वज्र द्वारको खोला। और गुफा निवासियोंका आदर प्राप्त किया, फिर आगे चलकर उत्तर म्लेच्छ खंडकी कुछ दिशाओंपर अपना विजय ध्वज फहराया। वहांके म्लेच्छ राजाओंने सम्राट्का प्रभुत्व स्वीकार किया और बदलेमें अनेक उत्तम वस्तुएं उन्हें भेंटमें दी। फिर उन्होंने मध्य म्लेच्छ खंड जीतनेके लिए प्रस्थान किया और शीघ्र ही उस खंडके अनेक विलोंपर अपना अधिकार कर लिया। मध्य म्लेच्छ खंडके महा पराक्रमी राजा चिलात आवर्तने चक्रवर्तिकी विजयका समाचार सुना। वे बड़े बलवान और शक्तिशाली राजा थे। उन्होंने उनके आगे बढ़नेका विरोध किया, व चक्रवर्तिकी सेनाने उनसे युद्ध करके उन्हें जीता। हार जानेपर उन्होंने अपने कुलरक्षक नागमुख और मेघमुख दैत्योंकी शरणली, मेघमुख दैत्योंने अपने मंत्रों द्वारा मूसलधार जलकी वर्षाकी तब चक्रवर्तिने अपने विशाल तर्क द्वारा घनघोर वर्षासे अपने सैनिकोंकी रक्षा की, फिर नागमुख जातिके देवोंने अपने मंत्रित शस्त्रोंसे चक्रवर्तिकी सेनापर आक्रमण किया। चक्रवर्तिने महा प्रतापी राजा मेघेश्वर जयकुमारको नागमुखोंसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। जयकुमारने नागमुखोंके मंत्रोंको अपने शस्त्रों द्वारा वेकार कर दिया। अपने मंत्र बलको वेकार होता देखकर वे भागने लगे। उनके भागते ही सभी म्लेच्छ राजा

चक्रवर्तिकी शरणमें आए और उनका प्रभुत्व स्वीकार किया । संपूर्ण म्लेच्छ खंडपर अपना अधिकार जमाकर चक्रवर्ति वृषभाचल पहाड़ पर आए । पहाड़की शिलापर उन्होंने अपनी दिग्विजयकी संपूर्ण प्रशस्ति अंकित की फिर अपने नामको लिखा और विजययात्रा समाप्त की ।

विजय यात्रा करके उन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया । वहां सभी राजाओंने मिलकर विजयोत्सव मनाया और उन्हें भरतके आदि चक्र-वर्तिके नामसे घोषित किया ।

सम्राट् भरतने अपनी विजययात्राके समय उत्तम रत्न, वस्त्र, अनेक हाथी, घोड़े, आदि भेंटमें प्राप्त किए थे । उनका वैभव महान था । उनके वैभवका वर्णन करना कवि–लेखनीके बाहरकी बात थी । वे न्याय-प्रिय शासक थे । अन्याय और अत्याचार उनके राज्यमें कहीं नामको नहीं था । उनके शासनसे सभी संतुष्ट और सुखी थे ।

वे व्यक्ति जो समाजमें धन वैभव अथवा अधिकारकी दृष्टिसे कुछ महत्व रखते हैं, जिनके सहारे कुछ व्यक्तियोंका जीवन निर्वाह अवलंबित रहता है और जो धन द्वारा बहुतसे प्राणियोंका उपकार कर सकते हैं, यदि वे धार्मिक अथवा सामाजिक कार्योंमें अपना निःस्वार्थ सहयोग देते हैं, उसकी बागडोर अपने हाथमें लेकर आगे बढते हैं तो उनके पीछे साधारण जनता शीघ्रतासे चलनेको तैयार हो जाती है ! साधारण जनता अनुकरणशील होती है । जैसा कार्य अपनेसे बड़े व्यक्तियों द्वारा करते देखती है वह उसी तरह अनुकरण करनेकी चेष्टा करती है, धनिक वर्ग और समाजके प्रमुख पुरुष समाजको जिस दिशामें लेजाना चाहें वे उन्हें उसी ओर ले जा सकते हैं । धन वैभव

अधिकार शारीरिक शक्ति आदि ऐसी निधिएं हैं जिनके सदुपयोगसे मानवका अधिकसे अधिक उपकार और उद्धार किया जा सकता है और असलियतमें देखा जाय तो यह है इसी उपयोगके लिए, किन्तु इनके सदुपयोगकी अपेक्षा आज इनका दुरुपयोग ही अधिक देखा जाता है।

वैभव और अधिकार पाकर मानव अन्धा बन जाता है, उसके हृदयका करुण स्रोत सूख जाता है, उनमें वह असलियतके दर्शन नहीं कर पाता, दुखित और त्रसित जनकी पुकार नहीं सुन पाता। भोग लिप्सा और विषय लालसाएं उस पर अपना काबू कर लेती हैं अपने विलासपूर्ण जीवनमें वह इतना व्यस्त हो जाता है कि साधारण जनसमूहके जीवनका उसे ध्यान नहीं रहता। इन्द्रियतृप्तिमें वह अपने अन्दरका विवेक खो देता है। ठाठबाट और मौज शौकसे रहना उसका जीवन ध्येय हो जाता है। साधारण जनतासे बात करना, उनकी पुकार सुनना, उनके कष्टोंकी ओर दृष्टिगत करनेमें वह अपना अपमान समझता है। जिस साधारण जनताके श्रम और जीवनके फलस्वरूप उनकी गाढ़ी कमाईका वह उपयोग करते हैं उन्हें मानव नहीं समझते। उनके स्वार्थको वह अनीति समझते हैं। उनकी स्वतंत्रताको गरूर और उनके जीवनको कीड़ेमें कोड़ोंका जीवन समझते हैं। इस विचारका धनिक और अधिकारी देश और समाजके लिए घातक सिद्ध होता है और जनता उसकी इस निष्ठुरतासे संहनन कर सकनेके कारण विद्रोह कर बैठती है और सारे संसारमें अशांतिकी ज्वाला धधक उठती है।

भरत चक्रवर्ति सम्राट् थे। उनके वैभव और अधिकारकी सीमा

नहीं थी। उनकी उंगलीके ईशारे पर सारा भारत नाचता था किन्तु वैभवके इस घटाटोपमें वे धर्म और विवेकको भूले नहीं थे। वे राज्य-सिंहासन पर बैठ कर न्यायकी पुकार सुनते थे, जनताके कष्टोंको दूर करनेका प्रयत्न करते थे और राज्यकी समृद्धि और उसके गौरवकी चिंतना करते थे।

जनताकी प्रत्येक आवाज सुननेको उनके कान सतर्क रहते थे, और उनको सुखी बनानेका ध्येय रहता था। प्रत्येक विभागका कार्य संगठित था। हरएक कर्मचारीके प्रति उनका प्रेममय शासन था। उस शासनके बंधनमें बंधे हुए वे अपने कर्तव्यको समझते थे। सम्राट् उन्हें जनताके सेवक रूपमें संबोधन करते थे। प्रत्येक कर्मचारी अपनेको जनताका सेवक समझता था और अपने अधिकारीके अनुशासनमें रह कर अपने कर्तव्यका ध्यान रखता था, अपने देश समाज और जनताकी सेवा ही उसका धर्म था।

राज्य-कार्योंमें लगे रहने पर वे धर्म-कार्य और ईश्वरकी भक्तिको नहीं भूले थे। नियमित रूपसे वे देवपूजा, गुरु वंदन, सद्ग्रन्थ अध्ययन, अतिथि सत्कार, दान और आत्मशोधनके कार्योंको करते थे।
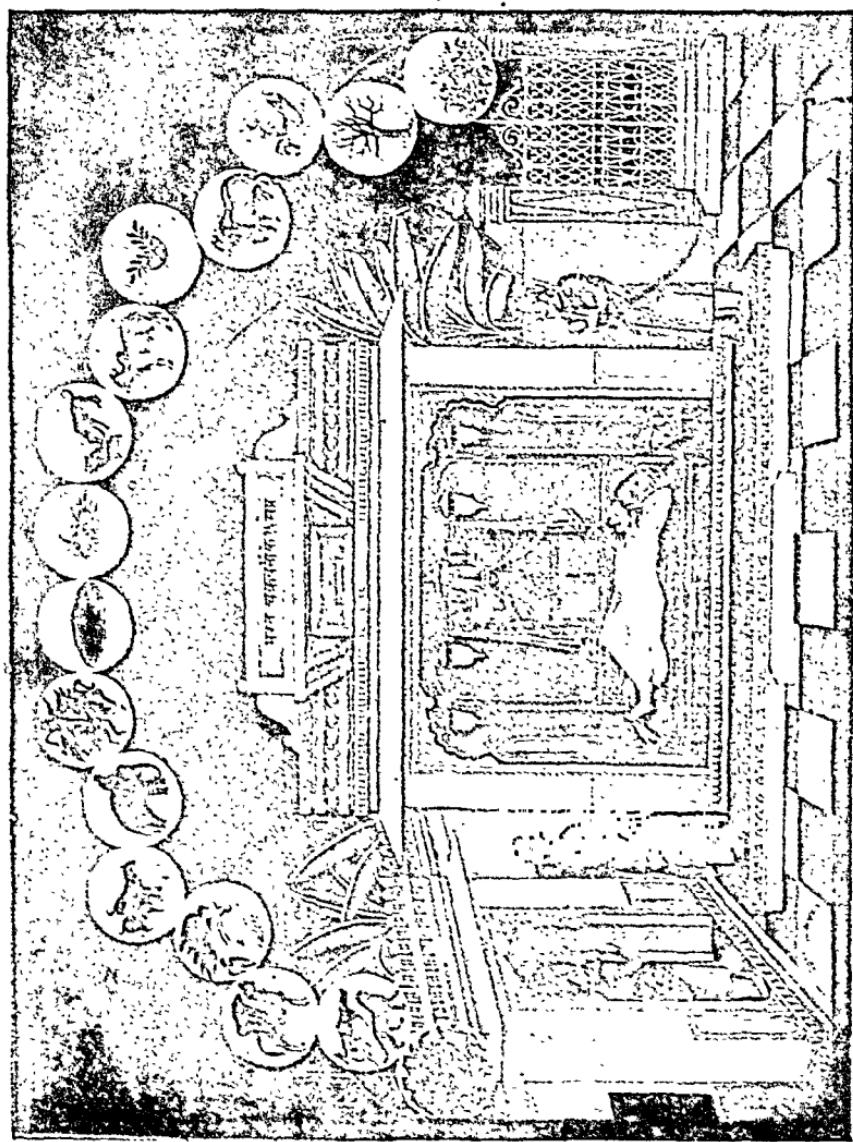
चक्रवर्तिका साम्राज्य प्राप्त कर लेनेपर भी वे आत्मतत्वके रहस्यको जानते थे अनंत ऐश्वर्यके स्वामी होनेपर भी वे उसमें लिप्त नहीं थे। वे अपने विवेकको जागृत रखते थे और 'जलमें कमल' की तरह वैभव और ऐश्वर्यकी ममतासे विलग रहते थे। जनता उनके इस तत्वज्ञान पर आश्चर्य प्रकट करती थी। उनके हृदयमें यह बात स्थान नहीं पाती थी, कि इतने वैभवकी चिंता रखनेवाला सम्राट् कभी

आत्म चिंतन कर सकता है। जनताके हृदयकी शंका समाधान होना ही चाहिए था और वह समय भी आ गया।

एक दिन चक्रवर्ती नित्यकी तरह अपने राज्य-सिंहासन पर बैठे थे इसी समय एक भद्र पुरुषने राज्य सभामें प्रवेश किया। उसने सम्राट्का नियमानुसार अभिवादन किया और फिर एक ओर खड़ा हो गया। कुछ समय तक खड़े रहने पर सम्राट्का ध्यान उसकी ओर गया। वह बोले—बंधु! आप क्या कहना चाहते हैं। इस राज्य-सभामें आप अपने मनकी प्रत्येक बात स्पष्ट रूपसे कह सकते हैं। भद्रपुरुष बोला—यदि सम्राट् क्षमा करें तो मैं उनके साम्हने अपनी शंकाका समाधान चाहता हूं। आप अपनी शंका निःसंकोच रखिए, आपको उसका उचित समाधान मिलेगा। भरतजीने कहा—

भद्रपुरुष बोला—भारत-भूषण! मैं जनता द्वारा बहुत समयसे सुन रहा हूं कि इतने बड़े साम्राज्यका बोझ अपने कंधेपर रखकर भी आपका मन उससे विरक्त रहता है, और आप अपनेको आत्म-चिंतनमें निमग्न रखते हैं। हम लोगोंको साधारण गृहस्थोंकी चिंताएँ इतनी रहती हैं कि हम अपने मनको स्थिर नहीं रखपाते, रातदिन कमाने और स्त्री पुत्रके पालन पोषणसे ही हमें छुटकारा नहीं मिलता। जब इतनासा बोझ रखकर भी हम उसके ममत्वको नहीं छोड़ सकते तब आप इतने बड़े साम्राज्यको सुव्यवस्थित रूपसे चलाते हुए अपने मनको किस तरह एकाग्र रख सकते होंगे? मेरा आप पर अविश्वास नहीं है लेकिन यह बात मेरे हृदयमें प्रवेश नहीं कर पाती, आप इसका समाधान कीजिए।

१–२३ सिंह देखे
२–सिंहके पीछे मृग समूह
३–घोड़ेपर हाथी
४–हंसको कौवा सताता है
५–दो बकरे सूखे पत्ते खा रहे हैं
६–हाथीपर बन्दर
७–भूत प्रेत नाच
८–तालाब मध्यमें खाली

भारतके आदि चक्रवर्ति भरत सम्राट्को आये हुये १६ स्वप्न ।

शंका सुनकर चक्रवर्ति भद्रपुरुषकी ओर थोड़ा मुसकराए फिर स्नेहके स्वरमें बोले—बंधु! तुम्हारी शंकाका समाधान होगा और इसी समय होगा। उन्होंने एक सेवकको आज्ञा दी कि वह एक कटोरा तैलसे लबालब भरकर लाए। तैलसे भरा कटोरा उसी समय सम्राट्के साम्हने लाया गया, साम्राट्ने सेवकको आज्ञा दी देखो! इसी तैलके कटोरेको लेकर एकवार सारे नगरका चक्कर लगा कर मेरे पास आओ लेकिन ध्यान रखना इस कटोरेसे एक बिंदु तैल न गिरने पाए, एक बिंदु तैल गिरने पर तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया जायगा। देखो! सावधान रहना तुम्हारे जीवनका मूल्य तैलके एक बिन्दुकी बराबर होगा। जाओ, इसी समय जाओ, और इस कार्यको पूरा करके आओ।

सेवकको हुक्म दे चुकनेके बाद उन्होंने अपनी नर्तकियोंको आज्ञा दी कि वे राजमार्गके विशाल दरवाजे पर अपना नृत्य आरंभ करें इसी तरह दूसरे द्वार पर नटोंको अपना खेल दिखलानेकी आज्ञा दी, और फिर अपने सैनिकोंको बुलाकर कहा तुम लोग नगरके मध्यमें जाकर अपना सैन्य प्रदर्शन करो।

नगरका प्रत्येक भाग नाच तमाशे और सैनिक प्रदर्शनोंसे पूर्ण होगया, अपने जीवनको कटोरेके मध्यमें स्थिर रखनेवाला वह सेवक नगरका चक्कर लगाकर राज्य सभामें आया। तैलका कटोरा उसी तरह पूर्ण था,—चक्रवर्तिने उससे पूछा, सेवक—तुम बतलाओ मार्गमें जो नृत्य होरहा था, वह तुम्हें कितना रुचिकर हुआ। सेवक बोला— महाराज! मैंने मार्गमें किसी नृत्यको नहीं देखा। फिर उन्होंने पूछा— तुमने नृत्य नहीं देखा? अच्छा मेरे सैनिकोंका वह प्रदर्शन तो तुमने

देखा होगा । सेवक बोला—न महाराज मैंने वह प्रदर्शन भी नहीं देखा। सम्राट्ने कहा अरे ! तुम यह क्या कहते हो ? तब तुमने वह नटोंका खेल भी नहीं देखा ? नहीं महाराज, मैं वह खेल कैसे देख सकता था, मैंतो अपने जीवनके खेलको देख रहा था । मेरा जीवन तो कटोरेके इन तैल बिंदुओंमें समाया था, तैलका एक बिन्दु मेरा जीवन था । मैंने अपने इस कटोरे और अपने पैरोंको मार्ग पर चलनेके सिवाय किसीको भी नहीं देखा सेवकने कहा । सम्राट्ने उसे जानेकी आज्ञा दी । फिर वे भद्र पुरुषकी ओर देखकर बोले—बंधु देखो जिस तरह इस पुरुषके सामने बहुतसे खेल तमाशे और प्रदर्शन होते रहने पर भी यह अपने लक्ष्यबिंदुसे नहीं हट सका, उसी तरह इस संपूर्ण वैभवके रहते हुए भी मैं अपने लक्ष्य पर स्थिर रहता हूं । मैं समझ रहा हूं कि मेरे सामने कालकी नंगी तलवार लटक रही है, मैं समझ रहा हूं मेरा जीवन पहाड़की उस सकरी पगडंडी परसे चल रहा है जिसके दोनों ओर कोई दीवाल नहीं है । थोड़ा पैर फिसलते ही मैं उस खंदकमें गिर पड़ूंगा जहां मेरे जीवनके एक कणका भी पता नहीं लग सकेगा । प्रत्येक कार्य करते हुए मेरे जीवनका लक्ष्य मेरे सामने रहता है और मैं उसे भूलता नहीं हूं, इतने साम्राज्यकी व्यवस्थाका भार रखते हुए भी आत्म विस्मृत नहीं होता । फिर कुछ रुक करके बोले—भद्र पुरुष ! मैं समझता हूं, मेरी बातोंसे तुम्हारे हृदयका समाधान हो गया होगा, साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूं कि तुम और मैं हरएक मानव बंधनमें रह कर भी अपने कर्तव्य मार्ग पर चल सकते हैं, और आत्मशांतिका लाभ ले सकते हैं।

चक्रवर्तीके उत्तरसे भद्र पुरुषको काफी संतोष हुआ जो जनता अभीतक इस विषयमें मौन थी, वह भी इस समाधानसे संतुष्ट हुई ।

(४)

भरतजीका हृदय बहुत उदार था, वे अपनी द्रव्यका बहुतसा भाग प्रतिदिन संयमी, और व्रती पुरुषोंको दानमें देना चाहते थे । वे ऐसा कार्य करना चाहते थे, जिससे उनकी कीर्ति संसारमें चिरस्थाई रहे । वे चाहते थे, कोई भद्र पुरुष उनसे कुछ मांगे और वे उसको दान रूपमें कुछ दें, किन्तु उस समयके सभी मनुष्य अपने वर्णके अनुसार कार्योंको करते थे, श्रम करना वे अपना कर्तव्य समझते थे, और श्रम द्वारा उन्हें जो कुछ मिलता था, उसमें संतोष रखते थे, उन्हें और किसी चीजकी चाह नहीं थी । अपनी कमाईसे ही जीवन निर्वाह करते थे, द्रव्य संचय कर वे अधिक तृष्णाके गड्ढेमें नहीं पड़ना चाहते थे, वे सरल थे, सादा जीवन गुजारना उन्हें प्रिय था । किसीसे कुछ चाहना उन्होंने सीखा नहीं था ।

सम्राट् भरतको इस विषयकी चिन्ता थी बहुत कुछ सोचने पर उन्होंने एक उपाय निश्चित किया । उन्होंने एक ऐसा वर्ण स्थापित करनेकी बात सोची जिसका जीवन दान द्रव्य पर ही निर्भर रहे, उसे दान लेनेके अतिरिक्त कोई शारीरिक श्रम या कार्य न पड़े, उस वर्णके वे पुरुष अधिक विचारशील, दयालु और बुद्धिमान हों । अपनी बुद्धि बलसे सम्राट्ने उनका चुनाव करना चाहा और एक दिन नगरके सभी नागरिकोंको उन्होंने अपनी राजसभामें निमंत्रित किया ।

कुछ प्रश्न उनके साम्हने रखे उनमेंसे जिन विद्वान् पुरुषोंने उन प्रश्नोंके ठीक उत्तर दिए उनका एक संघ बनाया, उस संघके सभासद होनेवाले सदाचारी और आत्मज्ञानमें रुचि रखनेवाले पुरुषोंको उन्होंने 'ब्राह्मण' वर्णकी संज्ञा दी। उन्हें देव, शास्त्र, गुरुपर सच्ची श्रद्धा रखनेका आदेश देकर उसकी स्मृतिके लिए तीन तागोंवाला एक सूत उनके गलेमें डाला जिसे ब्रह्म सूत्र नाम दिया। ब्रह्म सूत्र रखनेवाले ब्राह्मणोंको उन्होंने नीचे लिखी क्रियाओंके करनेका उपदेश दिया।

(१) देवपूजा—नित्य प्रति भक्तिभावसे देवकी पूजा करना।

(२) गुरू उपासना—अपनेसे अधिक ज्ञानवाले पुरुषोंकी विनय और सेवा करना।

(३) स्वाध्याय—ज्ञानकी उन्नति करनेके लिए ग्रंथोंका पठन पाठन करना, और उनकी रचना करना।

(४) संयम—अपनी इन्द्रियां और मनको अपने काबूमें रखनेकी कोसिस करना।

(५) तप—कुछ समयके लिए एकांत चिंतन और आत्म ध्यान करना।

(६) दान—दान ग्रहण करना, और दानकी शिक्षा देना।

इन छह आवश्यक कृत्योंको नित्य प्रति करना, और नीचे लिखे दश नियमोंका पालन करना।

(१) बालकपनसे ही विद्याका अध्ययन करना।

(२) पवित्र आचार विचारोंको सुरक्षित रखना ।

(३) पवित्र आचरणों और विचारोंको बढ़ाकर दूसरोंसे अपनेको श्रेष्ठ बनाना ।

(४) दूसरे वर्णों द्वारा अपनेमें पात्रत्व स्थिर रखना ।

(५) अन्य पुरुषोंको शास्त्रानुकूल व्यवस्था तथा प्रायश्चित देना ।

(६–७) अपना महत्व सुरक्षित रखनेके लिए अपने उच्च आचरणोंका विश्वास दिलाकर राजा तथा प्रजा द्वारा अपना वध ना किए जाने और दंड न पानेका अधिकार स्थापित करना ।

(८–९) श्रेष्ठ ज्ञान और चरित्रकी उच्चता द्वारा सर्वसाधारणसे आदर प्राप्त करना ।

(१०) दूसरे पुरुषोंको उच्च चारित्रवान बनानेका प्रयत्न करना ।

इन नियमोंका सदैव पालनेका उन्हें आदेश दिया । जनताके बालकोंको शिक्षण देना, उनके वैवाहिक कार्योंको सम्पन्न कराना और अन्य श्रेष्ट क्रियाओंके करनेकी व्यवस्था रखनेका कार्य उनके लिए सौंपा, फिर उन्हें उत्तम भोजन और वस्त्रोंका दान दिया ।

उन्होंने क्षत्रियोंको अपने सदाचारकी रक्षा रखते हुए राजनीति और धर्मशास्त्रके अध्ययनका उपदेश दिया और आत्मरक्षण, प्रजापालन तथा अन्याय दमन करनेका विधान बतलाया ।

सम्राट् भरतने भगवान् ऋषभदेवकी निर्वाण भूमिपर विशाल चैत्यालय भी स्थापित किये । और उनमें योगेश्वर ऋषभकी महान् मूर्तिको स्थापित किया ।

(५)

संध्याका सुहावना समय था। सम्राट् भरत अपने वैजयंत भवनके मनोरम स्थानपर बैठे हुए महारानीके साथ विनोद कर रहे थे अनायास उनकी दृष्टि महलमें चित्रित मनोरम दर्पण पर जा पड़ी। उन्होंने उसमें अपना मुख मंडल देखा, अपने सिरमें एक श्वेत बाल देखकर वह अत्यंत चकित हुए।

वह सोचने लगे, यह क्या ? इस मृत्युदेवके दूतने मेरे मस्तकमें कहांसे प्रवेश किया ? क्या संसार बंधनमें फंसे हुए मुझ असावधान पथिकको यह अपने मालिक यमराजके पास ले जानेका संदेश लाया है ? या मुझे विषय वासनामें पड़ा हुआ देखकर आत्मोद्धार करनेके लिए सावधान करनेकी सूचना देने आया है ? तब क्या इसकी सूचना पाकर मुझे अपना कर्तव्य स्थिर नहीं करना चाहिए ? क्या मैं अखिल भारतपर अपना अखंड प्रभुत्व स्थापित करनेवाला चक्रवर्ति इस यमराजके दूतकी आज्ञाका पालन करूं, या अपनी आत्मध्यानकी शक्तिसे उसे पराजित करूं ? क्या संसारके सभी प्राणियोंको अपने आधीन करनेवाला मृत्युदेव मुझे भी अपना गुलाम बना लेगा ? नहीं यह कभी नहीं होगा। मैं उसकी आज्ञा पालन कभी भी नहीं करूंगा।

मैं अजेय संयमके गढ़में प्रवेश करूंगा, महाव्रत सैनिकोंका संगठन करके ध्यानके दिव्य शस्त्रोंको सजाऊंगा और मृत्युदेव पर भीषण आक्रमण करके उस पर विजय स्थापित करूंगा। मैं भारत विजयी सम्राट् मुक्ति स्थलका भी सम्राट् बनूंगा, उनके हृदयमें इसी तरह आत्मज्ञानकी निर्मल तरंगे लहराने लगीं।

पहिलेसे ही निर्बल और शक्तिहीन हुए सांसारिक स्नेह और वैभव तथा भोगविलास पर होनेवाली उपेक्षाके कारण वासना बंधनके जर्जर रज्जु तड़ातड़ टूटने लगे। मोहका जाल नष्ट होने लगा, हृदयमें न पासकनेके कारण काम विकार विदा मांगने लगा, और राग द्वेषका साम्राज्य भंग होने लगा।

सम्राट् भरतने व्रतोंके महाक्षेत्रमें प्रवेश करनेका दृढ़ संकल्प किया और ज्येष्ठ पुत्र युवराज अर्ककीर्तिको अयोध्याका सिंहासन देकर अपनेको दीक्षा-देवीके करकमलोंमें समर्पित किया।

सम्राट् भरत महात्मा भरत बन गए, उनका हृदय सज्यावस्थासे ही वैराग्य-युक्त था। उनकी वासनाएं पहलेसे ही मरी हुई थीं। इसलिए दीक्षा लेनेके कुछ समय पश्चात् ही उन्होंने अपनी दिव्य आत्म शक्तिके बलसे कैवल्य प्राप्त कर लिया, जिसके लिए योगी सहस्रों वर्षोंतक तीव्र तपश्चर्या करते हैं अनाहार व्रत धारण करते हैं। और अनेकों यातनाओं और उपसर्गोंको सहन करते हैं, वही पूर्णज्ञान उन्हें कुछ समयमें ही प्राप्त हो गया।

कैवल्यज्ञान प्राप्त होने पर भरतजीने भारतमें भ्रमण किया और धर्मोपदेश देकर मानवोंको कल्याण पथपर लगाया, फिर संपूर्ण कर्मोंके जालको नष्ट कर वे अक्षय सुखके अधिकारी बने।

[४]

दानवीर श्रेयांसकुमार।

(दान-प्रथाके प्रथम प्रचारक।)

(१)

प्रत्येक युगका अपना कुछ इतिहास होता है, इसी तरह हर-एक सामाजिक रीति रिवाजों और पद्धतियोंके प्रचलनका भी कुछ इतिहास हुआ करता है। भले ही समय पाकर उनमेंकी कुछ प्रवृत्तिएं आगे चल कर साधारण रूप रखलें किन्तु उनकी महत्ता तो समयकी मांग है, उन लौकिक पद्धतियोंका जन्म उस समय किन जटिल परिस्थितियोंमें होता है, वे कितनी बुद्धि और त्याग चाहती है ? इसे उनकी जन्म कथा जाननेवाला ही बतला सकता है और जन्मकथा जानकर ही इनकी महत्ता स्थापित की जा सकती है।

कुन्डसे आगे बढ़नेपर गंगाकी धाराको किन विषम परिस्थितियोंका अनुभव करना पड़ा होगा, किसी कठोर और निर्मम भूमिको उसे अपने हृदयमें रखकर उसपरसे चलना पड़ा होगा, और कितने वर्षोंकी एकांत साधनासे आगे बढ़कर उसने अपनी शीतलताका विस्तार किया होगा। इसको आज कौन जानना चाहेगा, पानीके लिए तड़पते हुए किसी प्यासे व्यक्तिको इस इतिहासके जाननेसे क्या प्रयोजन! किन्तु इससे उसके इतिहासकी महत्ता कम नहीं होती।

संसारमें सभी आवश्यक क्रियाएं कर्मवीर पुरुषोंके कठिन त्याग और प्रतिभाशाली बुद्धिके फल स्वरूप प्रचलित हुआ करती हैं और वे उस समय हुआ करती हैं जब कि उनकी मांग अनिवार्य होती है। कभी२ आवश्यक्ता रहते हुए भी साधारण मनुष्योंके मनमें उनकी कल्पना ही नहीं पैदा होती। लेकिन जब किसी महापुरुष द्वारा उनका रहस्योद्घाटन होता है और संसारका अधिकसे अधिक कल्याण होने लगता है तब संसारको उनका अनुभव होता है, लेकिन ऐसे कितने पुरुष हैं जो उन उद्धारकर्त्ता महात्माओंके नामको स्मरण रखते हैं। स्वार्थी संसार उनके सत्कृत्योंको भूल जाता है और उन प्रातःस्मरणीय पुरुषोंके याद रखनेकी कोई आवश्यक्ता नहीं समझता।

पूर्व समयमें अनेक सुरीति प्रचारक और पुण्यसंचय करानेवाली प्रवृत्तियोंके प्रचारक महात्मा होचुके हैं, जिनके द्वारा प्रचारित क्रियाओंसे आज समाजका उद्धार होरहा है, उनकी पवित्र कीर्तिका स्मरण रखना हमारा कर्तव्य है।

श्रेयांसकुमारका जन्म ऐसी परिस्थितियोंमें हुआ था जब सम-

यको कुछ आवश्यकता थी । हस्तिनापुर जैसे विशाल राज्यके स्वामी सोमप्रभके वे अनुज थे राजकुमार होनेपर भी उनकी प्रकृति कोमल थी दया उनके रोम रोममें भरी थी । किसीका दुख देख सकना उनके लिए असह्य था । वे हरएक पीड़ित व्यक्तिकी सेवाके लिए सदैव तैयार रहते थे इन्हीं गुणोंके कारण जनता उनपर अपना प्राण न्योछावर करती थी ! महाराज सोमप्रभ इन्हें अपने राज्यकी विभूति समझते थे उनकी प्रत्येक दयालु प्रवृत्तिमें सहायक बनते थे उनके हृदयमें भ्रातृ-प्रेमका निःछल प्रेमका झरना बहता था ।

सोमप्रभका कोष जनताकी सेवाके लिए था श्रेयांसकुमारको पूर्ण अधिकार था कि वे उसका मनचाहा उपयोग कर सकें । सोमप्रभको विश्वास था वे जानते थे श्रेयांस द्वारा द्रव्यका कभी दुरुपयोग नहीं होगा श्रेयांस, राजाके विश्वासपात्र जनताके सेवक और देशकी विभूति थे ।

रात्रि आधी बीत चुकी थी । राजकुमार श्रेयांस निद्राकी शांतिदायक गोदमें था उस समय उसने कुछ विचित्र स्वप्नोंको देखा । पहले तो सुमेरुके चमकते हुए उच्च शिखरको देखा और फिर मधुर फल और नेत्ररंजक फूलोंसे सजे हुए विशाल डालियोंवाले कल्पवृक्षको निरीक्षण किया—इसके बाद केशरी—सिंह, सूर्य और चन्द्र-मंडल, गंभीर समुद्र, ऊंचे कंधोंवाला बैल, और मंगल द्रव्योंसे सुशोभित देव मूर्ति देखी । आजतक उसने कभी स्वप्न नहीं देखे थे इन्हें देखकर उसे कुछ आश्चर्यसा हुआ । स्वप्नोंका रहस्य हल किए विना उसे चैन नहीं था । सवेरा होते ही भाई सोमपुत्रसे इन स्वप्नोंका हाल कहा—उन्हें भी स्वप्नोंके फल जाननेकी इच्छा हुई, उन्होंने स्वप्नके फल बतलानेवाले

विद्वान्‌को बुलाया उनके सामने स्वप्नोंको कहा—स्वप्नका फल बतलाते हुए वे बोले—

राजन् ! कुमारने बहुत ही सुन्दर स्वप्न देखे हैं। स्वप्न विज्ञानकी दृष्टिसे यह किसी महान् फलकी सूचना करते हैं ! स्वप्न बतलाते हैं कि आपके यहां शीघ्र ही किसी महापुरुषका आगमन होगा जिसके आनेसे आपको संसारमें कीर्ति और सम्मान मिलेगा। वह पुरुष मेरु जैसा उन्नत शरीरवाला, कल्पवृक्ष जैसा महान् फल देनेवाला सिंह जैसी स्वतंत्र प्रवृत्तिवाला और विशाल कंधोंवाला होगा, उसका प्रताप सूर्य जैसा और यश चन्द्रमासा निर्मल होगा, वह गुणरत्नोंका समुद्र होगा। और उसके आनेपर मंगल द्रव्योंसे भूषित देव आपकी प्रशंसा करेंगे। मैं विश्वास पूर्वक कहता हूं, मेरे बतलाए स्वप्नोंका यह फल कभी भी मिथ्या नहीं होगा। दोनों भाई स्वप्नका फल सुनकर प्रसन्न हुए और उन्हें इच्छित द्रव्य देकर स्वप्न फलको शीघ्र ही पानेकी कामना करने लगे।

जो लोग परलोक मानते हैं उनका यह अखंड विश्वास है कि संसारकी श्रेष्ठ विभूतिएं, ऐच्छिक सुख भोग, और विश्व विख्यात कीर्ति पूर्व जन्ममें दिए हुए शुभदानके ही प्रतिफल हैं। दान देनेवाला व्यक्ति स्वयं भी यशस्वी और वैभवशाली होता है। साथ ही दान मिलनेवाले मानवका जीवन बनता है, और लोक कल्याण होता है। वह व्यक्ति जो किसी तरहके प्रत्युपकारकी भावना न रखते हुए सात्विक भावसे सत्पात्रोंको इच्छित दान देता है, सन्ताप पूर्ण हृदयोंको खिलाता है और उन्हें प्रसन्न होते देख स्वयं प्रसन्न होता है, कितना

सौभाग्यशाली है, उसे क्या महात्मा नहीं कहना चाहिए? जिसका हृदय दूसरोंकी सेवाके लिए उत्सुक रहता है, जो दूसरोंके दुःख दूर करनेके लिए सब कुछ त्याग करता है, और जो दूसरोंको आपत्तिमें फंसा देखकर द्रवित हो उठता है, और तबतक शांति नहीं पाता जबतक वह उसके कष्टका छुटकारा नहीं कर देता है। ऐसे ही दयालु और परोपकारी नरोंसे संसारके इतिहासका मुंह उज्जवल होता है।

क्या वह मनुष्य देवता नहीं है जो दूसरोंकी सेवाके पथ पर अपने शरीर, वैभव और त्यागको फेंक देता है। मानव संसार एक दूसरोंकी सहायता पर निर्भर है, मानव जितनी भी अधिक दूसरोंको सहायता दे सकता है उतना ही वह उच्च बनता है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि हमें मानव जीवन दूसरेकी सहायताके लिए ही मिला है, हमें यह समझना चाहिए कि शरीर मन और वाणीसे हमने संसारका जितना कल्याण किया है उतना ही हमारे जीवनका मूल्य है।

मानवमें दान देनेकी भावना उस समय पैदा होती है जब उसकी दृष्टि संसारमें दुखी अंगकी ओर जाती है, उसका करुण हृदय कष्टोंको देखकर कुछ चोट खाता है। तब वह करुण-भावसे दूसरोंका दुख दूर करनेकी दृष्टिसे अपने धन वैभव और शरीरका जो कुछ भी त्याग करता है, वह दान नामसे पुकारा जाता है। स्वयं भोजन करनेमें कितना सुख है, जब हम क्षुधित होते हैं तब हमें भोजन मिल जाने पर कितनी प्रसन्नता होती है? लेकिन जब हम अपना भोजन किसी दूसरे हमसे भी अधिक भूखेको देकर उसे प्रसन्नता देते हैं, तब उसकी प्रसन्नतासे हमें जो हर्ष होता है, उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

आजका सुन्दर प्रभात सौभाग्य शाली था, वैसे तो नित्य ही प्रभात होता है मध्यान्ह होता है, संध्या होती है, और फिर दिन समाप्त होता है, किन्तु आजके प्रभातको कुछ और ही दृश्य दिखालाना है इसलिए हम इसे सौभाग्यशाली ही कहेंगे।

कठिन तपस्यामें मग्न रहनेवाले योगीराज ऋषभदेवने आजके सुन्दर प्रभातमें अपना ध्यान समाप्त किया। आजतक उन्होंने छह माहके अनाहार व्रतको रखा था। उनके हृदयमें एक ही कामना थी पूर्ण स्वतंत्रता की, वे शक्तिशाली थे। इन्द्रियों पर काबू रखना उनके लिए आसान था, किन्तु सब तो ऐसा नहीं कर सकते। सबके कल्याणकी कामनासे उन्होंने आज सोचा था मुझे आहार लेना चाहिए आगे चलकर साधुओंके लिए आहार लेना आवश्यक होगा, किन्तु भोजन कैसा हो? उन्हें लोग किस तरह भोजन दें यह जानना भी तो आवश्यक है। मुझे इस प्रथाका परिचालन करना ही चाहिए, वे प्राणीमात्र पर समताकी दृष्टिसे देखनेवाले संसारमें मुनि आहारदानकी प्रथा प्रचलित करनेको भोजनके लिए निकले थे अपने सरल स्नेहको मेदिनी तलपर बिखेरते हुए, वे हस्तिनापुरकी ओर आए।

तीव्र तपश्चरणकी आगमें तपा हुआ उनका तेजमय स्वर्ण शरीर देखकर मानवोंके मस्तक उनके चरणमें पड़ने लगे भक्तिके वेगसे संपूर्ण नगर निवासी उन्हें आया देख अपनेको कृतार्थ समझने लगे। पहले समयकी लोक कल्याणकी गाथाएं गाते हुए उनके सम्मानके लिए सुन्दर और बहुमूल्य पदार्थ भेंटमें लाए, कोई उनकी कीर्ति गान गाकर और कोई उनकी जय बोलकर उन्हें प्रसन्न करने लगा। इस तरह

उनके चारों ओर एक बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई। यह कार्य उनके उद्देश्यके विरुद्ध थे, परन्तु इनसे योगीश्वर ऋषभका हृदय शोभित नहीं हुआ। उन्होंने इन बातोंपर लक्ष्य तक नहीं दिया, वे अपनी भावनामें मग्न थे। अपने उद्देश्यके पथपर अडिग थे इस तरह चलते हुए वे राजपथपर उपस्थित हुए।

सोमप्रभ और श्रेयांसने उन्हें दूरसे आते देखा। भक्ति विनय नम्रतासे उन्होंने चरणमें प्रणाम किया उनकी पूजाकी, चरणोंका प्रक्षालन किया और उनकी चरणरजको अपने मस्तक पर चढ़ा कर अपनेको कृतार्थ समझा। फिर वे उनके मनकी भावना जाननेके लिए और उनकी आज्ञा चाहनेके लिए उनके सामने नतमस्तक खड़े हो गये।

महात्मा वृषभने कुछ नहीं चाहा कुछ याचना नहीं की। जैन साधु कुछ नहीं चाहते कुछ याचना नहीं करते, भोजन तक भी वे नहीं मांगते, यह भी गृहस्थकी इच्छा पर अवलंबित है। वह उन्हें भक्तिसे अयाचित वृत्तिसे देगा वे उसे अनुकूल होने पर लेंगे, नहीं तो नहीं लेंगे व धन, पैसा और वैभव तो उनके लिए उपसर्ग है। जिसका वे त्याग कर चुके उसकी चाहना कैसी? जिस पथसे वे आगे बढ़ चुके उस पथसे फिर वापिस लौटना कैसा?

धर्म संकटका यह समय था, सभी निस्तब्ध थे, कोई सोच नहीं सकते थे कि इस समय क्या करना? कुछ क्षण इस तरह बीत गए।

श्रेयांसने सोचा यह तपस्वी कुछ नहीं चाहेंगे न कुछ अपने आप कहेंगे तब इस समय क्या करना! उनकी विचारक बुद्धिने उनका साथ दिया, उन्होंने इस समयकी उलझनको शीघ्र ही सुलझा
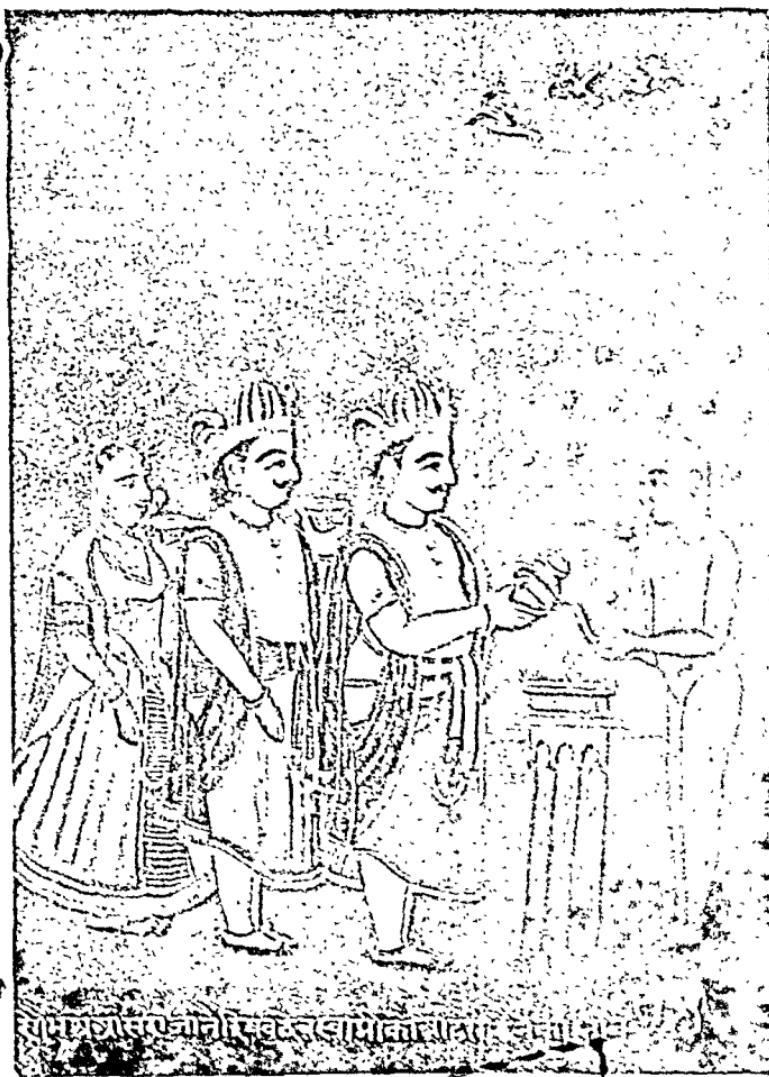
लिया। इन्हें भोजन चाहिए यह समय भोजनका ही है, फिर पवित्र पदार्थ भी होना चाहिये पवित्रता के साथ ऐसा भी हो जो इनके शरीरको साता भी दे सके, वे सोच चुके थे। उनका हृदय हर्षसे भर गया हृदयहीमें बोले मेरा सौभाग्य है। आज मैं इन तपस्वीको भोजन दूंगा पवित्र भावनासे उनका मन भर गया। भक्तिके आवेशने उन्हें गद् गद् कर दिया, वे शीघ्र ही बोले—भगवन्! विराजें, आहार पवित्र है ग्रहण करें। फिर अपने भाई सोमप्रभ और रानी लक्ष्मी-मतीके साथ २ उन्होंने ताजे गन्नेके रसका आहार दिया, अनुकूल समझकर महात्माने उसे ग्रहण किया। वे तुष्ट हुए, इसी समय महात्माके भोजन दानके प्रभावसे सारे नगरमें जय जय शब्द गूंज उठा, देवता प्रसन्न हुए, और प्रकृतिने उनके कार्यको सराहा, गगनसे पुष्प वृष्टि होने लगी, मलय—वायु बहने लगा और मानवोंके मन हर्षसे फूल उठे।

श्रेयांस और सोमप्रभने तपस्वी ऋषभदेवको भोजन दे अपनेको कृतार्थ समझा भोजन ले तपस्वी वनको चल दिये और आत्मध्यानमें तन्मय होगये।

आजकी जनताकी दृष्टिमें इस आहारदानका कोई महत्व न हो और इस घटनाकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया जाए। आजका सुशिक्षित समाज और अपनी विद्वत्ताको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले लोग इसे एक साधारण घटना समझकर भले ही भुलादें, लेकिन उस समयकी परिस्थितियों और लोक प्रणालियोंका जिन्होंने अध्ययन किया है वे इस घटनाके महत्वको अवश्य मानेंगे।

श्रेयांस द्वारा दिए गए भोजन दानका यह अभूत पूर्व दृश्य

हस्तिनापुरकी जनताने अपने जीवनमें आज प्रथमवार ही देखा था। उन्होंने इसे बड़ा महत्वपूर्ण समझा, और समस्त जनताने एकत्रित होकर उनके इस दानकी प्रशंसा की। वे बोले—राजकुमार, हम लोग यह समझ नहीं सके थे कि इस समय हमें क्या करना चाहिए? यदि आज आपने उन महात्माको भोजन दान न दिया होता तो उन्हें भूखा ही लौटना होता और हम लोगोंके लिए यह बड़े कलंककी बात होती। आजसे छ मास पहले अयोध्यासे उन्हें भूखा ही लौटना पड़ा था, और छह मास कठिन अनाहारक व्रत फिरसे लेना पड़ा था। हम लोग यह नहीं जानते थे कि उन्हें कौनसी वस्तु किस तरह देना चाहिए? आपके बढ़ते हुए ज्ञानने यह सब कुछ समझा अतः आप हमारे धन्यवादके पात्र हैं। फिर हर्षसे फूली हुई हस्तिनापुरकी जनताने इस दिनको चिरस्मरणीय बनानेके लिए महोत्सव मनाया। इस महोत्सवमें चक्रवर्ती भरतने उपस्थित होकर श्रेयांसकुमारको अभिनंदन पत्र प्रदान किया। उपस्थित जनताने दानके विशेष नियम और उपनियम जाननेकी इच्छा प्रगट की। कुमार श्रेयांसने अपने बढ़े हुए ज्ञानके प्रभावसे दानकी पद्धतियोंका विशेष परिचय कराया। वे बोले—नागरिको! आगे चल कर साधु प्रथाकी बहुत वृद्धि होगी और तपस्वी लोग भोजनके लिए नगरमें आया करेंगे इन तपस्वियोंको किसी तरहकी इच्छा नहीं होगी? यह धन, वैभव अथवा किसी वस्तुको नहीं चाहेंगे ये तो केवल अपने शरीर रक्षणके लिए भोजन चाहेंगे। इन्हें आदरसे अपने घर बुलाकर श्रद्धा और भक्तिसे अनुकूल भोजन देना होगा। इन साधुओंको शरीरसे मोह नहीं होता, इन्हें तो केवल आत्मकल्याणकी धुन रहती है। लेकिन अपने

भ० ऋषभदेवको राजा श्रेयांस अपने भ्राता सोमप्रभ
और श्रीमती सहित इक्षुरसका आहार दे रहे हैं
आकाशमें देवों द्वारा पुष्पवृष्टि।

शरीरको दूसरोंके उपकारके लिए वे स्थिर रखना चाहते हैं और आत्मध्यानके लिए जीवित रहते हैं।

इसके लिए किसीको न सताकर भोजन लेते हैं। वह भोजन भी ऐसा हो जो खास तौरसे उनके लिए न बनाया गया हो, क्योंकि वे अपने लिए किसी गृहस्थको आरंभमें नहीं डालना चाहते। इसलिए हरएक गृहस्थका कर्तव्य है कि वह उन्हें भोजन दे। इसके सिवाय आगे ऐसा भी समय आयेगा जब कुछ मनुष्य अपने लिए पूरा भोजन उपार्जन न कर सकेंगे, और वे भोजनकी इच्छासे किसीके पास जायेंगे। तब आपका कर्तव्य होगा कि आप उन भूखे पुरुषोंको चाहे वे कोई भी हों भोजन दान दें। आगे चलकर जब कर्म-क्षेत्रका विस्तार होगा उसमें आपको दूसरोंकी सहायताका भार लेना पड़ेगा। कुछ व्यक्ति ऐसे होंगे जिनके पास भोजनकी कमी हो अथवा जो अपने बालकोंके लिए योग्य शिक्षाका प्रबंध न कर सकें, रोग पीड़ित होनेपर वे अपने उपचारोंमें असमर्थ हों, और बलवान पुरुषों द्वारा सताए जानेपर अपने जीवनकी रक्षा न कर सकें। ऐसे पुरुषोंकी सहायता भी आप लोगोंको करना होगी। इस सहायताके चार विभाग होंगे, जिन्हें चार दानके नामसे कहा जायगा। एक विभाग भोजन दानका होगा, दूसरा विद्यादान, तीसरा औषधिदान और चौथा अभयदान।

दान देकर अपने आपको बड़ा नहीं समझना होगा। दानको केवल मानव कर्तव्य ही मानना पड़ेगा। अपनी शक्तिके माफिक थोड़ी अथवा अधिक जितनी सहायता हम देसकें उससे जी नहीं चुराना

होगा, तभी इस लोकमें शांति और सुख स्थिर रह सकेंगे, और हमारे नगर और ग्रामोंमें कोई भूखा, रोगी, अज्ञानी और पीड़ित नहीं रह सकेगा। हमें प्रतिदिन अपने लिए कमाये हुए धनमेंसे कुछ अंश इस दानके लिए बचा कर रखना होगा, समय पर उसका सदुपयोग करना होगा।

दानकी इन पद्धतियोंको उपस्थित जनताने समझा और उस दिनको चिर-स्मरणीय बनानेके लिए उसे 'अक्षय-तृतीया' का नाम दिया।

चक्रवर्ती भरतने उपस्थित जनताके साम्हने श्रेयांसकुमारको दानवीर पदसे विभूषित किया।

उस समयकी बताई हुई दान व्यवस्था समयके साथ फूली फली और बढ़ी, और आज तक उसका प्रचार होता रहा। आजका मानव समाज भी उनकी उस दिनकी प्रचारित दान प्रथाका आभारी रहेगा।

महाबाहु बाहुबलि ।

(महायोग और स्वाभिमानके स्तंभ)

(१)

आज भारत अहिंसा और सत्यके पथपर चलनेके प्रयत्नमें है किन्तु आज भी अधिकांश भारतियोंका यह मत है कि पूर्व समयमें भारतकी बढ़ती अहिंसाने कायरता और पुरुषार्थ हीनताके अंकुरोंको पैदा किया है ।

भारतमें कुछ ऐसा विचार प्रवाह स्थान पा रहा है कि भारतके पतनका मुख्य कारण उसकी अहिंसा रही है, जो न्याय और दंड देनेसे रोकती है और जैन धर्मकी अहिंसाने भारतीय वीरोंको अपनी आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ और निर्बल बनाया है । लेकिन यह उनका

एकांगी निर्णय है । उन्होंने जैन धर्मके अहिंसा पहलू पर ठंडे दिलसे विचार नहीं किया है । उसकी शक्ति और उपयोगकी ओर उन्होंने नहीं देखा । वास्तवमें वे अहिंसा सिद्धान्तके तलतक पहुंचे ही नहीं हैं, अन्यथा उन्हें ऐसा कहनेका साहस ही नहीं होता ।

अहिंसा सिद्धांत और वीरत्व शक्तिकी नींव पर खड़ा हुआ है । जो वीर नहीं है, जिसमें साहस और आत्मबल नहीं है, वह अहिंसाका पुजारी ही नहीं बन सकता । अहिंसाका स्थान कायरता और निर्बलताके बहुत ऊपर है । सच्चा शूरवीर और आत्मविजयी योद्धा ही अहिंसक बन सकता है । अहिंसा वीरत्वकी प्रदर्शक है । अहिंसक बेकार किसीकी हत्या नहीं करेगा । अपने मन बहलानेके लिए निर्बल प्राणियोंको अपने शस्त्रका निशाना नहीं बनायेगा । निर्बल और कमजोर व्यक्तियोंके साम्हने अपने बल और शस्त्रका नृशंस प्रयोग नहीं करेगा, वह हत्यारा और जालिम नहीं बनेगा । अहिंसा और जैन अहिंसाको समझनेवाला वीर सैनिक निर्बलको कभी न सतायेगा, कमजोरोंकी हत्या नहीं करेगा, बेकार किसीका प्राण नहीं लेगा और अपने विनोदके लिए मूक प्राणियोंका वध नहीं करेगा । वह निर्बलोंकी रक्षा करेगा । वह अन्याय और अत्याचारको कभी सहन न करेगा, और अपने अधिकारोंकी रक्षा और अन्यायके लिए वह शस्त्र धारण करेगा, युद्ध करेगा और युद्धका संचालन करेगा ।

निर्बलरक्षा, अन्यायदमन, स्वत्वरक्षण यह जैन अहिंसकका कर्तव्य है । स्पष्ट शब्दमें जैन अहिंसक, स्वाभिमानी, वीर और शक्तिशाली सैनिक होगा ।

जैन साहित्य ऐसे वीरोंके गौरव पूर्ण चरित्रोंसे भरा पड़ा है, जिन्होंने राष्ट्ररक्षा और जनताके लिए अपने महान् वीरत्वका परिचय दिया है, भयंकर युद्ध किए है, और अत्याचारियोंको दंड दिया है। संसारके प्रचंड वीरोंमें इन जैन वीरोंका प्रधान स्थान रहेगा।

(२)

महाबाहु बाहुबलिका जन्म वीरताके प्रतिनिधि रूपमें हुआ था। वे लंब-बाहु थे, उनका विशाल वक्षस्थल और उन्नत ललाट दर्शनीय था। उनके प्रत्येक अंगसे अपूर्व तेज, उत्साह और वीरत्व प्रदर्शित होता था। वे तेजस्वी स्वाभिमानी और स्वातंत्र्य थे। उनके जीवनका ध्येय महान था, वे सोचते थे कि जीवन चाहे नष्ट हो, सांसारिक सुख भी न मिले, कठिनाईयोंका साम्हना करना पड़े, किन्तु सत्यसे विचलित नहीं होना। अपनी स्वाधीनता नहीं खोना और स्वाभिमानको जागृत रखना। बनावट उन्हें प्रिय नहीं थी, शौक मौजके जीवनसे उन्हें घृणा थी, सादा जीवन और उच्च विचार यह उनके जीवनके मुख्य सिद्धान्त थे। आत्म प्रशंशा वे पसंद नहीं करते थे। खुशामदी और व्यर्थ बातोंमें समय खोनेवाले व्यक्तियोंका उनके यहां स्थान नहीं था। किसी बातका निर्णय करनेके पहिले वे अपनी तर्कपूर्ण बुद्धिका पूरा प्रयोग करते थे, लेकिन अपने सत्य निर्णयके विरुद्ध वे किसी शक्तिका साम्हना करनेके लिए तैयार रहते थे। अपने पिता ऋषभदेवजीसे उन्हें पोदनपुरका राज्य मिला था। पोदनपुर राज्यकी सीमा थोड़ी सी ही थी, किन्तु उन्हें कोई अन्य उत्कंठा नहीं थी, वे अन्याय अथवा बलपूर्वक किसीके राज्यपर अधिकार नहीं चाहते थे, अपने राज्यसे उन्हें जो आय होती थी उसीपर संतोष रखते थे।

बाहुबलिजीके बड़े भाई भरत अयोध्याके राजा थे किन्तु वे उनसे कोई सहायता नहीं चाहते थे और न किसी तरहकी कामना रखते थे। उन्हें उनके वैभवसे विद्वेष भी नहीं था, अपना अग्रज मानकर वे उनका उचित आदर करते थे।'

समय दोपहरका था। बाहुबलिका राज्य दरबार लगा हुआ था। मंत्री गण किसी एक विचारमें मग्न थे, इसी समय द्वारपालने आकर निवेदन किया—

महाराज! अयोध्याका एक दूत आपके दर्शनकी इच्छा रखता हुआ द्वारपर खड़ा है। उसे आनेकी आज्ञा मिली। दूत दरबारमें आया, प्रणाम करके उसने अपने आनेका कारण बतलाया। वह बोला—आपके अग्रज भारतके चक्रवर्ती सम्राट् भरत नरेश भारतविजय करके लौट आए हैं, उनके प्रचंड पराक्रमके साम्हने सभी मंडलेश्वर राजाओंने अपने मस्तक झुका दिए हैं उन सबका क्षीण पौरुष आज चक्रवर्तीके चरणोंपर लोट रहा है आपके पास उन्होंने एक पत्र भेजा है और निवेदन किया है कि आप इसका शीघ्र ही उत्तर प्रदान करें। बाहुबलिजीने पत्र ले लिया। उन्होंने उसे पढ़ा। पत्रमें लिखा था—

प्रियअनुज! प्रेमाशीर्वाद!

तुम्हें यह मालूम होगया होगा कि मैं आज भारतविजय प्राप्त करके लौटा हूं, तुम मेरी इस विजय यात्रासे अवश्य प्रसन्न होगे। मैं तुम्हें इस विजयोत्सवमें सम्मिलित हुआ देखना चाहता हूं। साथ ही मैं यह भी चाहता हूं जिस तरह भारतके सभी राजाओंने मेरे प्रभुत्वको स्वीकार किया है, उसी तरह तुम भी मेरे प्रभुत्वको स्वीकार करो,

और मेरी आज्ञामें रह कर मेरा अनुशासन मानो। मैं तुम्हारा बडा भाई हूं, साथ ही भारतका चक्रवर्ति सम्राट् हूं, इसलिए तुम्हें मेरे महत्त्वको मान कर मेरे पास आकर मुझे प्रणाम करना चाहिए और अपने राज्यको सुरक्षित रखना चाहिए। यह मेरा निश्चित मत है। मैं चाहता हूं कि पत्र मिलते ही तुम मेरी आज्ञाका पालन करो।

तुम्हारा—भरत (चक्रवर्ति)

पत्र पढते ही बाहुबलिका चेहरा रक्तवर्ण होगया। मस्तक ऊंचा होगया। नेत्रोंमें वीर ज्योति झलकने लगी। वे चक्रवर्तिकी कूटनीति समझ गए, वे सोचने लगे भारत विजय करके भी चक्रवर्तिकी विजय लालसा पूर्ण नहीं हुई, और अब वे मेरे राज्यको हडपना चाहते हैं। मुझे अपना गुलाम बनाना चाहते हैं, लेकिन यह कभी नहीं होगा। बाहुबलिकी आत्मा कभी गुलाम नहीं बन सकती। वह किसीका प्रभुत्व स्वीकार नहीं कर सकती फिर चाहे वह चक्रवर्ति और मेरा बड़ा भाई ही क्यों न हो। उससे मेरा भाईका अब क्या नाता जो मेरी स्वाधीनता छीनना चाहता है। राजनीतिमें नातेदारीका क्या संबंध, जो भी हो मैं अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करूंगा, अपने प्राण सर्वस्व न्योछावर करके भी अपनी स्वतंत्रता स्थिर रक्खूंगा।

मुझे यह राज्य मेरे पिताने दिया है जिस तरह उन्हें दिया था। मैं अपने राज्यका उसी तरह स्वामी हूं जिसतरह वे हैं। मेरा यह पैतृक अधिकार है, अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिए मैं भाईका कृपा पात्र नहीं बनना चाहता, मुझे उनके विजयोत्सवमें क्यों साम्मिलित होना चाहिए, जब कि इस उत्सवका लक्ष्य प्रभुत्व प्रकाशन है। उनकी विज-

यसे मुझे ईर्षा नहीं है । फिर उन्हें मेरी स्वाधीनतासे द्वेष क्यों है ? वे मेरी स्वाधीनता क्यों नहीं देखना चाहते ? क्या मेरी स्वाधीनता छीने विना उनका चक्रवर्तित्व स्थिर नहीं रह सकता ? इसका क्या अर्थ है कि भारतके सभी राजाओंने उनका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया है और अपनी स्वाधीनता खो दी है तो मैं भी उसे नष्ट हो जाने दूं ? वे राजा लोग यदि आजादीका रहस्य नहीं समझते उनके हृदय यदि इतने निर्बल होगए हैं तो मैं उसके रहस्यको समझता हुवा भी क्यों गुलाम बनूं ? नहीं, यह कभी नहीं होगा, भले ही इसके लिए मुझे अपने भाईका विरोधी बनना पड़े और चाहे सारे संसारका विरोध करना पड़े, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा, और आजादीका मूल्य चुकाऊंगा ।

उन्होंने उसी समय पत्रका उत्तर लिखा—

प्रिय अग्रज ! अभिवादनम् ।

भारत विजयके उपलक्षमें बधाई ! एक भाईके नाते मुझे इस विजयोत्सवमें अवश्य सम्मिलित होना चाहिए था लेकिन नहीं होरहा हूं इसका उत्तर आपके पत्रका अंतिम भाग स्वयं दे रहा है। मैं एक स्वतंत्र राजा हूं, मेरे पूज्य पिता ऋषभदेवजीने मुझे यह राज्य दिया है, फिर मुझे आपकी आधीनता स्वीकार करनेकी क्या आवश्यक्ता ? आप मेरी स्वाधीनता नष्ट करने पर तुले हुए हैं। ऐसी परिस्थितिमें आपकी कोई भी आज्ञा पालन करनेसे मैं इन्कार करता हूं । आप मेरे बड़े भाई हैं। भाईके नाते मैं आपकी प्रत्येक सेवाके लिए तैयार हूं, लेकिन जब मैं सोचता हूं कि आप चक्रवर्ति हैं और इस चक्रवर्तिके प्रभुत्वके नाते मुझपर अपनी आज्ञा चलाना चाहते हैं तब आपकी

सेवा करना मैं अपना अपमान समझता हूं। मैं जानता हूं मेरी यह स्पष्टता आपको अवश्य खलेगी लेकिन इसके सिवाय मेरे पास और कोई प्रत्युत्तर नहीं है। आपका—बाहुबलि।

पत्र लिखकर उन्होंने उसे बंद किया और दूतको देकर उसे चक्रवर्तिके लिए देनेको कहा—

दूतने पत्र ले जाकर चक्रवर्तिको दिया। उन्होंने पत्र पढ़ा। पढ़ते ही उनका हृदय क्रोधसे प्रदीप्त होगया। वह बोल उठे, बाहुबलिकी इतनी धृष्टता? वह मेरा भारत विजयी चक्रवर्तिका, प्रभुत्व स्वीकार नहीं करना चाहता? एक साधारण राज्यके स्वामित्वका उसे इतना अहंकार है? अच्छा मैं अभी उसका यह अभिमान शिखर टुकड़े २ कर दूंगा। यह कहते हुए उन्होंने बाहुबलिसे युद्ध करनेके लिए अपने प्रधान सेनापतिको सैन्य सजानेकी आज्ञा दी।

चक्रवर्तिके विद्वान् मंत्रियोंने इस बन्धु विरोधको सुना। भाई भाईमें बढ़ती हुई इस युद्धाग्निको उन्होंने रोकनेका प्रयत्न किया। वे चक्रवर्तिसे बोले-सम्राट्! आप राजनीति विशारद हैं, दोनों भाइयोंके परस्परके युद्धसे भीषण अनिष्ट होनेकी आशंका है। कुमार बाहुबलि न्यायप्रिय और विवेकशील हैं, इसलिए उनके पास एकबार दूत भेजकर फिरसे उन्हें समझाया जाय, यदि इसबार भी वे न समझें तो फिर सम्राट् जैसा उचित समझें वैसा हुक्म दें।

मंत्रियोंकी सम्मतिको चक्रवर्तिने पसन्द किया और एक पत्र लिखकर उसे दूतको देकर बाहुबलिके पास भेजा। पत्रमें उन्होंने लिखा था—

प्रिय अनुज ! सस्नेहाशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य हुआ। तुम मेरे भाई हो, मैं चाहता था तुम्हारे सम्मानकी रक्षा हो और मुझे तुमसे युद्ध न करना पड़े। तुम स्वयं आकर मेरा प्रभुत्व स्वीकार कर लो, किन्तु मैं देख रहा हूं, तुम बहुत उद्दंड होगए हो। मैं तुम्हें समझा देना चाहता हूं, कि राज्यनीतिमें बंधुत्वका कोई स्थान नहीं है वहां तो न्यायकी ही प्रधानता है। न्यायतः भारतकी प्रत्येक भूमिपर मेरे अधिकारको मानकर ही कोई राजा अपना राज्य स्थिर रख सकता है, तुम यह न समझना कि बंधुत्वके आगे मैं अपने न्याय अधिकारोंको छोड़ दूंगा।

एकबार मैं तुम्हारी उद्धतताके लिए क्षमा प्रदान करता हूं, और मैं तुम्हें फिर लिखता हूं कि अब भी यदि तुम मेरे साम्हने उपस्थित होकर मेरा प्रभुत्व स्वीकार कर लोगे, तो तुम्हारा राज्य और सम्मान इसी तरह सुरक्षित रहेगा। लेकिन यदि तुमने फिर ऐसी धृष्टता की तो मुझे यह सहन नहीं होगा और उसके लिए मुझे तुमसे युद्ध करना होगा। मैं तुम्हें चेतावनी देता हूं। तुम्हारे सामने दो चीजें उपस्थित हैं, आधीनता अथवा युद्ध। दोनोंमेंसे तुम जिससे भी चाहो स्वीकार कर सकते हो।　　　　तुम्हारा—भरत (चक्रवर्ति)।

दूतने पत्र लाकर बाहुबलिको दिया, पत्र पढ़कर बाहुबलिका आंतरिक आत्म सम्मान जागृत हो उठा, लेकिन वे इतने बड़े युद्धका उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे इसलिए उन्होंने मंत्रियोंसे परामर्श कर लेना उचित समझा।

मंत्रियोंने कहा—महाराज ! हम युद्धके इच्छुक नहीं हैं, लेकिन

हमें अपनी आजादीकी भी रक्षा करना चाहिए है। यह प्रश्न जनता और देशकी स्वतंत्रताका है, इसके लिए हमें अपना सब कुछ बलिदान करनेसे नहीं हिचकना होगा। अपनी प्रजाको दूसरोंकी गुलामी करते हुए हम नहीं देख सकेंगे। हमें अपनी आत्म रक्षा करना होगी, उसका चाहे कितना मूल्य देना पड़े।

बाहुबलिजी भी यही चाहते थे, उन्होंने मंत्रियोंके उत्तरकी प्रशंसा और फिर उत्तर पत्र लिखना प्रारंभ किया।

प्रिय अग्रज, अभिवादनम्।

पत्र मिला। जीवन रहते हुए मैं किसीकी आधीनता स्वीकार करना नहीं चाहता यह मेरा निश्चित मत है। आपने मुझे युद्धकी धमकी दी है, और यदि आपको युद्ध ही प्रिय है, आप युद्ध करके मेरी स्वाधीनता नष्ट करनेमें ही अपना गौरव और न्याय समझते हैं, तो मैं इसके लिए तैयार हूं। मैं युद्धसे नहीं डरता। यह तो वीरोंका एक खेल है, इस आतंकका मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं लेकिन मैं आपको चेतावनी देता हूं कि युद्धमें बाहुबलिका यदि कोई प्रतिद्वन्दी है, तो वह चक्रवर्ति ही हैं, फिर भी आप बहुत सोच समझ कर युद्धमें उतरें नहीं तो यह युद्ध आपको बहुत महंगा पड़ेगा।

आपका—बाहुबलि।

दूतको पत्र दिया वह शीघ्र ही उसे चक्रवर्तिके पास ले गया। उन्होंने पढ़ा, अग्निमें घृतकी आहुति पड़ी। उनके क्रोधका पारा अंतिम डिग्री तक पहुंच गया, नेत्र अग्निज्वालाकी तरह जल उठे, भुजाएं फड़क उठीं, वे अपने भड़कते हुए क्रोधको रोक नहीं सके।

उन्होंने सेनापतिको संपूर्ण सेना सजाकर पोदनपुर पर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी । युद्धका बाजा बज उठा । भूमंडलको अपने प्रचंड वेगसे कंपाती हुई चक्रवर्तिकी सेनाने पोदनपुरको चारों ओरसे घेर लिया ।

चक्रवर्तिकी सेनाने नगरको घिरा हुआ देखकर बाहुबलिने भी अपनी सेना संगठित की और चक्रवर्तिसे युद्ध करनेके लिए तैयार होगए । दोनों ओरके सिपाही आज्ञा मिलते ही एक दूसरेसे भिड़नेको तैयार थे, लोहासे लोहा बजनेको था, युद्धकी बलिवेदी सैनिकोंका रक्तपात करनेको लालयित थी । इसी समय दोनों ओरके मंत्रियोंने आपसमें एक सलाह की । दोनों भाई शक्तिशाली और बलवान हैं, झगड़ा भी दोनों भाइयोंका है इसलिए भाइयोंके इस विवादमें निरपराध सैनिकोंका रक्तपात क्यों किया जाय? दोनों भाई आपसमें द्वन्द युद्ध करके अपनी शक्तिका अनुमान लगालें और हार जीतका निर्णय करलें ।

मंत्रियोंके निर्णयको दोनों वीरोंने स्वीकार किया । दोनों ओरके सैनिक ज्योंके त्यों अपने स्थान पर खड़े रहे ।

युगल बन्धुओंने हारजीतके लिए तीन युद्ध निश्चित किए । नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध । वीर बन्धु अखाड़ेमें उतरे । दोनों ही शक्तिशाली और सुगठित शरीरवाले थे, दोनोंका युद्ध देवताओंके भी देखने योग्य था ।

सबसे पहिले नेत्र युद्ध हुआ । बाहुबलिका शरीर भरतसे कहीं अधिक ऊँचा था इसलिए अपने नेत्रोंको भरतके साम्हने निर्निमेष और स्थिर रखनेमें उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, किन्तु चक्रवर्तिको अपनी दृष्टिको अधिक समय तक ऊपर उठाए रखनेमें कष्टका अनुभव

होने लगा, वे अपनी दृष्टिको स्थिर नहीं रख सके और उन्हें इस युद्धमें अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी ।

अब जल युद्धकी बारी आई । दोनों ही जलयुद्धके लिए सरोवरमें उतरे और एक दूसरे पर जलके छींटें डालकर हरानेकी कोशिश करने लगे । बाहुबलिकी शरीरकी ऊंचाईने यहां भी उनको विजयी घोषित किया । वे अपने हाथोंके छींटोंसे चक्रवर्तिके मुंह, आंखों तक उड़ाकर उन्हें बेकल करने लगे जबकि चक्रवर्तिके उड़ाए हुए जलकण उनके कंधेतक ही रह जाते थे । मस्तक और नेत्रोंपर लगातार जलकणके प्रहारसे घबड़ा उठे और इस जल युद्धमें भी उन्हें अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी ।

अब मल्लयुद्धकी बारी थी, यह अंतिम युद्ध था । दोनों वीर योद्धा रंगभूमिमें उतरे और अपनी मल्लविद्याका चमत्कार दिखाने लगे । युगल वीर मल्ल विद्यामें निपुण थे, दोनों ही युद्धके दांवपेंचको जानते थे इस लिए अधिक समय तक युद्ध करके भी एक दूसरेको पराजित नहीं कर सके । युद्ध कुछ और अधिक समय तक चलता । इसी समय दर्शकोंने देखा दीर्घ शरीरवाले बाहुबलिने अपने विशाल बाहुपाशों द्वारा चक्रवर्तिको ऊपर उठा लिया और फिर उनके दृढ़ शरीरको अपने कंधोंपर रख लिया । यदि वे चाहते तो चक्रवर्तिका शरीर पृथ्वी छूता दिखलाई देता लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया और उनके शरीरको अपने कंधोंपरसे धीरे२ भूतलपर उतार दिया ।

बाहुबलि इस अंतिम युद्धमें भी विजयी हुए इस विजयने सभी दर्शकोंको आश्चर्यमें डाल दिया ।

चक्रवर्ति तीनों युद्धमें विजित हुए। संपूर्ण भारतपर अपनी विजयकी पताका फहरानेवाला चक्रवर्ति अपनी इस हारको सहन नहीं कर सका, उसका प्रताप पूर्ण मुंह मंडल कुछ समय प्रभाहीन होगया। न्यायका नाटक समाप्त होगया था, अब अन्यायकी बारी थी। अविवेकने चक्रवर्तिका साथ दिया, वे अपनी संपूर्ण राजनीतिको तिलांजलि दे बैठे। उन्होंने क्रोधित होकर अपने चक्रको संभाला और उसे अपनी अंगुलीपर घुमाकर देखते ही देखते बाहुबलिके ऊपर चलाया। इस अन्यायको देखकर दर्शकोंका मन ग्लानिसे भर गया, वे उसके प्रतिकारके लिए कुछ कहना ही चाहते थे कि इसी समय उन्होंने देखा चक्रवर्तिका चलाया हुआ चक्र बाहुबलिके शरीरको छू भी न सका, वह उनकी प्रदक्षिणा देकर चक्रवर्तिके पास वापिस लौट आया।

बाहुबलिके धैर्यकी यह अंतिम सीमा थी, सभी राजाओंने उनके इस धैर्यको देखा; वे चक्रवर्तिको इस अन्याय युद्धके लिए धिक्कार देने लगे।

अपने भाई चक्रवर्तिके इस अन्याय और राज्य लोलुपताका बाहुबलिके पवित्र हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनका हृदय इस कुकृत्यसे विचलित हो उठा। उन्होंने स्वप्नमें भी उनके इतने नीचे गिरनेकी बात नहीं सोची थी। युद्धके इस अध्यायने उनके मनको बदल दिया वे सोचने लगे, इस प्रकार अन्याय और कुकृत्य करानेवाली इस राज्य लिप्साको सैकड़ों धिक्कार हैं। आह! देखो, इस राज्य तृष्णामें पागल हुआ मनुष्य अपने अंतरात्माके विवेक और कर्त्तव्यको किस तरह ठुकरा देता है, और दूसरोंके रक्तका प्यासा बन जाता है। यह

भरत मेरा भाई है, हम दोनोंकी जन्मदात्री एक ही जननी है। हमारे शरीरमें एक ही मांका खून बह रहा है, लेकिन राज्य लोलुपताने इसे भुलाकर मेरा वध करनेको मजबूर कर दिया। तब क्या यह अपनेको अमर समझता है? क्या यह समझता था कि मुझे मारकर भारतका विजयी सम्राट् कहलाकर इस जीती हुई वसुधाका अनंतकाल तक उपभोग करूंगा? लेकिन इसमें बेचारे इस चक्रवर्तिका क्या अपराध है, यह तो सब इसके मनकी अनुचित महत्वाकांक्षाका प्रभाव है, यह तो उसका गुलाम है, यह बिलकुल निर्दोष है। विचार करते हुए वे अपने हृदयकी निर्दोष सरलताका परिचय देते हुए बोले—

भाई भरत! मेरे अखंड शरीर पर चक्रका प्रहार करके आपने उचित कार्य नहीं किया। संसारमें अपना निर्मल यश फैलानेवाले भगवान् ऋषभदेवके ज्येष्ठ पुत्रके लिए गौरवशाली नहीं। यह कार्य करके आपने अपने वंशकी निर्मल कीर्तिको कलंकित किया है, लेकिन इसके लिए भी आपसे क्षमा करता हूं। आप समझते होंगे मुझे राज्यकी आकांक्षा है, लेकिन ऐसा नहीं है, यह चंचला राज्य लक्ष्मी मेरे लिए आकर्षणकी वस्तु नहीं है, यह तो आपके लिए सौभाग्य-शालिनी बनी रहे। मैंने यह युद्ध राज्य लालसासे नहीं किया था, मेरे युद्धका उद्देश्य तो अन्यायका प्रतिरोध और अपनी स्वाधीनता रक्षणका था। स्वाधीनताके इतिहासमें मेरा यह युद्ध प्रथम प्रस्तावना काम देगा और आगे आनेवाले स्वाधीन वीरोंके लिए स्वाधीनताकी दिशामें मार्ग प्रदर्शक होगा। मैं राज्य लोलुपी नहीं हूं, यह मैं केवल शब्दोंसे ही नहीं कह रहा हूं, मैं आजसे ही इस राज्यलक्ष्मीका त्याग

काता हूं। मैं तो अब अपना डेरा जंगलमें जमाऊंगा, यह राज्य-लक्ष्मी आप जैसे लोलुपोंके लिए मैं छोड़े जाता हूं। आप इसका आजादीसे उपभोग कीजिए।

बाहुबलिजीने यह सब कहा और फिर अपने वीर पुत्रोंको बुलाकर उसी युद्ध भूमिमें उन्हें राज्यतिलक किया और वे प्रचंड आत्मवीर अपने सभी राज्य-चिन्हों और वस्त्रोंको फेंककर उसीसमय तपस्वी बन गए।

चक्रवर्ति भरतका हृदय आत्म ग्लानिसे भर गया, उन्हें अपने इस कुकृत्य पर हार्दिक पश्चात्ताप हुआ, और उन्होंने भाई बाहुबलिसे क्षमा याचनाकी। उन्हें राज्यमें लानेके लिए बहुत आग्रह किया किन्तु अब तो समय निकल चुका था, कमानसे तीर छूट चुका था, बाहुबलिने क्षमा प्रदान तो की परन्तु वे अपने निश्चयको नहीं बदल सके और सबके देखते ही देखते वे जंगलकी ओर चल दिए।

(४)

योगी बाहुबलि निर्जन गुफामें कठिन साधना निमग्न थे। आत्मचिंतनमें वे पूर्ण संलग्न थे। नश्वर शरीरके स्नेह जालको उन्होंने तोड़ दिया था, जगज्जयिनी क्षुधाको जीत लिया था। वे विश्वासकी तरह अटल व सुधाकी तरह निश्चल, और गगनकी तरह निर्मल थे। उन्होंने एक वर्षका अनाहारक व्रत धारण किया था। ध्यानमें अचल खड़े हुए, वह योगीश अकृत्रिम मेरु दंडकी तरह मालूम पड़ते थे। ग्रीष्मकी प्रचंड ज्वालाएं, शीतऋतुकी बर्फको गला देनेवाली ठंडी हवा और वर्षाकालकी मूसलधार मेघवर्षा उन्हें ध्यानसे चलित नहीं कर

सकी थी। वृक्षोंसे वेष्टित लता मंडपोंने उनके सारे शरीरको आच्छादित कर लिया था। सर्पोंने उनके शरीरके निकट ही गहरे बिल बना लिए थे, उनके ऊंचे फणोंसे जहरकी तीव्र ज्वालाएं निकलती थीं लेकिन योगी बाहुबलि निर्भय थे, वह टससे मस नहीं होना चाहते थे।

कठोर तपश्चरणके प्रभावसे उनके दिव्य शरीरमें अनेक चमत्कारिणी ऋद्धियोंने स्थान लिया था। कठिन उपसर्गों और यातनाओंके साम्हने तपश्चर्याकी आगमें तपा हुआ उनका स्वर्ण वर्ण शरीर तनिक भी चलित नहीं हुआ था। तपके बलसे तपे हुए उनके अलौकिक आत्म-प्रभावके आगे देवों और विद्याधरोंके मुकुट झुक जाते थे लेकिन उन्हें इसका कुछ भी भान नहीं मानो उनका आत्मा किसी अद्भुत आनंदके गहरे समुद्रमें गोते लगा रहा हो ऐसे थे वे योगीराज बाहुबलि—।

आज उनका एक वर्षका अनाहारक व्रत समाप्ति पर था, आज ही चक्रवर्ति भरत उनके दर्शनार्थ आए थे। योगीराजका सारा शरीर दिव्य प्रकाशसे जगमगा उठा था। चक्रवर्तिने उनके दिव्य शरीरको देखा, उनकी पवित्र आत्माके दर्शन किए। फिर वे सोचने लगे—एक वर्षके अनाहारक व्रत और कठोर तपश्चरण करने पर भी इन्हें अबतक कैवल्य क्यों नहीं हुआ, और वे शीघ्र ही इसका कारण जान गए। उन्होंने योगेश्वरकी मनकी भावनाको समझा, वे मन ही मन कहने लगे-ओह! योगी बाहुबलिके हृदयमें अब भी यह भावना बनी हुई है। वे अब भी समझ रहे हैं कि मैं चक्रवर्ति भरतकी भूमिपर खड़ा हुआ

हूं इसी छोटेसे कांटेने उनके मनको व्यथित कर रखा है, मैं उनके हृदयके इस शूलको निकालूंगा।

चक्रवर्ति भरतका मन पहिलेसे ही बदल चुका था। राज्य लक्ष्मीका अब उन्हें वह मोह नहीं रह गया था, वे शीघ्र ही उनके चरणोंमें नत होकर बोले-योगीराज! यह पृथ्वी स्वतंत्र है, इसका कोई भी स्वामी नहीं है। मानवके मनका अहंकार ही इस निश्चल वसुंधरा-को अपना कहता है, मेरे मनका अहंकार अब गल गया है। आप अपने हृदयके कांटेको निकाल दीजिए यह समस्त भूमि आपकी है, भरत तो अब आपका दास है, उसका अब अधिकार ही क्या रह गया है?

भरतजीके सरल शब्दोंने योगेश्वरके हृदयका शूल निकाल कर फेंक दिया, उन्हें उसी समय कैवल्यके दर्शन हुए। केवलज्ञान प्राप्त कर उन्होंने विराट विश्वके दर्शन किए।

देवताओंने उनकी पवित्र आत्मापर अपनी श्रद्धांजलि अर्पितकी और उनकी चरण रजको मस्तक पर चढ़ाकर अपने जीवनको सफल समझा।

द्वितीय खंड-　　　　युगाधार।

[६]

योगी सगरराज।

[भोगमार्गसे निकलकर योगमें आनेवाले महापुरुष]

(१)

राजा सगरका राज्य दरबार लगा हुआ था, वे सिंहासनारूढ़ थे। रत्नोंकी प्रभासे उनका सिंहासन चमक रहा था। मणि और मोतियोंके सुन्दर चित्र उनमें अंकित किए गए थे। सिंहासनके एक ओर प्रधान-मंत्री और दूसरी ओर प्रधानसेनापति थे। इसके बाद मंत्री और अंतरंग परिषदके सभासद थे। देश और विदेशोंके नरेश आकर उन्हें भेंट प्रदान करते थे, राजा उन्हें आदरसे योग्य स्थानपर बैठनेकी आज्ञा

देकर उनका सम्मान करते थे । चारणगण उनके अटूट ऐश्वर्यका मधुर शब्दोंमें गान कर रहे थे—वे कह रहे थे—पृथ्वीपति ! " आपके प्रबल पराक्रमसे अखिल भारतके राजाओंके हृदय कंपित होते हैं, आपके ऐश्वर्य और वैभवकी तुलना करनेकी शक्ति कुबेरमें नहीं है, देवबालाएं आपके ऐश्वर्य निवासमें रहनेकी अभिलाषा रखती हैं। भारतमें ऐसा कौन व्यक्ति है जो आपके सामने नतमस्तक हुआ हो ? जिसकी ओर आपकी कृपा-दृष्टि होती है वह क्षणमें महान् बन जाता है।"

राजा सगर अपने अनंत वैभव और अखंड प्रतापके गीतोंको सहर्ष सुन रहे थे । महामंडलेश्वर राजाओंने उनकी कृपा-प्राप्तिके लिए विनीतभावसे उनकी ओर देखा, उन्होंने मंत्रियोंसे कार्य सम्बन्धी कुछ परामर्श किया, जनताके सुख दुखकी बातें सुनीं और दरबार समाप्त किया ।

पार्श्व रक्षकोंके साथ उन्होंने राज्यमहलमें प्रवेश किया उसी समय उनके कानोंमें एक मधुर ध्वनि गूंज उठी—

पथिक मायामें मग्न न होना ।

मिथ्या विश्व प्रलोभनमें रे, आत्मशक्ति मत खोना ।
मोहक दृश्य देख यह जगका इस पर तनिक न फूल ।
मतवाला होकर रे मानव ! इसमें तू मत भूल ।
पथिक ! मायामें मग्न न होना ॥

गीत तन्मयताके साथ गाया जा रहा था, चक्रवर्तिने उसे सुना। गीतकी मधुर ध्वनि पर उनका मन मचल उठा, वे उसके पदलालित्य-पर विचार करने लगे । उन्होंने जानना चाहा कि यह मधुर गीत कौन

गा रहा है ? विचार करते हुए अपने राज्य–महलमें प्रवेश कर चुके थे। यौवनके वेगसे उन्मत्त सुन्दरियोंने उनकी ओर सस्नेह देखा, मधुर भावोंकी झंकार उठी, वे उनके स्नेहबंधनमें जकड़ गए।

(२)

योगीराज चतुर्मुखजी नगरके उद्यानमें पधारे थे। उनका कल्याणकारी उपदेश सुननेके लिए नगरकी जनता एकत्रित होकर जा रही थी। सम्राट् सगरने भी उनका आना सुना, वे उनके उपदेशसे वंचित रहना नहीं चाहते थे, मंत्रियों और सभासदोंके साथ वे योगीराजका उपदेश सुनने गए।

मणिकेतु नामक देव भी उनका उपदेश सुनने आया था, वह राजा सगरका पूर्वजन्मका साथी था, उसने इन्हें देखा और पहिचाना। पूर्वस्नेहके तार झंकरित हो उठे। पूर्वजन्मकी वे क्रीड़ाएं, विनोद लीलाएं और स्नेह वार्ताएं हृदय–पटल पर अंकित हो उठीं। उसे वह प्रतिज्ञा भी याद आई जो उन्होंने एक समयकी थी। कितना मधुमय समय था, वह दोनों वसंतकी लीला देख रहे थे, अचानक एक वृक्ष-पातसे उनका विनोद भंग हो उठा था, उस समय उन दोनोंने अपने परलोकके संबंधमें सोचा था। फिर उन्होंने आपसमें निर्णय किया था। हम लोगोंको भी यह स्वर्गका स्थान छोड़ना होगा तब जो व्यक्ति मानव शरीर धारण करेगा, देवस्थानमें रहनेवाले देवका कर्तव्य होगा कि संसारकी मायामें मग्न होनेवाले उस अपने मित्रको आत्मकल्याणके पथ पर चलानेका प्रयत्न करे। आज मणिकेतुके सामने वह प्रतिज्ञा प्रत्यक्ष होकर खड़ी थी। उसने सोचा—

"सगरराज, वैभवके नशेमें मदोन्मत्त हो रहा है, विलासकी मदिरा पीते तृप्त नहीं होता। उसने अपने आपको इन्द्रियों और मनकी आज्ञाके आधीन कर दिया है, वह अपने कर्तव्यको बिलकुल भूल गया है।"

"पूर्वजन्मकी प्रतिज्ञाके अनुसार मुझे उसके इस झूठे स्वप्नको भंग करना होगा, मुझे उसे लोक-कल्याणके पथ पर लगाना होगा। आज यह अवसर प्राप्त है, मैं इसे जाग्रत करनेका प्रयत्न करूंगा।"

योगेश्वरका उपदेश समाप्त होने पर वह सगरराजसे मिला और अपने पूर्वजन्मका परिचय दिया। पूर्वजन्मके बिछुड़े हुए युगल मित्र आज मिलकर अपने आपको भूल गए। उन्होंने उस आनन्दका अनुभव किया जिसका अवसर जीवनमें कभी ही आता है। फिर उन्होंने अपने जीवनकी अनेक घटनाओंका परस्पर विनिमय किया। सब बातें समाप्त हो जानेके बाद मणिकेतुने पूर्वजन्ममें की हुई प्रतिज्ञाकी याद दिलाई. और साथ ही साथ उनसे कहा—सम्राट्! आज आप महान् ऐश्वर्यके स्वामी हैं यह गौरवकी बात है। आपके जैसा वैभव, सौन्दर्य और विलासकी सामग्रिएं किसी विरले ही पुण्याधिकारीको मिलती हैं; किन्तु इनका एक दिन नष्ट होना भी निश्चित है। यह वैभव और साम्राज्य मिलकर बिछुड़नेके लिए ही है। इसके उपयोगसे कभी तृप्ति नहीं होती। मानव जितना अधिक इसकी इच्छाएं करता है और जितना अधिक अपनेको इसमें व्यस्त कर देता है. उतना अधिक वह अपनेको बंधनमें पाता है और अतृप्तिका अनुभव करता है। अब तक आपने स्वर्गीय भोगोंके पदार्थोंका सेवन करके अपनी

लालसाओंको तृप्त करनेका प्रयत्न किया है किन्तु क्या वे तृप्त हुई हैं? नहीं। सम्राट्! इच्छा पूर्णकी लालसामें मग्न हुआ मानव अपनी अपूर्ण कामनाओंको साथ लेकर ही संसारसे कूचकर जाता है। आपका कर्तव्य है कि जबतक आपकी इन्द्रिएं बलवान हैं इन्होंने आपको नहीं छोड़ा है, और जबतक आपकी शक्ति और सामर्थ्य आपसे विदा नहीं मांग चुकी है, उसके पहिले आप इस विलासकी आंधीको शान्त कर लें; नहीं तो यदि फिर सामर्थ्य नष्ट हो जाने पर, विषयोंने ही आपको त्याग दिया तो फिर आपके ज्ञान और विवेकका क्या मूल्य रहेगा। इसलिए आप सब संसारकी चिंताएं छोड़कर लोककल्याणकी चिंता करें, और जनताके हितके लिए सर्वस्व त्याग करें।

सम्राट्ने मित्र मणिकेतुके परामर्शको सुना, लेकिन उससे वे प्रभावित नहीं हुए, उनके मनपर उसकी बातोंका कोई असर नहीं हुआ। उनका मन तो इस समय वैभवके जालमें फंसा था, पुत्रमोहमें मोहित होरहा था और विलासका नशा अभी उनपर चढ़ा था, फिर उन्हें त्यागकी बात कैसे पसन्द आती?

मणिकेतु उनके अंतरङ्ग भावोंको समझ गया, उसने अंतमें अपने कर्तव्यकी स्मृति दिलाते हुए उनसे कहा—मित्र! मेरा कर्तव्य था कि मैं तुम्हें सचेष्ट करूं। तुम इस समय ममत्वमें फंसे हुए हो इसलिए मेरी बातोंकी वास्तविकताको नहीं समझ रहे हो, लेकिन एक दिन आएगा जब तुम इसे समझोगे। अच्छा, अब मैं आपसे विदा लेता हूं, यदि आपका मन चाहे तो कभी मेरा स्मरण कर लेना। मणिकेतु चला गया और सम्राट् सगर भी अपने नगरको लौट आए।

(३)

सगरराजके एकसे एक सुन्दर सौ पुत्र थे। अपने पिताके विशाल साम्राज्यमें वे आनंद और स्वतंत्रताका उपभोग कर रहे थे। कभी २ मनुष्य अपनी वेकारीसे भी ऊब उठता है; राजकुमार अपनी वेकारीसे घबड़ा उठे थे। एक दिन सबने मिलकर विचार किया—"पिताके सौभाग्यसे हमें किसी बातकी कमी नहीं है, लेकिन हमें उनके सौभाग्यपर ही अवलंबित नहीं रहना चाहिए, हमें भी कुछ न कुछ कर्तव्य करना चाहिए। कर्तव्यहीन मानवका मन निर्बल बन जाता है और निर्बल मनको अनेक रोग और आपत्ति घेर लेती हैं फिर कर्तव्य रहित और पौरुष विहीन मनुष्य कायर कहलाता है और कायर पुरुषोंको कहीं सम्मान नहीं मिलता। संसार कर्मक्षेत्र है, इसमें कर्मशील मानव ही सफलता, यश, गौरव और सम्मान प्राप्त करता है, हमें निष्कर्मण्य नहीं बनना चाहिए, और अपने जीवनका बोझ किसीके कंधे पर डालकर कायरोंकी जिन्दगी व्यतीत नहीं करना चाहिए।" इन विचारोंसे सभी एकमत थे, उन्होंने इस विषयमें पिताजीसे परामर्श करना उचित समझा। और वे सब मिलकर सम्राट् सगरके समीप आए। उन्होंने विनीत स्वरसे चक्रवर्तीसे कहा—'पिताजी! प्रत्येक मनुष्यको अपने योग्य कार्य करना आवश्यक है। कर्मशीलतासे ही मानव जीवन सफल होता है। हम सब युवक अब कार्य करने योग्य होगए हैं, हम क्षत्रिय कुमारोंका यह कर्तव्य नहीं है कि अकर्मण्य बनकर आलस्यकी गोदमें ही अपना अमूल्य समय समाप्त करदें; इसलिए आज हम आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। आप हमारे लिए योग्य

कार्यकी योजना बनाकर दीजिए जिसे हम श्रम और साहससे पूरा करें।

वीर पुत्रोंके योग्यतापूर्ण वचन सुनकर चक्रवर्तिने कहा—पुत्रो! सागरान्त पृथ्वी पर मेरा अधिकार है, पृथ्वीके सभी राजा मेरी आज्ञाका पालन करते हैं। साम्राज्यमें पूर्ण शांति है, शत्रुके नामसे आज तक किसीने अपना सिर नहीं उठाया है। संसारका वैभव आंख उठाते ही मेरे साम्हने आजाता है, फिर मैं तुम्हें क्या आज्ञा दूं ? तुम बताओ तुम्हें किस बातकी कमी है और किस चिन्ताने तुमपर आकर आक्रमण किया है जिसकी वजहसे आज तुम्हारे हृदयमें इस तरहकी भावनाएं उठी हैं। यदि तुम्हें किसी वस्तुकी कमीका अनुभव हुआ हो तो उसे मेरे साम्हने प्रकट करो मैं उसे शीघ्र पूर्ण करूंगा।

राजकुमार बोले—पिताजी! आपके कृपापूर्ण अनुग्रहसे हम सब सुख-सम्पन्न हैं, हमें किसी वस्तुका अभाव नहीं है फिर भी हम समझते हैं कि कर्तव्यके विना मानव जीवन निरर्थक है। हम यह भी जानते हैं कि जो मनुष्य प्राप्त सुखोंमें अपने आपको भुला देता है और भविष्यके लिए कुछ उपार्जन नहीं करता उसका संचित पुण्य नष्ट होजानेपर उसे अंतमें कठिन यातनाएं ही भोगना पड़ती हैं। परावलंबी बनकर और हाथपर हाथ रखकर निष्क्रिय जीवन व्यतीत करना और उसे विषय लालसामें ही लिप्त रखकर समाप्त कर देना तो मानव कर्तव्य नहीं है। इसलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमें कोई कार्य दीजिए हम उसे पूरा करके अपने कर्तव्यका पालन करेंगे।

राजकुमारोंकी बात सुनकर सम्राट् फिर भी बोले—पुत्रो! मैं जानता हूं कि तुम्हें कार्य करनेकी इच्छा है। मैं तुम्हारी इस इच्छाको

दबाना उचित नहीं समझता। तुम्हारे हृदयमें उठी हुई कर्तव्यभावनाओंको मैं कुचलना नहीं चाहता, लेकिन मैं तुम्हें क्या कार्य बतलाऊं। फिर कुछ समय तक सोचनेके बाद वे बोले—अच्छा सुनो! मैं तुम्हें एक कार्य देता हूं। देखो, कैलाश पर्वत पर सम्राट् भरतने सुन्दर चैत्यालयोंका निर्माण कराया है, उसमें भगवान् ऋषभदेवकी विशाल मूर्ति स्थापित की है। भविष्यमें इन मंदिरोंकी रक्षाके लिए तुम कैलाशके चारों ओर एक खाई बनादो और उसमें गंगाकी धाराको लाकर मिलादो, तुम यह कार्य अच्छी तरहसे कर सकते हो इसलिए मैं इस कार्यके करनेकी तुम्हें आज्ञा देता हूं। आजसे ही तुम इस कार्यमें लग जाओ। सगरराजकी आज्ञाका शीघ्र पालन हुआ। सभी राजकुमारोंने हर्षध्वनिके साथ कैलाशकी ओर प्रस्थान किया और वज्र दंडकी सहायतासे वे पर्वतको तोड़ कर उसके चारों ओर खाईका निर्माण करने लगे।

(४)

कर्मवीर पुरुष एकबार अपने प्रयत्नमें निष्फल होनेपर निराश नहीं होते, वे आगे बढ़ते हैं और फिर अपने कर्त्तव्यको करते हैं और जबतक वे पूर्ण सफलता हासिल नहीं कर लेते तबतक उसे नहीं छोड़ते।

मणिकेतुको एकबार अपने कर्तव्यमें सफलता नहीं मिली थी। लेकिन वह अपने मैत्री धर्मको भूला नहीं था। वह समय और साधनके प्रयत्नमें था। आज समयने उसे पुकारा था, साधन भी उसके सामने उपस्थित होगए थे। आज वह कैलाश पर्वत पासे गुजर रहा था वहां उसने खाई खोदते हुए सगर पुत्रोंको देखा। उसने कुछ सोचा और

सोचकर मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसका अंतरात्मा बोल उठा—'आज इस मौकेको मुझे अपने हाथसे नहीं खोना चाहिए'—वह राजकुमारोंके निकट आया और उनसे बोला—राजकुमारो! इस स्थान पर खाई खोदनेकी आज्ञा तुम्हें किसने दी है? मैं यहांका स्वामी हूं और तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम खाई खोदना बन्द करो।

राजकुमारोंने उसकी इस धृष्टताका कुछ उत्तर नहीं दिया—और वे अपने काममें लगे रहे।

मणिकेतुने कहा—राजकुमारो! तुम सुनते नहीं? मैं कहता हूं कि तुम मेरे इस स्थान पर खाई नहीं खोद सकते।

अब राजकुमारोंने उसकी उद्दंडताका उत्तर देना उचित समझा। वे बोले—मूर्ख! सगर राजपुत्रोंको उनके कार्यसे रोकनेवाला तू कौन है? इस पृथ्वीके स्वामी सगरराजके प्रभावको तू नहीं जानता! जो इस तरह अपनेको मालिक बननेका स्वप्न देख रहा है। मालूम पड़ता है तेरा मस्तिष्क विकृत होगया है नहीं तो इस तरह पागलपनकी बातें करनेका साहस तुझे नहीं होता। हम लोगोंको सम्राट् सगरराजने खाई खोदनेकी आज्ञा दी है, हम अपना कार्य करेंगे, तू रोकनेवाला कौन होता है?

मणिकेतु बोला—तुम नहीं जानते, मैं इस पृथ्वीका स्वामी हूं, मेरे साम्हने सगरराज कौन होता है? तुम खाई खोदना शीघ्र बन्द कर दो, यदि तुम अपनी इस इच्छाको नहीं रोकना चाहते तो तुम्हें मृत्युके मुखमें जानेको तैयार होजाना चाहिए।

राजकुमार इसके लिए पहलेसे ही तैयार थे, उद्दंडता न कर

मणिकेतुके साम्हने खड़े हो गए। मणिकेतु तो यह चाहता ही था—उसने अपने दिव्यास्त्रके प्रभावसे उन सभी राजकुमारोंको मूर्छित कर दिया, वे सबके सब ऐसे मालूम पड़ने लगे मानो किसी महान् निद्राकी गोदमें सो रहे हों। उनमेंसे एक राजपुत्र ही बचा था जिसे मणिकेतुने सगरराजसे यह सब समाचार सुनानेके लिए छोड़ा था। उन सभी राजकुमारोंको मूर्छित दशामें छोड़ कर वह सगरराजके समीप पहुंचा।

(५)

सगरराज भोजन कर चुकनेके बाद अपने विश्राम गृहकी ओर आए थे, इसी समय उन्होंने किसी पुरुषका करुण रुदन सुना। वे उसके रुदनको अधिक देर तक नहीं सुन सके, उन्होंने द्वारपालसे उस व्यथित पुरुषको अपने पास लानेकी आज्ञा दी। द्वारपालने एक मलिन वेषधारी जर्जर शरीर वृद्धको लाकर उनके साम्हने खड़ा कर दिया। वह बहुत ही मलिन वस्त्र पहिने हुए था, उसकी सभी इन्द्रियें बे काबू होरही थीं और बड़े जोरसे वह कांप रहा था। सम्राट्के साम्हने आनेपर उसका रोना और भी बढ़ गया, उसकी हिचकिएं बन्ध हो गई और गला रुद्ध होगया।

वृद्धको धैर्य देते हुए सम्राट्ने कहा—वृद्ध! शान्त हो। बोलो—तुम इतने दुःखी क्यों होरहे हो?

वृद्धने अबतक अपने आपको संभाल लिया था, वह कुछ देर रुककर बोला—सम्राट्! आप भारतके सम्राट् हैं, आप सभी दुखियोंका दुःख दूर करते हैं। आपका हृदय करुणासे भरा हुआ है मुझे विश्वास होरहा है आप मेरी व्यथा अवश्य सुनेंगे। आह! पर मैं अपने कष्ट

कष्टका कैसे वर्णन करूं ? मेरा तो कलेजा मुंहको आता है। सम्राट् आज मेरा जीवन ही नष्ट होगया, मेरे बुढ़ापेका सहारा मेरा एकमात्र जवान पुत्र था। अपने जीवनका खून बहा कर मैंने उसका पालन किया था। मेरी सारी आशायें उसीपर अवलंबित थीं। आह! आज उस निर्दयने मुझसे मेरे लालको छीन लिया। वह मेरे आंखोंका तारा और मेरे जीवनका सहारा था। सम्राट् आप मेरी रक्षा कीजिए, मेरे बुढ़ापे पर तरस लाइए और मेरे लालको मुझसे फिर मिला दीजिए। वह आगे बोल नहीं सका, आंसूओंकी धारासे उसका मुंह रुद्ध होगया। चक्रवर्तीका हृदय वृद्धके करुण रुदनसे पिघल गया। वे बोले! वृद्ध ! धैर्य रक्खो मुझे बतलाओ वह कौन पुरुष है, मैं उसे इस अन्यायका दंड दूंगा।

वृद्धने कहा—सम्राट् आपके सान्त्वना पूर्ण शब्दोंसे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। मुझे अब विश्वास होगया कि मेरा कष्ट अवश्य दूर होगा, मैं आपको अपने पुत्रके छिन जानेका हाल सुनता हूं—राजाधिराज ? मैं अपने पुत्रको अपनी आंखोंसे कभी विलग नहीं करता था। आज मैं किसी कार्यको जंगल गया था, कुछ समय बाद जब मैं वापिस लौटा तब मैंने देखा कि मेरा वह जवान लड़का जमीनपर पड़ा हुआ है। मैंने समझा वह सो रहा है और उसे जगानेका काफी प्रयत्न किया। घंटोंतक जगाने पर भी जब वह नहीं जागा, तब मैंने उसे बड़े प्यारसे हिलाया डुलाया। जब वह उससे मस नहीं हुआ तब मैंने अपने पड़ोसियोंको उसे जगानेके लिए बुलाया। उन्होंने पुत्रको देखा और फिर मुझ पर करुणा दृष्टि लाकर वे बोले—वृद्ध ! तुम्हारा यह पुत्र

अब नहीं जगेगा। इसके प्राणोंको यमराज छीन ले गया है, वह बड़ा दुष्ट है वह किसीकी कुछ नहीं, सुनता उसके हृदयमें किसीके लिए करुणा नहीं है। अब तुम इसके जगानेका उपाय मत करो, यह मृतक होगया है। जब मैंने यह सुना तब मेरे हृदयको बड़ा शोक हुआ और अब मैं आपके पास आया हूं। आप उस दुष्ट यमराजसे मेरे प्रिय पुत्रके प्राणोंको लौटया दीजिए। मैं आपकी शरण हूं आप मेरी रक्षा कीजिए।

वृद्धकी बात सुनकर सम्राट्को उसके भोलेपन पर बड़ा तरस आया वे उसकी सरलतासे बहुत प्रभावित हुए और उसे समझाते हुए बोले—हे वृद्ध महोदय! आप बड़े ही सरल हैं, आप यह नहीं जानते कि मृत्युके द्वारा छीने गए मनुष्यको बचानेकी किसीमें ताकात नहीं है, महोदय! मृत्यु तो यह नहीं देखती कि वह जवान है, अथवा किसीका इकलौता पुत्र है। उसकी आज्ञा संसारी मनुष्य पर अखंड रूपसे चलती है। चाहे सम्राट् हो अथवा दीन भिखारी, समय आनेपर वह किसीको नहीं छोड़ता। तुम्हारे पुत्रकी आयु समाप्त होगई है, वह मृतक होगया है। मृतकको जिलानेकी ताकत किसीमें नहीं है, इस लिए अब तुम्हें उसके प्राणोंका मोह त्याग कर शांतिकी शरण लेना चाहिए।

सम्राट्के वचनोंसे वृद्धको शांति नहीं मिली। वह बोला—सम्राट्! मेरे हृदयको पुत्र प्राप्तिके विना शांति नहीं। मेरा हृदय पुत्र वियोगको सहन करनेके लिए किसी तरह भी समर्थ नहीं है। पुत्रके मिलनेकी इच्छासे मैं आपके पास आया था, उपदेश सुननेके

लिए नहीं, लेकिन मैं देखता हूं, मुझे आपके यहांसे निराश होकर लौटना पड़ेगा। आप चक्रवर्ति सम्राट् होकर भी मेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे? सम्राट्! आप ऐसा न कीजिए, आप शक्तिशाली हैं, आप इस यमराजसे अवश्य ही युद्ध कीजिए और मेरे पुत्रको लौटा दीजिए।

वृद्ध तुम नहीं समझते? यमराजसे युद्ध करना मेरी शक्तिसे बाहर है अब तुम्हारा रोना धोना व्यर्थ है इसे बन्द कीजिये और इस वृद्धावस्थामें शांतिकी शरण लीजिए। महोदय! अब आप पुत्र-मोहको छोड़िए। यह ममत्व ही आत्मबंधनकी वस्तु है। तुम यह नहीं जानते कि सारा संसार स्वार्थमय है, सांसारिक स्नेहके अंदर स्वार्थ ही निहित रहता है नहीं तो वास्तवमें न कोई किसीका पुत्र है और न पिता है। न कोई किसीकी रक्षा करता है और न किसीको कोई मारता है। यह सब संसारका माया मोह है, जिसके कारण हम ऐसा समझते हैं। आपको तो अब मोह त्याग कर प्रसन्न होना चाहिए। आज आपकी आत्मोन्नतिके मार्गका कंटक निकल गया, अब आप बंधन मुक्त हैं। आजसे अब अपने जीवनको सफल बनानेका पयत्न कीजिए। यह मानव जीवन आत्म-कल्याणका श्रेष्ठ साधन है, इसे पुत्र मोहमें पड़कर नष्ट मत कीजिए। अबतक पुत्र मोहके कारण आप अपना कल्याण न कर सके, लेकिन अब तो आप स्वतंत्र हैं इसलिए शोक त्याग कर साधु दीक्षा लीजिए और आत्मकल्याणमें संलग्न हो जाइए।

सम्राट्! वृद्धको इस तरह सान्त्वना दे रहे थे इसी समय अपने भाइयोंकी मृत्युसे शोकित राजकुमारने प्रवेश किया। उसका मन बेकल हो रहा था। उसने आते ही अपने सभी भाइयोंको खाई खोदते

हुए मृत्यु प्राप्त होनेका समाचार सुनाया। प्रिय पुत्रोंकी मृत्यु सुनकर सगरराज मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जब वह चैतन्य हुए तब उन्होंने देखा कि साम्हने वृद्ध खड़ा हुआ है। वह कह रहा है—सम्राट्! उपदेश देना सरल है लेकिन उसका पालन करना कठिन है। दूसरोंको पथ बतला देना कुछ कठिन नहीं परन्तु उसपर स्वयं चलना टेढ़ी खीर है। आप मुझे तो उपदेश दे रहे थे आत्म कल्याण करनेका लेकिन आप खुद पुत्र वियोगकी बात सुनते ही बेहोश होगए।

वृद्धके इस व्यंगका सम्राट्के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मनसे मोहका बोझ उतर गया। वे सोचने लगे—वास्तवमें वृद्धका कथन सत्य है। सांसारिक मोह महाबलवान है, मेरे ऊपर भी इस मोहका प्रबलचक्र चल रहा है, और मैं उसीमें चक्कर लगा रहा हूं। आज मेरा मोह नशा भंग होगया। फिर वे वृद्धसे बोले—वृद्धमहोदय! सम्राट् जो कहते हैं उसे करते हैं। बेशक मोहने मुझे बेहोश बना दिया था, लेकिन अब मैं स्वस्थ हूं। मैंने आत्मकल्याण और लोक सेवाके पथ पर चलना निश्चित कर लिया है, चलिए आप भी मेरे इस पथके पथिक बनिए।

सम्राट्के शब्दोंसे वृद्ध चौंक पड़ा, वह उठा और बोला—सम्राट्! आज आप उस पथपर आए हैं, जिसपर कुछ समय पूर्व मैं आपको लाना चाहता था। आप मुझे नहीं पहचानते, मैं आपका पूर्वजन्मका साथी वही मणिकेतु हूं। मैंने आपको लोककल्याणके मार्ग पर लानेके लिए ही यह सब कार्य किया है। मैंने ही खाई खोदते हुए आपके पुत्रोंको बेहोश कर दिया था, और मैं ही वृद्धका रूप रखकर यहां

आया हूं। पूर्वजन्मकी प्रतिज्ञा पूर्ण करना मेरा कर्तव्य था, मैंने मित्रके एक कर्तव्यको पूर्ण किया है। मेरा कार्य अब समाप्त होगया, आप अब आत्म-कल्याणके पथ पर हैं।

मैं अब जाता हूं, आप अपने निर्धारित पथ पर चलकर लोक-कल्याण भावनाको सफल बनाइए। बेहोश हुए आपके पुत्रोंको मैं होशमें लाता हूं। यह कह कर उसने वृद्धका रूप बदल डाला। अब वह मणिकेतुके रूपमें था। सगरराजने उसे हृदयसे लगा लिया और उसके मैत्री धर्मकी प्रशंसा करते हुए कहा—मणिकेतु! तुम मेरे पूर्व जन्मके सच्चे मित्र हो। मित्रका यह कर्तव्य है कि वह सत्य-मार्गका प्रदर्शन करे और अपने मित्रको श्रेष्ठ सलाह दे। तुमने मोह—जालमें बेहोश रहनेवाले मित्रको समय रहते सचेत कर दिया इससे अधिक मैत्री धर्म और क्या हो सकता है? अब मैं कल्याणपथका पथिक हूं, मुझे अब कोई उससे उन्मुख नहीं कर सकता। यह कहते हुए सम्राट्का हृदय मित्र प्रेमसे भर आया, वे फिर एकबार हृदयसे मिले।

मणिकेतु अपना कार्य समाप्त करके देवलोक चला गया और सम्राट् सगर योगी सम्राट् बन गए।

[७]

निस्पृही सनत्कुमार।

(आत्म-सौन्दर्यके परीक्षक)

(१)

सम्राट् सनत्कुमार भारतके चक्रवर्ती राजाओंमेंसे थे वह अखंड ऐश्वर्यके स्वामी थे साथ २ ही अनंत सौन्दर्यके स्वामी भी वह थे। उनका सौन्दर्य और मनोहर रूप दर्शनीय था। विश्वके सम्पूर्ण सुन्दर मोहक और लावण्यमय परमाणुओंको एकत्रित कर प्रकृतिने उनके शरीरकी रचना की थी। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो उनके सौंदर्यकी प्रशंसा न करता, उनके सुगठित शरीरपर उनके नेत्र मोहित न होते और उनके देखनेकी इच्छा न करता। उनके शरीरकी प्रभाके आगे सूर्य और चन्द्र लज्जित होते थे। मानव क्या देवता भी उनके आकर्षक सौन्दर्यकी प्रशंसा करते थे।

कामदेवको उनकी निर्दोष सुन्दरता देखकर मनमें जलन हुआ करती थी। सुरबालाएं उनके दर्शनके लिए उत्कंठित रहती थीं और कविगण उनके सौन्दर्यकी प्रशंसामें अपनी लेखनीको यशस्विनी बनाते थे। लेकिन सम्राट्को अपने सौन्दर्यका तनिक भी अभिमान नहीं था, वह उसे प्रकृतिकी एक देन समझते थे।

(२)

मानव जगतके अद्भुत पदार्थोंका वर्णन करनेमें इन्द्रराज कभी नहीं चूकते थे, उन्हें भारतकी महिमा और उसके ऐश्वर्यकी प्रशंसा करनेमें बड़ा आनंद आता था। उन्हें भारतसे प्रेम था, भारतवासियोंके महत्वको वे जानते थे और देवताओंको भारतकी महिमा बतलानेवाले प्रसंगोंको वे समय २ पर वर्णन किया करते थे।

उन्होंने सनत्कुमारके आकर्षक सौन्दर्यको देखा था उससे वे बहुत ही प्रभावित हुए थे। वे सौन्दर्य वर्णनकी लालसाको त्याग नहीं सके, और आज इन्द्रासन पर बैठे हुए उन्होंने सुर मन्डलके सामने उनके सौन्दर्यकी तारीफ कर ही डाली। वे बोले—अहा! सनत्कुमारका रूप, उनकी सुन्दरता अवर्णनीय है। देवताओ! मैंने पृथ्वी पर इतना एकत्रित सौन्दर्य कहीं नहीं देखा। भारतमें उनके सौन्दर्यकी समता करनेवाला कोई व्यक्ति खोज करने पर भी नहीं मिलेगा। सचमुचमें सौन्दर्य पर उनका अधिकार है। उनके सौन्दर्यको देखकर कोई भी मनोमुग्ध हुए विना नहीं रह सकता।

सम्राट्के सौन्दर्यकी यह वास्तविक प्रशंसा थी, सुरराजने अपनी ओरसे किसी अलंकार अथवा अत्युक्तिकी गंध नहीं मिलाई थी, किन्तु

देवताओंको इन्द्रके मुंहसे एक मानवकी यह प्रशंसा नहीं रुची । उनके हृदयमें विद्वेषकी भावनाएं जाग उठीं । अमरलोक निवासी देवताओंके विश्वविजयी सौन्दर्यके आगे नरलोकके एक व्यक्तिकी सुन्दरताकी प्रशंसा करना उनके सौन्दर्यका उपहास था, वह उन्हें सहन नहीं हो सका । वे इस प्रशंसाका समर्थन नहीं करना चाहते थे, मन नहीं बोलता था, किन्तु मुंह खोलना तो आवश्यक था । फिर उन्हें इन्द्रदेवके रुष्ट होनेका भी भय था । स्वामीके आगे साधारण मनुष्योंको कभी२ अपने मनकी आवाजको भी दबाना पड़ता है । यही हुआ, न चाहने पर भी उन्होंने दबे कंठसे इन्द्रकी इस सौन्दर्य प्रशंसाका समर्थन किया ।

देवताओंके समूहमें एक प्रभादेव ही ऐसा था जिसने सम्राट्के सौन्दर्यका हृदयसे समर्थन किया था । दरबार समाप्त होते ही उसके हृदयमें सम्राट्के सौन्दर्य दर्शनकी उत्कट इच्छा हुई । वह उनके सौन्दर्यका परीक्षण भी करना चाहता था, वह स्वर्गलोकसे चलकर सम्राट् सनत्कुमारके भवनकी ओर आया ।

(३)

सवेरेका समय था—प्रतापी मार्तंडने अपनी सुनहरी किरणोंसे सारे विश्वमें सौन्दर्य सृष्टिकी रचना कर दी थी ।

नित्यकी तरह सम्राट् सनत्कुमार उस समय अपनी व्यायाम-शालामें थे । अखाड़ेमें उतरकर वे व्यायाम क्रिया कर रहे थे । उनका सुन्दर शरीर धूलमें सना हुआ था । धूल धूसरित शरीरसे सौन्दर्यकी दिव्यप्रभा निकलकर उस स्थानको दीप्तवान बना रही थी । खुले शरीर पर बिखरी हुई लालिमा और ओज एक विचित्र चमक पैदा कर रही

थी, उसी समय प्रभादेव वहां पहुंचा। उसे मालूम होगया था कि सम्राट् इस समय व्यायामशालामें हैं, वह वहां पहुंच कर उनके नग्न सौन्दर्यको देखना चाहता था। उसने गुप्त रूपसे व्यायामशालामें प्रवेश किया और अतृप्त नेत्रोंसे सम्राट्के सौन्दर्यको देखा। स्वाभाविक सौन्दर्य अपने अन्दर एक अद्भुत आकर्षण रखता है, किसीको भी अपनी ओर आकर्षित करानेकी शक्ति उसके अंदर रहती है। यह असंभव है कि वह अपने आकर्षणसे किसीका मन न खींच ले। मानव क्या देवता भी रूप राशिके जालसे अपनेको बचा नहीं सकते, फिर चाहे वह सौन्दर्य किसी युवती बालाका हो अथवा किसी युवकका। वह अपना आकर्षक प्रभाव रखता है। बनावटीपन, कृत्रिमता और भड़कावट इस शक्तिसे बिलकुल शून्य हैं, वह कुछ समयके लिए नेत्रोंमें एक चकाचौंध अवश्य पैदा कर सकती है। संभव है कुछ अज्ञानी और भोले मानव उसके बनावटी आकर्षणमें फंस जायें लेकिन परीक्षक और देवता उसके जालमें नहीं फंस सकते।

प्रभादेवने सम्राट्के उस अकृत्रिम रूपको देखा, वह उनके सौंदर्य पर मुग्ध, चित्रित और आश्चर्य चकित सा होकर देखता ही रह गया। न मालूम कितने समय तक वह उन्हें देखता रहा, परन्तु उसे तृप्ति नहीं हुई। किन्तु अब उसे इस सौन्दर्य दर्शनसे अपने नेत्रोंको रोकना पड़ा। सम्राट्का व्यायाम समाप्त होचुका था, इन्होंने स्नान किया, वस्त्र धारण किये और अपनी राज सभाको चल दिए।

सम्राट् सनत्कुमार अपनी राज्यसभामें थे, इसी समय द्वारपालने किसी अपरिचित पुरुषके आनेकी सूचना दी, अपरिचित राज्यसभामें

लाया गया। महाराजके सामने आकर अपरिचितने उन्हें प्रणाम किया, और फिर एक अर्थपूर्ण दृष्टिसे उनकी ओर देखा। इससे पहिले उसने सनत्कुमारको व्यायामशालामें देखा था और अब उन्हें सुन्दर वस्त्रोंसे भूषित राज्य सभामें देखा। उसने देखा कि जो सौन्दर्य व्यायाम-शालामें उनके शरीर पर था अब नहीं है, यह देखकर उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ और विचार भी। वह सोच रहा था—सौन्दर्य और रूप क्या इतना कृत्रिम, क्षणिक और नश्वर है? यह एक क्षणमें ही कितना परिवर्तित हो जाता है। इसी रूप और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मानव अपना आत्मसमर्पण कर देता है, और इसी रूपके जालमें पड़कर सद्विवेक और सुबुद्धिको खो बैठता है। इस क्षणिक सुन्दरता पर मुग्ध होनेवाले मानवको क्या कहा जाय। विचारमें वह इतना व्यस्त हो गया था कि सम्राट्के द्वारा दिए गए स्थान पर बैठना भी वह भूल गया। जब वह विचार निद्रासे जागा तब अपने स्थान पर बैठ गया।

अपरिचितके चेहरे पर उठनेवाली तरंगोंको सम्राट्ने देखा था। वे उससे बोले—महोदय! आपने इस राज्य सभामें आनेका कष्ट किसलिए किया है? और यहां आकर आप किस विचारमें व्यस्त होगए हैं, कृपया अपने आनेका स्पष्ट कारण बतलाइए।

अपरिचित अब विचार-जालसे मुक्त हो चुका था। उसने सम्राट्के प्रश्नका उत्तर दिया। वह बोला—सम्राट्! आज देवराजके मुंहसे आपके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर मैं आपके दर्शनके लिए यहां आया था। मैंने कुछ समय पहले आपको व्यायामशालामें देखा था

और अब इस राज्य सभामें देख रहा हूं। मैंने आपके सौन्दर्यको तुलनात्मक दृष्टिसे देखा है। सम्राट् मुझे सत्य कहनेके लिए क्षमा करेंगे। मैंने इन दोनों स्थानोंके सौन्दर्यमें एक विचित्र परिवर्तनके दर्शन किए हैं इसी परिवर्तनने मुझे एक चिंतामें डाल दिया है।

अपरिचितके कथन पर परिषदके सभासदोंको सन्तोष नहीं था। वे बोले—अपरिचित! आप देवता ही क्यों न हों, लेकिन आपके कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हम अपने सम्राट्को नित्य प्रति देखते हैं, हमें उनके सौन्दर्यमें कोई परिवर्तन नहीं दिखता। फिर आपने इतने थोड़ेसे समयमें उनके सौन्दर्यमें परिवर्तनके दर्शन कहांसे कर लिए?

प्रभादेवने कहा—पारिषद महोदय! आप धैर्य रखिए, आपका कथन भी किसी अंश तक सत्य है, आप नित्यप्रति सम्राट्के सौन्दर्यको देखते हैं लेकिन आप देखनेके लिए देखते हैं, आपने उस दृष्टिसे नहीं देखा है जिस दृष्टिसे मैं यहां देखने आया हूं। मेरा देखना केवल परीक्षणके लिए है, और इस परीक्षणकी कसौटी पर कस कर मैं यह स्पष्ट रूपसे कह सकता हूं कि सम्राट्में जिस सौन्दर्यके दर्शन मैंने व्यायाम-शालामें किए थे वह अब यहां नहीं है।

सभासदोंने कहा—आपके कथनपर उस समय तक विश्वास नहीं किया जा सकता जब तक आप प्रमाण द्वारा सिद्ध न कर दें। भले ही आपका कथन सत्य हो, लेकिन हम इसका प्रमाण चाहते हैं, कहिए आप इसका कोई प्रमाण दे सकेंगे?

प्रभादेव दृढ़तासे बोला—प्रमाण! हां दे सकूंगा। लेकिन यह अंतर

इतना सूक्ष्म होगा कि आप उस पर विश्वास नहीं करेंगे फिर भी मैं आपको प्रमाण दूंगा।

प्रभादेवने सम्राट्की ओर देखकर कहा–सम्राट्! मैं अपनी बातका प्रमाण सभासदोंको देना चाहता हूं इसके लिए मुझे आप आज्ञा दीजिए, सम्राट्ने आज्ञा प्रदानकी। तब प्रभादेवने प्रधानमंत्रीकी ओर लक्ष्य करते हुए कहा–प्रधानमंत्री महोदय! आप जलसे पूर्ण भरा हुआ एक कटोरा मंगवाइए। कहनेके साथ ही जलका कटोरा साम्हने आगया तब उस जलके कटोरेको दिखलाते हुए प्रभादेवने सभासदोंसे कहा–महोदय! आप जलसे भरे हुए इस कटोरेको अच्छी तरहसे देख लीजिए, देखिए यह जलसे संपूर्णतः भरा हुआ है, अब मैं इस जलके कटोरेको लिए जाता हूं। प्रधानमंत्री महोदय! आप भी मेरे साथ आइए। अब वह एकान्तमें था, वहां उसने प्रधानमंत्रीके साम्हने ही जलके कटोरेसे एक तिनके भर जल निकाल लिया, और जलके कटोरेको राज्य सभामें ज्योंका त्यों लाकर रख दिया। जलके कटोरेको लक्ष्य कर वह सभासदोंसे बोला–महोदय। आपने इस जलके भरे कटोरेको पहले देखा था, और अब आप फिर देख रहे हैं, क्या आपमेंसे कोई सभासद बतला सकेगा कि इसका जल पहलेसे अब कितना कम है?

सभासदोंने जलसे भरे कटोरेको पहले देखा था और अब भी देखा उन्हें उसमें कोई कमी मालूम नहीं हुई। वह बोले–अपरिचित महोदय! हम इस कटोरेके जलमें किसी तरहकी कमीका अनुभव नहीं करते।

प्रभादेवने कहा–महोदय! अब आपको मेरे कथनका प्रमाण मिल जायेगा। देखिये इस कटोरेमेंसे एक तिनका जल निकाला गया

है, इसके साक्षी आपके प्रधानमंत्री महोदय हैं लेकिन आपको लटकी कमीका अनुभव नहीं हुआ। जिस तरह एक तिनके लटकी कमीका आप अनुभव नहीं कर सकते, उसी तरह सम्राट्के परिवर्तित होनेवाले सौन्दर्यका भी आप अनुभव नहीं कर सकते। लेकिन मैंने उसका अनुभव किया है। आप अब मेरे कथन पर अवश्य विश्वास करेंगे।

सभासदोंके पास इस तर्कका कोई उत्तर नहीं था, प्रभादेवकी बातको उन्हें स्वीकृत करना पड़ा। विवाद समाप्त हुआ, सनत्कुमारके निर्दोष सौन्दर्यकी प्रशंसा करके प्रभादेव अपने स्थानको चला गया।

(४)

सम्राट् सनत्कुमारने इस विवादको सुना था। सौन्दर्य परिवर्तनकी बातको उनके मनने स्वीकार किया था। उनका मन केवल स्वीकार करके ही नहीं रह गया, उसने और आगे भी सोचा। उसने सोचा— सौन्दर्यकी क्षण क्षणमें होनेवाली नश्वरताको। हां वास्तवमें यह सौन्दर्य नश्वर है, एक दिन यह अवश्य नष्ट हो जायगा और जिसका यह सौन्दर्य है वह शरीर भी तो नश्वर है। उन्होंने और भी सोचा—यह शरीर नश्वर नहीं संसारके सभी पदार्थ नाशवान हैं, और संसारकी इस नश्वर लीलाको देखकर मैं उसमें मुग्ध हो रहा हूं। अब मुझे संसारके इस सौन्दर्यकी ओर न देखकर अपने अन्दरके विराट् सौन्दर्यका दर्शन करना चाहिए, वह सौन्दर्य जो अनंत है, अगाध है, जो कभी क्षीण नहीं होता, जो कभी नष्ट नहीं होता तो अब मैं उसी सौन्दर्यका दर्शन करूंगा।

संसारसे वह विरक्त हो गए। उन्होंने अपने पुत्रको राजसिंहासन

सौंपा और साधु दीक्षा ग्रहण की। अयोध्याका सौन्दर्य चक्रवर्ति सनत्कुमारके विना अब शून्य सा हो गया था।

(५)

सम्राट् सनत्कुमार, नहीं महात्मा सनत्कुमार—योगीश्वर सनत्कुमार, अब योगसाधनामें तन्मय थे। तपश्चरणमें निरत थे। उन्होंने इस जन्मके सांसारिक बंधनोंको तोड़ डाला था, लेकिन पूर्वजन्मके संस्कारोंको वह नहीं तोड़ पाए थे, वे अभी जीवित थे। पूर्वकर्म फल पाना अभी शेष था, वह प्रकटमें आया, उन्हें कोढ़ हो गया। उनका वह सुन्दर और दर्शनीय शरीर कोढ़की कठिन व्याधिसे आज ग्रसित था, सारे शरीरसे मलिन मल और रक्त निकल रहा था। तीव्र दुर्गंधिके कारण किसीको उनके निकट जानेका साहस नहीं होता था, लेकिन इसका उन्हें कोई खेद नहीं था, कोई ग्लानि नहीं थी। वे शरीरकी अपवित्रताको जानते थे, वे निर्ममत्व थे, शरीरकी बाधा उन्हें आत्मध्यानसे विलग नहीं कर सकी थी। उनकी आत्मतन्मयता पर उसका कोई प्रभाव नहीं था, वे पूर्वकी तरह स्थिर थे।

देवताओंको उनकी इस निर्ममत्वता पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने जानना चाहा, सनत्कुमारका यह निर्ममत्व बनावटी तो नहीं है, वह जो कुछ बाहरसे दिखला रहे हैं वह उनके अंदर भी है अथवा नहीं, उन्हें परीक्षणकी कसौटी पर कसना चाहा।

"हम वैद्य हैं, व्याधि कैसी ही भयानक क्यों न हो भले ही वह कोढ़ ही क्यों न हो हम उसे निश्चयसे नष्ट करनेकी शक्ति रखते

है" वह ध्वनि योगीराजके कानों पर बारबार आघात करने लगी। उन्हें इससे क्या था, वे तो आत्म-समाधि मग्न थे।

निश्चित समय पर योगीश्वरने अपना ध्यान समाप्त किया। वैद्यराज उनके सामने उपस्थित थे। उनके चरणोंमें पड़कर बोले—योगीश्वर! मानता हूं आपके ध्यानमें यह व्याधि कोई बाधा नहीं पहुंचाती होगी, लेकिन व्याधि तो व्याधि ही है, इसकी वेदना तो आपको होती ही होगी। मेरे रहते हुए आपकी यह व्याधि बनी रहे यह बड़े दुःखकी बात होगी। योगीश्वर! आप मुझे आज्ञा दीजिए। आपकी यह व्याधि कुछ क्षणोंमें ही मैं नष्ट कर दूंगा।

ऋषीश्वरने सुना—वे बड़ी शांतिसे बोले—वैद्यराज! जान पड़ता है आप बड़े दयालु हैं आपको मेरी व्याधि नष्ट करनेकी बहुत चिन्ता हो रही है। मैं समझता हूं आप वास्तवमें ऐसे वैद्य हैं जो मेरी व्याधिको नष्ट कर सकेंगे।

'आपकी कृपासे मुझमें व्याधि नष्ट करनेकी शक्ति मौजूद है' वैद्य रूपधारी देवताने कहा।

वैद्यराज! लेकिन क्या मेरी मूल व्याधिको आप पहचानते हैं! जिसकी वजहसे यह ऊपरी व्याधि जिसे देखकर आपका मन करुणासे पिघल रहा है, जीवन पा रही है उस व्याधिका भी निदान कर सकेंगे! वैद्यराज! यह व्याधि तो कुछ नहीं मुझे इसी व्याधिके नष्ट करनेकी चिन्ता है—वह महाव्याधि है 'जन्म—मरण' उसका मुख्य कारण है कर्मफल। क्या आपमें उसके नष्ट करनेकी शक्ति है!

वैद्य अब मौन था, योगी सनत्कुमारके प्रश्नका उसके पास कोई

उत्तर नहीं था। वह अब अपनेको अधिक समय तक प्रछन्न नहीं समझा, वह पराजित हो चुका था। महात्माके चरणोंमें पड़कर वह बोला—महात्मन्! क्षमा कीजिए। महावैद्यका परीक्षण करने मैं आया था वैद्य बनकर। मैं आपकी व्याधिको निर्मूल करना तो दूर उसका निदान भी नहीं जानता। इस व्याधिके विनाशक तो आप ही हैं। आपमें ही कर्मफल और जन्ममरण नष्ट करनेकी शक्ति है। मैं तो आपकी निस्पृहता देखने आया था उसे देख चुका। आपका योग साधन, आपकी आत्म तन्मयता, आपकी निर्ममत्वता आदर्श है, वास्तवमें आप निस्पृह योगी हैं। मैं तो आपका चरण सेवक हूं, आपका अपराधी हूं, क्षमाका पात्र हूं। प्रार्थना करके देव अपने स्थानको चला गया।

योगीराजने तीव्र कर्मके फलको योगकी प्रचंड उष्णतामें पका डाला, उसके रसको ध्यानाग्निसे नष्ट कर दिया। तीक्ष्ण व्याधिको वे पीगये, योगकी महान् शक्तिके साम्हने कर्मफल स्थिर नहीं रह सका वह जलकर भस्म हो गया। योगीराजने दिव्य आत्मसौन्दर्यके दर्शन किये, उसमें उन्होंने अपनेको आत्मविभोर करा दिया, उनका मानस पटल आत्म-सौन्दर्यकी उस अद्भुत प्रभासे जगमगा उठा था जो अविनश्वर थी, स्थायी थी और अमर थी।

[८]

महात्मा संजयंत ।

(सुदृढ़ तपस्वी)

(१)

गंधमालिनी देशकी प्रधान राजधानी वीतशोका थी। इसके अधीश्वर थे महाराजा वैजयन्त। उनका वैभव स्वर्गीय देवताओंकी तरह अतुलनीय था। वे अपने वैजयन्त नामको चरितार्थ करते थे। साहस और पराक्रममें भी वे एक ही थे। लक्ष्मीकी तरह महाभाग्या महारानी भव्यश्री उनकी प्रधान पटरानी थी।

वैजयन्त न्याय और नीतिसे अपनी प्रजाका संरक्षण करते थे। वे उदारमना थे। विद्वानोंका योग्य सम्मान करके, सुहृद् बंधुओंको निःस्वार्थ प्रेमसे और आश्रितोंको द्रव्य देकर संतुष्ट रखते थे।

अत्याचारियों और अन्यायके लिए उनके हाथमें कठोर दंड था

इसीलिए उनके राज्यमें व्यसनी और दुराचारी पुरुषोंका अस्तित्व नहीं था ।

उनके दो पुत्र थे—एक संजयन्त दूसरे जयंत । राज्य प्रांगणकी शोभा बढ़ाते हुए वे दोनों बालक दर्शकोंका मन मुग्ध करते थे। दोनों ही प्रतापशाली सूर्य और चन्द्रके समान प्रकाशवान थे। दोनों कुमारोंने बड़े होनेपर न्याय और साहित्यका अच्छा अध्ययन किया था। सिद्धांत और दर्शनशास्त्रके वे मर्मज्ञ थे, वे अब यौवनसम्पन्न थे; शरीर संगठनके साथ२ सौन्दर्य और कलाका पूर्ण विकास उनमें हुआ था।

उस समयका शिक्षण आज जैसा दोषपूर्ण नहीं था। आजका शिक्षण मानसिक विकास और चारित्र निर्माणके लिए न होकर केवल उदर पूर्ति और विलासका साधन बना हुआ है । आत्मिक विज्ञान और उसके विकासकी ओर उसका थोड़ा भी लक्ष्य नहीं है। उसका पूर्ण ध्येय भौतिक विज्ञान और उसके विकासकी ओर ही है। युवकोंके मनमें गुप्त रूपसे विकसित होनेवाली वासना और कामलिप्साको वह पूर्ण सहायता देता है। स्वदेश, जातिसम्मान, स्वाधीनता और आत्मगौरवकी भावनाओंको आजका शिक्षण छूता भी नहीं है, उसने युवकोंके सामने एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया है जो उनके लिए भयंकर विनाशकारी है । विदेशी सभ्यता और भावनाओंको यह उत्तेजित करता है और पूर्व गौरवके संस्कारोंकी जड़को नष्ट करता है। इस भयानक शिक्षणके मोहमें भारतीय युवकोंका जीवन और देशकी संपत्ति स्वाहा हो रही है, और उसके बदले उन्हें गुलामी, मानसिक पाप और भोगविलासका उपहार मिल रहा है । इस शिक्षणके साथ ही युवकोंके मानसिक पतन

और चरित हीनताके अनेक साधन आज एकत्रित हो रहे हैं, सिनेमा और नाटक फैशन और शृङ्गारप्रियता कोढ़में खाजका काम कर रही है । आज युवकोंमें चरित संगठन, समाज निर्माण, आत्मनिर्णय, सद्‌ज्ञान और विवेककी भावना ही नहीं रह गई है । अल्पज्ञान और थोड़ेसे वैभवको पाकर ही वे वासनाकी चरमसीमाको उल्लंघन कर जाते हैं । आमोद प्रमोद, हास्यविलास, कामोद्दीपन और इन्द्रिय तृप्तिके साधनोंमें ही वे अपने यौवनके गर्म खूनको खो देते हैं । समाज और राष्ट्रको ये अमूल्य निधियां राष्ट्रके लिए उपयोगी न बनकर उसके लिए घातक सिद्ध होती हैं ।

प्राचीन शिक्षाका उद्देश्य चरित निर्माण आत्मतृप्ति और आदर्श स्थापित करनेका था । वह केवल उदरपूर्तिके लिए नहीं था । यही कारण था कि उस समयके शिक्षित अपने कर्तव्यको अच्छी तरह पहचानते थे ।

युवक संजयंत और जयंतका शिक्षण इसी दिशामें था, उनका मस्तिष्क पवित्र ज्ञानसे परिपूर्ण था । विलास और इन्द्रिय वासनाकी भावनाएं ही उनमें नहीं जगी थीं । उनका जीवन देशसेवा, परोपकार और राज प्रजाके लिए धरोहर रूप था उनका लक्ष्य एक था, धार्मिक विवेचन और लोकसेवा । वे आदर्श युवक थे ।

(२)

वर्षाकालकी सन्ध्याका समय था । मेघमंडलने अपने अंधकार-पूर्ण वातावरणमें सूर्यके संपूर्ण प्रतापको ढक लिया था । उसने अपनी घनी और काली चादरसे आसमानको आवृत्त कर लिया था । वह उसके

जलदानका समय था। मेघोंके हृदयकी उदारताका स्रोत आज अनिवार्य गतिसे फूट पड़ा। वे भीषण गतिसे भूमंडलको आर्द्र बनानेका प्रयत्न करने लगे। अरे! यह क्या अपने प्रचुर दानकी सीमाका आज वे उल्लंघन ही कर गए! वे मूसलधार वर्षासे नदी तालाव और सागरको एक करने लगे। इस जलदानमें बड़ी गड़बड़ी हुई और मेघगण आपसमें भिड़कर टकराने लगे, उनकी आपसकी टक्करसे एक भयंकर शब्द उत्पन्न होकर मनुष्योंके कानोंके परदे फाड़नेका प्रयत्न करने लगा। बालक और कायर-हृदय महिलाओंके मन भयसे भर गए। घनघटामें छिपी हुई सौदामिनी अब अपने वेगको न सम्हाल सकी, वह अपनी चंचल गतिसे नृत्य करती हुई मानवोंके नेत्रोंमें चकाचौंध पैदा करने लगी, आह! यह नृत्य करती हुई अपने चंचल वेगको नहीं संभाल सकी और मेघमंडलसे च्युत होकर प्रचण्ड नाद करती हुई महाराजाकी अश्वशालामें गिरकर पृथ्वीमें विलीन हो गई।

जलवर्षा समाप्त होनेपर अश्वपालने देखा-बिजलीने गिरकर महाराजके विशाल हाथीके शरीरको नष्ट कर दिया है। हाथीके इस अकाल निधनने उसे बहुत ही दुःख दिया-उसने महाराजको जाकर इसकी सूचना दी। वह बोला-महाराज! आज आपकी अश्वशालापर भीषण वज्राघात हुआ है और उसने आपके प्रधान हाथीके पर्वत जैसे शरीरको टुकड़े २ कर डाला है। प्रधान हाथीके अभावसे अश्वशाला शून्यसी मालूम होरही है। मृत्युने एक क्षणमें ही उसे अपना ग्रास बना लिया। अहा! प्रिय गजेन्द्रकी मृत्यु मुझे दुखित बना रही है।

अश्वपालकके मुंहसे अपने प्रिय गजेन्द्रकी मृत्यु सुनकर राजाका

हृदय बहुत ही दुखित हुआ। वह उनका अत्यन्त प्रिय गजेन्द्र था। अनेक भयंकर युद्धोंमें उसने उनकी प्राण रक्षा की थी। वे सोचने लगे—ओह! भयंकर कालने मेरे प्रिय गजेन्द्रको इतने शीघ्र नष्ट कर डाला क्या! यह कल्पना भी की जा सकती कि एक क्षणमें ही उसका उन्नत शरीर इस तरह नष्ट हो जायगा। ओह! कालका शस्त्र कितना अमोघ है, यह पता नहीं यह कब चल जाय और कब प्राणीके प्राणोंको छिन्न भिन्न करदे। अरे! मैं भी तो इसी कालके शस्त्रके नीचे बेधड़क होकर क्रीड़ा कर रहा हूं। तब क्या मुझे भी इसकी भयंकर धारका निशाना बनना पड़ेगा? अवश्य ही। तब मुझे इससे संरक्षित रहने और अमर बननेका प्रयत्न करना चाहिए। इसका एकमात्र प्रयत्न है आत्म-साधन और उसके लिए मुझे इस साम्राज्य और वैभवका त्याग करना होगा। हां, तब यही होगा। अब मुझे एक क्षणका विलंब नहीं करना चाहिए। शत्रुको पहचान लेनेपर उससे जितनी शीघ्र हो सके अपनी रक्षाका प्रयत्न करना उचित है। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र संजयंतको बुलाया—और उसे राज्यसिंहासन सौंपकर तपश्चरण करनेकी इच्छा प्रकटकी। संजयन्तने अपने सिरपर राज्य भार लेना पसंद नहीं किया वे बोले—पिताजी! जिसे आप राज्य समझकर छोड़ जारहे हैं, मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता। मैं तो आपके ही साथ महा कल्याणके पथ पर चलूंगा। आप जिस बंधनसे मुक्त हो रहे हैं, मैं अपनेको उस बंधनमें नहीं फंसाना चाहता, मैं अपने आत्मोन्नतिके पथको अंधकारमय बनानेको प्रस्तुत नहीं, मैं तो आपका ही आदर्श ग्रहण करूंगा। आप इस राज्य मुकुटसे जयंतका ही मस्तक सुशोभित कीजिए।

८

जयंत राज्यका स्वामी बना। संजयंत अपने पिता वैजयंतके साथ दीक्षा लेकर तपस्वी बने।

(३)

महात्मा संजयंत भयंकर वनकी गुफामें तीव्र तपनिमग्न थे–महीनोंके अनाहारक व्रतसे मन और शरीरको उन्होंने अपने आधीन बना लिया था, वासना और मनोविकारों पर उन्होंने विजय प्राप्त की थी। भयंकर हिंसक जंतुओंके संसर्गमें वे निर्भय निवास करते थे। कठिनसे कठिन शारीरिक यातनाएं, घोरसे घोरतर पशु और मानव कृत उपसर्गोंके साम्हने वे निश्चल और अकंप थे। ग्रीष्मऋतुकी प्रचंड सूर्य-रश्मियें, वर्षाकालकी प्रबल जल वृष्टि, और शीतकालके असहनीय हवाके झकोरेके साम्हने वे अपने आत्मचिंतन और ध्यानमें मग्न थे। अध्यात्म रसास्वादनमें तन्मय थे। सभी कठिनाइयोंके साम्हने उन्होंने अपनेको अजेय बना लिया था।

शीतकालका समय था। महात्मा संजयंत पद्मासनसे योग साधनमें मग्न थे, वह अभूतपूर्व अध्यात्म पियूषका पान कर रहे थे।

विद्युद्दंष्ट्र अनेक विद्याओंका स्वामी क्रोध प्रकृतिका उद्दंड युवक था, वह अपने सुन्दर वायुयान द्वारा आकाश गमन कर रहा था, महात्मा संजयंतके ऊपर उसका विमान आया। तपश्चरणके महान प्रभावके कारण उसका वायुयान वहीं रुक गया। विद्युद्दंष्ट्रने उसे आगे चलानेका बहुत प्रयत्न किया, अपनी संपूर्ण विद्याशक्ति लगा दी, लेकिन यह एक इंच भी आगे न बढ़ सका, लाचार होकर उसने अपने विमानको नीचे उतारा। नीचे उतारकर उसने देखा-उसके विमानके नीचे एक महात्मा

तपश्चरण कर रहे थे, वह विमान न चलनेका कारण समझ गया। "इस दुष्ट तपस्वीने ही मेरे विमानको आकर्षित कर दिया है" उसने सोचा, मैं आज इसकी तपश्चरणकी शक्तिको देखूंगा। उसे तपस्वी पर बड़ा क्रोध आया, और वह अपने विद्याबलसे उन्हें तपश्चरणसे चलित करनेका निंद्य प्रयोग करने लगा। उसने भयंकर आंधी और जलवृष्टि द्वारा योगीश्वरको ध्यानसे चलित करना चाहा, लेकिन जब उसे इसमें तनिक भी सफलता नहीं मिली तब उसने पैशाची विद्याके बलसे भयानक मुंहवाले भूतप्रेतोंका नचाना प्रारम्भ किया। फुफकार मारते हुए जहरीले सर्पोंके झुंड उनपर छोड़े। भयंकर गर्जना करनेवाले सिंहोंको छोड़कर उसने उनके मनको भयभीत बनानेका प्रयत्न किया, लेकिन उसके सभी प्रयत्न निष्फल हुए। योगिराज संजयन्त सुमेरुसे भी अधिक अचल और स्थिर बने रहे। भयानक उपद्रवकी आंधी उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकी।

दुर्जनकी प्रकृति दुष्ट हुआ करती है। जब वह अपनी दुष्ट प्रकृतिसे किसी सज्जनके मनको कष्ट नहीं दे पाता तब वह अत्यंत निराश और दुखित होता है। विद्युद्दंष्ट्रका भी यही हाल था। उसकी दुष्टता तपस्वीके सामने परास्त होचुकी थी। अब उसका क्रोध आसमानपर था। पशु प्रवृत्तिने उसके मनपर अधिकार कर लिया था, कुछ समयको वह विचारशून्य होगया। फिर उसने अपनी पाशविक वृत्तियोंको जगाना प्रारंभ किया। अत्यंत स्थिर, शान्त और गंभीर बने हुए महात्मा संजयंतको उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर कंधेपर उठाया और भीषण वेगसे बहनेवाली सिंहवती नदीके संगम पर उनको छोड़ दिया।

अब वह अपना पूरा बदला ले चुका था। उसका मन प्रसन्न था, प्रसन्न मनसे वह अपने वायुयान पर बैठकर चल दिया।

(४)

संध्याका समय था, सायंकालीन ठंडी वायुसे मिलकर शीतने भयानक रूप धारण किया था। बर्फकी तरह जमे हुए जलमें पड़े हुए महात्मा संजयंतका शरीर गलने लगा। हृदयको विचलित कर देनेवाली प्राणनाशक वेदनाका उनके शरीर पर आक्रमण हुआ। उस समयकी दारुण व्यथाका अनुभव करते ही हृदय करुणासे आर्द्र हो उठता है। ओह ! कहां एक ओर गर्म दुशालोंसे अंगुलियोंको बाहर न निकालनेवाली सुकुमारता और कहां उन महात्माके बर्फ सरीखे शीतल जलमें व्याप्त होनेवाली सहनशीलता।

धन्य थे वे महात्मा संजयंत, असहनीय वेदनासे ग्रस्त होनेपर भी उनका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अविचलित आत्मध्यानके वज्रपटलको भेदकर कष्ट वायु उनका स्पर्श नहीं कर सका।

पूर्वजन्मके अशुभ कर्म जिस समय अपना फल देनेके लिए कटिबद्ध होते हैं, उस समय वह अपना बहुत ही भयानक रूप बना लेते हैं, वह बहुत ही निर्भय और कठोर होजाते हैं। उसके लिए किसी भी व्यक्तिके प्रति चाहे वह महात्मा योगी सन्यासी कोई भी हो तनिक मोह ममता नहीं रहती। कर्मोंका वज्रदंड प्रत्येकके सिरपर चलता है, उसे रोकनेकी शक्ति किसी देव, दानव अथवा मानवमें नहीं है। यदि कोई उपाय है तो वह है समताभाव, आत्मचिंतन और कष्टको भूल जानेकी भावना।

मानवके उत्थानका समय तब आता है, जब वह कष्टोंकी कसौटी पर खूब कस लिया जाता है। पूर्ण आत्मशुद्धिके समय कर्म अपनी संपूर्ण शक्तियोंको समेट कर आत्मशक्ति पर आघात करता है। वह परीक्षणका समय बड़े धैर्य और साहसका होता है, इस पार या उस पारकी समस्या साम्हने खड़ी होती है। थोड़ीसी आत्माकी कमजोरी वर्षोंकी तपश्चर्याको मिट्टीमें मिला देती है, और एक क्षणका धैर्य उसे सफल बना देता है। जब स्वर्ण शुद्धिका समय आता है तब अग्निकी भयंकरता चरमसीमाको पहुंच जाती है, कठोर आंचोंको सहते हुए तीक्ष्ण ज्वालामें दग्ध होना पड़ता है, तब कभी अन्तमें शुद्ध होता है।

महात्मा संजयंत पर पूर्व जन्मके कर्मोंने अपना कठोर शासन चलानेमें थोड़ीसी भी कमी नहीं की थी, लेकिन अभी उनके हाथका कठोर दंड नीचे नहीं झुका था। महात्माके आत्म-कल्याणमें अभी भी कुछ कमी रह गई थी उसे पूरा होना था, कर्म फलने अब उन्हें अंतिम दंड देनेके लिए अपना कठोर हाथ ऊपर उठाया था।

सिंहवती नदीके किनारे बर्बर जातिके भील लोग रहते थे, उनका भूतप्रेतों पर अंध विश्वास था, वे बड़े कठोर और निर्दय-हृदय थे। आज संध्याको कुछ लोग नदीके किनारे आए थे शीतसे संकुचित महात्मा संजयंतके नग्न शरीरको उन्होंने देखा, उसे देखते ही उनकी कंपकंपी बंध गई। प्रेतका भयानक भय उनके हृदयमें प्रवेश कर गया। वे वहांसे भागना चाहते थे किन्तु कठोर हृदयवाले निर्दय भीलोंने उनके हृदयके साहसको बढ़ाया। उन्होंने कहा-भाइयों! भागो नहीं, आज हमें इस पिशाचको यहांसे हटाना ही होगा। हाथमें पत्थरोंको लेकर वे सब

आगे बढ़े। उन्होंने महात्मा संजयंतको पत्थरोंसे मारना प्रारंभ किया। पत्थरोंकी वर्षा उस समय तक नहीं रुकी जब तक उन्होंने महात्माको जीवित समझा, अंतमें मृतक समझ कर वे उन्हें वहीं छोडकर अपने नगरको भाग गए।

महात्मा संजयंतने इस उपसर्गको बड़ी शांतिसे सहन किया। कर्मफल समाप्त होचुका था, स्वर्णको अंतिम आंच लग चुकी थी, अब उनका आत्म शुद्ध होचुका था, उन्हें विश्वदर्शक केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

उनके संपूर्ण कर्म एक–साथ नष्ट होचुके थे, शरीरसे आयुका संबंध नष्ट होचुका था इसलिये उन्होंने उसी समय निर्वाण प्राप्त किया।

मानव और देवताओंने मिलकर उनका निर्वाण उत्सव मनाया और उनके अद्भुत धैर्यका गुणगान किया।

[९]

महात्मा रामचन्द्र।

(भारत-विख्यात महापुरुष)

(१)

मंडपका मुख्य द्वार बड़ी सुन्दरतासे सजाया गया था, अनेक देशोंसे निमंत्रित नरेश यथास्थान बैठे थे। निश्चित समय पर एक सुन्दरी बालाने सभामण्डपमें प्रवेश किया, सभी राजाओंकी दृष्टि उसके मुखमंडल पर थी। सुन्दरी वास्तवमें सुन्दरी थी, उसके प्रत्येक अङ्गमें मादकता छलक रही थी, हाथमें सुगंधित पुष्पोंकी माला थी, साफ वस्त्रोंसे अपने अंगोंको ढके हुए एक रमणी उसका मार्ग प्रदर्शन कर रही थी।

अनेक नरेशोंके भाग्यका फैसला करती हुई वह एक स्थान पर रुकी। दर्शकोंके नेत्र भी उसी स्थान पर रुक गए। व्यक्तिका हृदय

हर्षसे फूल उठा, कपोलों पर लाली दौड़ गई, विशाल वक्षस्थल तन गया। बालाने उसके प्रभावशाली मुखमंडल पर एकबार अपनी विशाल दृष्टि आरोपित कर दी, फिर लज्जासे संकुचित हुए अंगोंको समेटकर उसने अपनी बाहुओंको कुछ ऊपर उठाया, और हृदयकी धड़कनको रोकते हुए अपने सुकुमार करकी पुष्पमाला व्यक्तिके गलेमें डाल दी।

कार्य समाप्त होचुका था, अयोध्या नरेश दशरथ विजयी हुए। स्वयंवर मंडपमें कुमारी केकईने उनके गलेमें वरमाला डालदी थी।

वरमाला डालकर अपने संकुचित और लज्जाशील शरीरको लेकर वह झुकी हुई कल्पलताकी तरह कुछ क्षणको वहां खड़ी रही, फिर मंदगतिसे चलकर वह विवाह वेदिकाके समीप बैठ गई।

केकईका चुनाव योग्य था। उसने श्रेष्ठ पुरुषको अपना पति स्वीकार किया था, सुहृद और कुटुम्बी जन इस संबंधसे प्रसन्न थे, लेकिन स्वयंवर मंडपमें पराजित नरेशोंको यह सब असह्य हो उठा। वे अपनेको अपमानित समझने लगे और अपने अपमानका बदला युद्ध द्वारा चुकानेको तैयार हो गए।

राजा दशरथ इसके लिए तैयार थे, उन्होंने अपने रथका संचालन किया, केकईको उसमें बिठलाया और राजाओंसे युद्धके लिए अपने रथको आगे बढ़ा दिया।

नरेशोंने एक साथ मिलकर उनके ऊपर धावा बोल दिया। दशरथ युद्धक्रिया-कुशल थे, लेकिन उन्हें युद्ध और रथ संचालन दोनों कार्य एक साथ करना पड़ रहे थे, एक क्षणके लिए उन्हें इस कार्यमें कुछ कठिनाई हुई और उनका रथ आगे बढ़नेसे रुक गया। शत्रुका

आक्रमण जारी था, उनका हृदय इस आक्रमणसे हताश नहीं हुआ था, वे आगे बढ़नेका मार्ग खोज रहे थे। इसी समय उन्होंने देखा, केकईने उनके हाथकी सुदृढ़ लगामको अपने हाथोंमें ले लिया था, अब युद्ध संचालनके लिए वे स्वतंत्र थे। वीर रमणीकी सहायतासे उनका साहस दूना बढ़ गया, उन्होंने प्रबल पराक्रमके साथ शत्रुओंपर आक्रमण किया। शत्रु सेना पीछे हटने लगी। राजा दशरथ विजयी बने, विजयने उनके मस्तकको ऊंचा उठा दिया।

विजयके साथ वीर बाला केकईको उन्होंने प्राप्त किया, उनका उन्मुक्त हृदय केकईकी वीरता पर मुग्ध था, आजकी विजयका संपूर्ण श्रेय वे केकईको देना चाहते थे, बोले—वीरनारी! तेरी रथ-चातुर्यताने मेरे हृदयको जीत लिया है। अपने जीवनमें आज प्रथम बार ही मैं इतना प्रसन्न हूं, इस प्रसन्नताका कुछ भाग मैं तुझे भी देना चाहता हूं, आर्ये! आजकी इस विजय स्मृतिको चिर स्मरणीय बनानेके लिए मैं इच्छित वरदान देना चाहता हूं, तेरे लिये जो भी इच्छित हो उसे मांग, मैं तेरी प्रत्येक मांगको पूर्ण करूंगा।

"मैं आपकी हूं, मेरा कर्तव्य आपके प्रत्येक कार्यमें सहयोग देना है, मैंने आज अपना कर्तव्य ही पूरा किया है। यह प्रसन्नताकी बात है, मैं अपने कर्तव्यमें सफल हुई।"

"आप मुझ पर प्रसन्न हैं, मुझे इच्छित वरदान देना चाहते हैं, नारीके लिये इससे अधिक सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है। मैं इस सौभाग्यको स्वीकार करती हूं, आप मेरे वरदानको अपने पास सुरक्षित रखिए इच्छा होने पर मैं उन्हें मांग लूंगी", केकईने हर्षित

हृदयसे यह कहा। विनीतामें आज आनंदका सिंधु उमड़ पड़ा। प्रत्येक नागरिकका चेहरा हर्षसे झलक उठा था।

\+ \+ \+

राजा दशरथका राजमहल हर्षगानसे गूंज उठा, उनके यहां आज राम जन्म हुआ है।

राम जन्मका उत्सव अवर्णनीय था, कौशल्याका हृदय इस उत्सवसे आनंद मग्न हो गया। यह उत्सव उस समय अपनी सीमाको उलंघन कर गया, जब जनताने रानी सुमित्राके भी पुत्र होनेका समाचार सुना।

दोनों बालक राम लक्ष्मण अपनी बालक्रीड़ासे दशरथके प्रांगणको सुशोभित करने लगे।

कुछ समय जानेके बाद रानी केकईने पुत्र जन्म दिया, पुत्रका नाम भरत रक्खा गया। इस तरह रानी सुमित्राके द्वितीय पुत्र हुआ, जिसका नाम शत्रुघ्न पड़ा।

कला, बल, पुरुषार्थ विद्यावृद्धिके साथ २ चारों कुमार वृद्धि पाने लगे।

गुरु वशिष्ठने चारों कुमारको शस्त्र और शास्त्र विद्यामें अत्यंत कुशल बनाया। उनके यशकी सुरभि देशके चारों कोने भरने लगी।

मिथुला नरेश जनक इस समय सुख-मग्न दिख रहे थे, रानी विदेहाने एक पुत्र और पुत्रीको साथ ही जन्म दिया था। राजमहलमें आनंदके नगाड़े बजने लगे, लेकिन संध्या समयका यह आनंद सवेरे तक स्थिर नहीं रह सकता। जो राजमहल संध्याके क्षीण प्रकाशमें दीपकोंसे जगमग उठा था, नृत्य और गानसे उन्मादित बन गया था

उसीमें आज सवेरे शोक पूर्ण वातावरण व्याप्त था। राजमहलके सभी कर्मचारी चारों ओर किसी खोजमें व्यग्र थे, आखिर यह हुआ क्या ? बालक कहां गया, उसे कौन ले गया। प्रत्येक व्यक्तिके मुंहपर यही आवाज थी।

बात यह थी रात्रिको रानी विदेहाने बालक और बालिका दोनोंको अपने पास सुलाया था। आज उन्हें रात्रिमें गाढ़ निद्रा आ गई थी, निद्रा भंग होनेपर जब उन्होंने देखा बालिका सो रही थी लेकिन बालक पासमें नहीं था। उनके दुःखका कोई ठिकाना नहीं था, चारों ओर बालककी खोज की गई लेकिन कहीं पता नहीं लगा।

राजा जनक और रानी विदेहाको पुत्र वियोगका गहरा घाव लगा लेकिन बालिकाकी सरल मुख मुद्राने उनके घावको बहुत कुछ भर दिया, उसके सौन्दर्य और बाल लीलाओंमें अपनेको व्यस्त कर उन्होंने संतोष कर लिया।

लेकिन बालकका हुआ क्या ? यह एक रहस्य था, जो अबतक अप्रकट था।

अर्द्ध रात्रिको दैत्यराज सुकेतु अपने वायुयान पर उड़ता जा रहा था—उसने जनकके राजमहल पर आकर इसे उत्सव मग्न देखा। उसने चाहा यह सब क्या है ? उसे अपने ज्ञानसे मालूम हुआ कि राजा जनकके पुत्र जन्म हुआ है इससे आगे उसने यह भी जाना, मेरा पूर्वजन्मका यह वही शत्रु है जिसने मेरी पत्नीका हरण कर मुझे नारकीय वेदना दी थी। उसका पूर्वजन्मके क्रोधका तूफान उमड़ उठा—अपनी मायाके

छलसे रानी विदेहाको बेहोश कर वह गुप्तरूपसे राजमहलमें प्रवेश कर बालकको ले आया। बालकको लाकर वह उसे अपने क्रोधका निशाना बनाना चाहता था, उसका विचार था कि इसे पहाड़से नीचे डाल दूं लेकिन बालकके भोले मुंहको देखकर उससे यह न होसका। उसने उसे कानोंमें कुण्डल पहनाकर एक चट्टानके नीचे सुरक्षित रख दिया।

राजा चन्द्रगति अपनी पत्नीके साथ वायुयान द्वारा प्रातः भ्रमणको निकले थे उनका विमान चट्टानके ऊपरसे मंदगतिसे चल रहा था—उन्होंने बालकके रोनेकी आवाज सुनी। निर्जनस्थानमें बालकके रोनेकी एकांत आवाज सुनकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ—उन्होंने अपने वायुयानको नीचे उतारकर देखा—चट्टानके नीचे एक सुन्दर बलवान बालक पड़ा रो रहा था। उन्होंने साश्चर्य उसे उठाया और अपनी रानीको दिया। रानी निःसंतान थी। उसने हर्षके साथ उसे लिया और प्यारसे उसका मुंह चूम लिया। बालकका मुंह कुण्डलोंकी प्रभासे चमक रहा था, उसका नाम भामंडल रक्खा गया। रानीकी सूनी गोद भर गई—बालक बड़े यत्नसे बढ़ने लगा।

(४)

बालिका सीता अब यौवनपूर्ण थी, इसी समय एक घटना हुई—

मयूरमाला देशका राजा आतंगल बहुत ही उद्दंड और अभिमानी था; उसकी महत्वाकांक्षाओंने उसे बहुत ऊपर चढ़ा दिया था। एक दिन अचानक ही उसने मिथुलापर आक्रमण कर दिया। राजा जनक यह आक्रमण रोकनेमें असमर्थ थे उन्होंने अपने मित्र राजा दशरथसे इस युद्धके लिए सहायता मांगी। राजा दशरथ स्वयं इस युद्धमें आना

चाहते थे लेकिन वीर बालक राम और लक्ष्मणने उन्हें युद्धमें जानेसे रोका—वे स्वयं दोनों भाई इस युद्धमें अपनी वीरता दिखलाना चाहते थे, राजा दशरथको उनके वीरत्व पर विश्वास था, उन्होंने सेनाके साथ दोनों पुत्रोंको राजा जनककी सहायताके लिए भेज दिया।

राजकुमार रामने अपनी वीरतासे शत्रुके छक्के छुड़ा दिए, उसकी फौज रामकी सेनाकी विकट मारसे भागने लगी। रामका युद्धकौशल उस समय देखने ही योग्य था—तलवार घुमाते हुए वे चारों ओरसे शत्रुकी सेनाका संहार कर रहे थे। आतंगल उनसे युद्ध करनेके लिए साम्हने आया लेकिन वीर रामने उसे अपने शस्त्रोंके आक्रमणसे निःशस्त्र करके जीता ही पकड़ लिया।

रामकी इस वीरतापर जनक हृदयसे मुग्ध थे। उन्होंने अपनी कन्या सीताका पाणिग्रहण वीर युवक रामसे ही करनेका दृढ़ संकल्प किया और उन्हें आदर सहित उनकी राजधानीको वापिस भेज दिया।

(५)

विनोद प्रिय नारदने सीताके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनी थी, उसे देखनेके लिए वे जनकके राजमहलमें आए थे। उस समय सीता दर्पणमें अपना सुन्दर मुंह देख रही थी, पीछेसे ही उसने दर्पणमें जटाओंसे भरे हुए नारदके भयानक मुंहको देखा। "ओह! यहां कौन राक्षस है!" अचानक ही उसके मुंहसे एक आवाज निकली। नारदने इसे सुना, उनके क्रोधी हृदयके उमड़नेको इसके अतिरिक्त और चाहिए ही क्या था! क्रोधमें पागल होकर वे उसी समय राजमहलसे निकल आए।

वे सीतासे अपने अपमानका बदला लेनेकी बात सोचने लगे। उनकी बुद्धिने उनका साथ दिया। उन्होंने कुमारी सीताका अपनी कलाके बलसे एक सुन्दर चित्र बनाया। चित्र देखकर वे स्वयं बड़े प्रसन्न थे, उनके हाथ अपनी दुर्भावना पूर्तिका एक साधन हाथ लग गया था। अब वे उसे लेकर आगे बढ़ना चाहते थे। इसी समय उन्होंने बनमें विनोदके लिए आते हुए भामण्डलको देखा—कुमार भामंडल तरुण थे, बलवान् थे, सुन्दर थे, अपने कार्यके लिए नारदजीने उन्हें उपयुक्त समझा। जब वे एक वाटिकाके निकट क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय उन्होंने सीताके उस चित्रको गुप्त रूपसे एक वृक्षके नीचे छोड़ दिया और वे वहांसे अन्तर्ध्यान होगए।

भामण्डलने घूमते हुए उस सीताके चित्रको देखा—उस चित्रपर वे हृदयसे मुग्ध होगए। भ्रमणमें अब उनका मन बिलकुल भी नहीं लग रहा था, बेचैनी हृदयको विकल कर रही थी। हृदयमें एक दर्दको लेकर वे अपने राजमहलमें आकर शैय्या पर लेट गए। मित्रोंने किसी तरह उनके इस दर्दको पहिचाना, महाराजा चन्द्रगतिसे उन्होंने यह सब संवाद कहा, बहुत खोजके बाद राजा चन्द्रगतिको चित्रपटकी कन्याका पता लगा। उन्होंने अपने कुशल दूत द्वारा राजा जनकको अपनी राजधानीमें बुलाया और अपने पुत्र भामंडलके लिए उनसे जानकीकी याचना की।

कुमार रामको अपनी कन्या देनेका राजा जनक दृढ़ संकल्प कर चुके थे। जानकी उनके रूप और गुणों पर हृदयसे मुग्ध है, यह भी वे जान चुके थे। उन्होंने राजा चन्द्रके सामने इस संबंधमें अपनी असमर्थता प्रकट की।

राजा चन्द्रगति किसी तरह भी जानकीको लेना चाहते थे, लेकिन जब उन्होंने अपनी इच्छा पूर्ण होते नहीं देखी तो वे रुष्ट होकर बोले—राजा जनक! आपको अपनी कन्याका संबंध वीर पुरुषसे करना चाहिए, भामंडल वीरतामें अद्वितीय हैं। वे ही कुमारी सीताके लिए योग्य पात्र हैं।

वीर रामके सामने जनक किसीकी वीरताको स्वीकार नहीं करना चाहते थे, तब अन्तमें चन्द्रगतिने एक निर्णय दिया, वे बोले—राजा जनक! मुझे देवताओंने दो धनुष्य दिए हैं वे धनुष्य बहुत भयंकर हैं, यदि आपके राम वास्तवमें वीर हैं तो वे धनुष्यको चढ़ायें, धनुष चढ़ाकर ही वे सीताके योग्य हो सकते हैं। यदि वे धनुष चढ़ा सकें तो आप बिना किसी हिचकिचाहटके सीताका संबंध उनसे कर दीजिये, नहीं तो फिर आपको सीताका विवाह भामंडलसे करना होगा।

रामके बल पर जनकको विश्वास था, उन्होंने यह निर्णय मान लिया, दोनों धनुष्य राजा जनकके यहां परीक्षाके लिए लाकर रख दिए गए।

जानकी स्वयंवरकी धूम थी, अनेक देशोंके राजकुमार मिथुलापुर आए थे, राजकुमारोंके साहसका परीक्षण होने लगा।

जानकीके रूपसे आकर्षित राजकुमार धनुष चढ़ानेके लिए उठते थे, लेकिन उसकी भयंकरताको देखकर हृदय थामकर अपने स्थानपर बैठ जाते थे। इसतरह प्रायः सभी राजकुमार अपना प्रदर्शन दिखला चुके थे, लेकिन धनुष उठाकर उसे चढ़ानेका साहस किसीमें नहीं हुआ।

यह सब देख राजकुमार लक्ष्मणका हृदय वीर दर्पसे उबल उठा उन्हें राजकुमारोंकी इस कायरता पर बड़ा क्रोध आया, वे खड़े होगए और अपने अग्रजसे उन्होंने धनुष चढ़ानेकी आज्ञा मांगी।

श्री रामजी अबतक अपने हृदयके वीरत्वको छिपाए बैठे थे, वे स्वयं उठे। उन्होंने वज्रावर्त धनुषको उठाया और लक्ष्मणजीको भी धनुष उठाकर चढ़ानेकी आज्ञा दी।

रामने धनुषको चढ़ाया उसके चढ़ाते ही एक भयंकर शब्द हुआ। धनुषमेंसे अग्निकी चिनगारियां निकलने लगीं। उन्होंने उस देवो-पुनीत धनुषको इतना झुकाया कि वह झुककर टुकड़े २ होगया। लक्ष्मणजीके हाथसे भी धनुषका यही हाल हुआ।

रामके वीरत्वका परीक्षण होचुका था। हर्षित हृदय जानकीने अपने हृदयधन श्री रामके गलेमें वरमाला डाली। सुन्दरी सीताको पाकर राम प्रसन्न थे। उन्होंने उसे अपने साथ लेकर अयोध्यामें प्रवेश किया।

(७)

एक दिन जब संध्याका समय था, दशरथजी अपनी अट्टालिका परसे जगन्मोहनी प्रकृतिके सौभाग्यका दर्शन कर रहे थे, आकाशमें एक स्थल पर उत्तुंग हाथीके श्वेत शरीर पर उनकी दृष्टि लगी हुई थी। अचानक ही उसके सभी अङ्ग गलने लगे, उनके देखते २ गजराजका संपूर्ण रूप विलय हो गया। इस दृश्यने उन्हें वैराग्यके क्षेत्रमें ला पटका। उनका मन अब संसारमें एक क्षणको भी रहनेको तैयार नहीं था, श्रीरामको अवधका राज्य देकर वे मुक्तिके पथ पर अग्रसर होना चाहते थे।

सीताजीकी अग्नि-परीक्षा ।

(अग्निकुण्डका कमलसहित सरोवर हो जाना)

श्री रामको राज्य तिलक देनेकी तैयारियां होने लगीं, जनता इस महोत्सवमें बड़ी दिलचस्पीसे भाग ले रही थी, आज राजतिलक होनेवाला था इसी समय एक अंतराय उपस्थित हुआ।

रानी केकईका पुत्र भरत बालकपनसे ही विरक्त था, अपने पिताको वैराग्यके क्षेत्रमें अग्रसर हुआ देख उसके विरक्त विचारोंको एक और अवसर मिला। वह भी राजा दशरथके साथ ही वैरागी बननेके लिए तैयार होगया। केकईने यह बात सुनी. उसका हृदय पतिके साथ ही साथ पुत्र वियोगसे कराह उठा। वह कर्तव्य-विमूढ़ होकर कुछ समयको घोर चिंतामग्न होगई। उसकी सखी मन्थरा थी, मंथरा बहुत ही चालाक और कुटिल हृदय थी, रानीकी चिंताका कारण उसे मालूम होगया था। उसने रानी केकईको एक सलाह दी। वह बोली—रानी! यह समय चिंताका नहीं प्रयत्नका है। यदि इस समयको तूने चिंतामें खो दिया तो जीवनभर तुझे अपने जीवनके लिए रोना होगा। तुझे राजाने वरदान दिए थे, उन वरदानोंके द्वारा तू अपने प्रिय पुत्र भरतके लिए राज्य मांग ले, लेकिन ध्यान रखना प्रतापी रामके रहते हुए भरत राज्य नहीं कर सकेगा, इसलिए राज्यकी सुरक्षाके लिए रामके बनवासका भी दूसरा वर मांग लेना।

केकई सरलहृदया नारी थी। उसका इतना साहस नहीं होता था लेकिन मन्थराने साहस देकर उसे इस कार्यके लिए तैयार कर लिया।

दशरथ वरदान देनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। केकईने वरदान मांगा और उसे मिला। श्री रामके मस्तकको सुशोभित करनेवाला

राज्यमुकुट भरतके सिरपर चढ़ाया गया—भरतने माताका संकोच, पिताकी आज्ञा और भाइयोंके आग्रहको माना ।

पितृभक्त रामने अपने राज्याधिकारकी चर्चा तक नहीं की। उन्होंने सहर्ष पिताकी आज्ञा स्वीकार की । वनवासकी आज्ञासे उनका हृदय तनिक भी विचलित नहीं हुआ । उन्होंने कष्टोंको हंसते हंसते अपने गलेसे लगाया । पतिप्राणा सीता और भ्रातृभक्त लक्ष्मणने उनका साथ दिया । वनवासकी अकथनीय वेदनाएं, एकांतवासका कष्ट और राज्यका प्रलोभन उन्हें सत्य प्रणसे नहीं डिगा सका, वे वनवासको चल दिए ।

अयोध्याकी जनताको उनके जानेका असह्य कष्ट था लेकिन वे इसे मौनरूपसे सह रहे थे । माता और जनताके स्नेह बंधनको तोड़कर श्रीराम वनवासको चल दिए । माताओंने अश्रुधार बहाई । लेकिन वे सबके हृदयको धैर्य बंधाते हुए अपने पथपर बढ़ चले ।

(८)

महात्मा रामचन्द्र घोर अरण्यमें विचरण करने लगे, हिंसक जंतुओंसे व्याप्त वनों और भयानक कन्दराओंको उन्होंने अपना निवासस्थान बना लिया । भयानक जंगलों और गुफाओंमें चलते हुए उनका हृदय जरा भी व्याकुल नहीं होता । वे इस भ्रमणसे प्रसन्न थे ।

वृक्षोंके मधुर फल खाकर अपनी क्षुधा शान्त करते हुए वे क्रौंचरवा सरिताको पारकर दंडकारण्यके निकट पहुंचे । गिरिकी सुन्दरताने उनके हृदयको आकर्षित कर लिया । वे कुछ समयको विश्राम लेनेके लिए वहीं एक कुटी बनाकर ठहर गए ।

लक्ष्मण प्रकृतिके उपासक थे। प्रकृतिका अबाधित साम्राज्य गिरिके चारों ओर फैला हुआ था। उसकी मनोमोहकताने उनका हृदय मुग्ध कर लिया था।

एक दिन प्रकृतिकी शोभा निरीक्षण करते हुए वे बहुत दूर पहुंच गए थे, वहां उन्होंने एक बांसके जंगलको देखा। बांसका वह सारा जंगल एक अद्भुत प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा था। देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे उस प्रकाशकी खोज करनेके लिए बांसोंके निकट पहुंचे। उनके अन्दर उन्होंने एक चमकती हुई वस्तु देखी। आगे चलकर उन्होंने उसे उठा लिया। वह चमकता हुआ तीक्ष्ण खड्ग था, खड्गकी तीक्ष्ण धारके परीक्षणके लिये उन्होंने उसे बांसों पर चलाया। अब क्या था उनके देखते२ सम्पूर्ण बांसका जंगल कट गया। उसमें बैठा हुआ शंबुककुमारका शिर भी कट कर जमीन पर गिर पड़ा।

आश्चर्यचकित लक्ष्मण उस खड्गको लेकर अपने स्थानको चले आए।

रावणकी बहिन चन्द्रनखाका पुत्र बांसके जंगलमें बैठा हुआ दैविक खड्गकी उपासना कर रहा था, उपासना करते हुए उसे एक साल होचुका था, उसकी मां उसे नित्य प्रति भोजन दे जाती थी।

शंबुककी आराधना आज समाप्त हो चुकी थी। खड्ग उसके सामने पड़ा था लेकिन उसका दुर्भाग्य उसके साथ था। खड्ग उसको न मिलकर लक्ष्मणके हाथ लगा। उसे उसके साथ मृत्यु ही हाथ लगी।

आज चन्द्रनखा अपने पुत्रके लिए नित्यानुसार भोजन लाई

थी। उसका हृदय आनंदसे विकसित होरहा था। लेकिन यह क्या? देखकर उसका मस्तिष्क विकृत होगया। उसके पुत्रका कटा हुआ सिर उसके सामने पड़ा हुआ था। वह अपने हृदयके दुःखको नहीं सम्हाल सकी और मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी।

जब उसे होश आया तब अपने पुत्रके कटे सिरको गोदमें लेकर विलाप करने लगी। रोते रोते जब उसके हृदयकी वेदना कुछ हलकी हुई तब वह अपने पुत्र-घातकका पता लगाने जंगलकी ओर बढ़ी। आगे जाकर उसने एक स्थान पर बैठे हुए रामचन्द्रजीको देखा, देखकर वह उनके सौन्दर्यपर मोहित हो गई। उसके हृदयका पुत्रशोक बह गया, शोकका स्थान कामदेवने लेलिया। मदनकी तीव्रताने उसकी लज्जाको खो दिया। उसने बड़ी निर्लज्जतासे अपने काम विकारको श्रीरामचन्द्रजी पर प्रकट किया। लेकिन उसे अपने प्रयत्नमें असफल होना पड़ा। निराशाने चन्द्रनखाके क्रोधको भड़का दिया, वह शंबुकके कटे सिरको अपनी गोदमें लेकर अपने पति खरदूषणके पास पहुंची। रोते रोते उसने पुत्र वधकी करुण कहानी सुनाई। वह बोली—उस नृशंस व्यक्तिने पुत्र वध नहीं किया, किन्तु उसने मेरे सतीत्वको भी नष्ट करना चाहा। सौभाग्य था जो मैं अपने सती धर्मकी रक्षा कर सकी अन्यथा आप यहां इस समय मुझे जीवित नहीं देख पाते, मेरे धर्मपर जरासी आंच आने पर मैं अवश्य ही अपना प्राण त्याग कर देती।

पुत्र वधसे खरदूषणका हृदय घायल होचुका था। पत्नीकी व्यथाकी कहानीने उसपर नमक छिड़कनेका कार्य किया। वह उसी समय अपना संपूर्ण सैन्य लेकर श्रीरामसे युद्ध करनेके लिए चल दिया।

पतिको युद्धके लिए तैयार कर देनेके बाद चंद्रनखाने अपने भाई रावणको भी उभाड़ा, वह उसके पास जाकर अपना दुख रोने लगी। रावणने उसे धैर्य दिया और अपना वायुयान सजाकर खरदूषणकी सहायताके लिए चल दिया।

(९)

अचानक ही पृथ्वी मंडलको धूलसे धूसरित देखकर श्री रामका हृदय किसी अज्ञात आशंकासे भर गया। हाथियोंके गर्जन और घोड़ोंके उच्च नादसे उन्हें किसी सैन्यका आना स्पष्ट ज्ञात होगया। उनके प्रतिभाशाली मस्तिष्कने सैन्यके आनेका कारण शीघ्र ही सोच लिया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपमानित महिलाने पुत्र-वधका बदला लेनेके लिए ही यह प्रयत्न किया है, वे अपने धनुषको उठाकर युद्धके लिए आगे बढ़े।

वीर लक्ष्मणने उन्हें युद्धके लिए रोकते हुए कहा—पूज्य भाई! मेरे रहते हुए आप युद्धके लिए जांय, यह कभी नहीं हो सकता। आप जननी जानकीकी रक्षा कीजिए। मैं इन कायरोंका दमन करके अभी लौटा आता हूं। यदि मुझे आपकी सहायताकी आवश्यकता होगी तो मैं सिंहनाद करूंगा उसे सुनने पर ही आप मेरी सहायताके लिए आइए। यह कहकर लक्ष्मणजी अपना धनुष लेकर खरदूषणसे युद्ध करनेके लिए चल दिए।

खरदूषणकी सहायताके लिए रावण आकाश मार्गसे जा रहा था। इसी समय अचानक ही उसकी दृष्टि वनमें बैठी हुई सुन्दरी सीतापर पड़ी, उसे देखते ही वह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होगया।

युद्धकी बात भूलकर वह सीताके पानेकी बात सोचने लगा। वह अब युद्धके लिए नहीं जाना चाहता था, लेकिन खरदूषणका साहस बढ़ानेके लिए वह अपने आनेकी सूचना देना चाहता था। अपने आनेकी सूचना देनेके लिए उसने उच्च-स्वरसे सिंहनाद किया। सिंहनादने उसके प्रयत्नमें सहायता दी। सिंहनाद सुनकर भाई लक्ष्मण पर संकटकी बात जानकर श्रीराम उनकी सहायताके लिए चल दिए, सीता अब एकाकी थी।

रावण अत्यन्त प्रसन्न था। वह वायुयानसे उतरा और एकाकिनी सीताको बाहुबलसे उठाकर विमानद्वारा अपनी राजधानी लंकाको लेचला।

खरदूषणका वध करके लक्ष्मणजी युद्ध जीतकर लौट रहे थे, श्रीरामको आते देख उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे बोले—पूज्य भाई! एकाकिनी सीताको छोड़कर आप किसलिए आ रहे हैं? श्रीरामका मन लक्ष्मणके इस प्रश्नसे व्यग्र हो उठा, वे बोले—सिंहनाद सुनकर तुम्हारी सहायताके लिए आ रहा हूं। लक्ष्मणजीको इस उत्तरसे संतोष नहीं हुआ। वे बोले—पूज्य भाई! आपको धोखा दिया गया है, युद्ध तो मैं जीत चुका हूं अब हम शीघ्र चलकर जननी सीताको देखें।

दोनों भाई शीघ्र वापिस लौटे, उन्होंने देखा सीता यहां नहीं है, वे शीघ्र ही समझ गए कि सीता हरणके लिए किसी व्यक्तिने हमारे साथ छल किया है। इस दुर्घटनाका श्रीरामके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा, वे सीताजीके वियोगमें पागल बन गए। उसके गुणोंका स्मरण करके जंगलमें इधर उधर घूमने लगे। लक्ष्मणजीने समझाकर उनके

शोकको कुछ कम किया, तब दोनों भाई सारे जंगलमें घूमकर सीता-जीकी खोज करने लगे, लेकिन सारा जंगल छान डालनेपर भी उन्हें जानकीका कुछ भी पता नहीं लगा, तब वे निराश होकर अपनी कुटीको लौट आए।

(९)

किष्किंधापति सुग्रीव बलशाली राजा था, अपनी प्रिय पत्नी सुतारासे उसे अत्यन्त स्नेह था, सुतारा सुन्दरी और सुशीला थी।

एक दिन विद्यापति साहसगतिने सुताराको देखा, वह उसी दिनसे उसके पानेका प्रयत्न करने लगा। एक दिन मौका पाकर वह सुताराका हरण कर अपनी राजधानीको ले आया। सुग्रीवको पत्नी हरणका पता लगा, लेकिन उसे साहसगतिकी विद्याओं और शक्तिका पता था, उससे युद्ध करनेका साहस उसमें नहीं था।

खरदूषणके साथ किए गए युद्धमें रामचन्द्रजीकी शक्तिका पता लग गया था, वह अपनी सहायताके लिए उनके पास आया। सीता वियोगसे श्रीरामका हृदय बेचैन होता था लेकिन सुग्रीवकी सहायता करना अपना कर्तव्य समझा, साहसगतिको युद्ध द्वारा मारकर उन्होंने सुग्रीवकी सहायता की। सुतारा सुग्रीवको प्राप्त हो गई।

अपने उपकार कर्ता रामचन्द्रजीकी पत्नी सीताका पता लगाना सुग्रीवने अपना कर्तव्य समझा और वे उसका पता लगानेके लिए निकले। लंकापति रावण सीताका हरण कर ले गया है इसका पता उन्हें लगा, वे लौट आए और रावण द्वारा सीता हरणका समाचार श्रीरामको सुनाया। रावणकी शक्ति और वीरताका परिचय भी उन्हें दिया।

सीताका पता लग जानेपर उसको छुड़ानेके लिए श्री-

रामका हृदय बेचैन होउठा, उन्होंने सुग्रीवसे अपने मनका हाल कहा।

सुग्रीवकी शक्ति नहीं थी वह लंका जाकर यह सब समाचार ला सके, उसने अपने पराक्रमी और बलवान मित्र हनूमानसे इस कार्यमें सहायता चाही। श्री रामकी शरण वत्सलता और रावणके इस अत्याचारकी कहानी भी सुग्रीवने उनको सुनाई।

हनूमानजी न्यायके पक्षपाती थे, दुखीकी सहायता करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। उन्होंने सुग्रीवको श्रीरामकी सहायता करनेका वचन दिया और सीताकी कुशल लेने वे लंकाको चल दिए।

अशोक वाटिकाके निकट उन्होंने वियोगिनी सीताको देखा। श्रीरामकी भेजी हुई मुद्रिका उन्होंने सीताजीको दी। सीताके हृदयका दुःख इससे कुछ कम हुआ।

हनूमानजीने रावणसे सीता लौटा देनेका बहुत आग्रह किया लेकिन उसने एक बात भी नहीं सुनी और हनूमानका अपमान करके अपनी राज्य सभासे निकाल दिया।

रावणने सीताजीको अपने प्रमद नामक सुन्दर उद्यानमें रक्खा था। सैकड़ों दासियां उसकी सेवामें थीं स्वर्गीय साम्राज्य उसकी नजर था, लेकिन उसने किसी पर भी दृष्टि नहीं डाली। उसे कोई चाह नहीं थी। उसका मन तो राममें रमा था। रामके अतिरिक्त संपूर्ण संसारका वैभव उसके लिए कुछ भी नहीं था।

रावणने अपने स्वर्गीय वैभवका लोभ उसे दिखलाया, अपनी अद्भुत शक्ति और पराक्रमका परिचय दिया, किन्तु वह पतिप्राणा जानकीका मन अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका।

हनूमानने सीताकी कुशलताका समाचार श्रीरामको सुनाया, सुनकर उनके हृदयको बड़ी सान्त्वना मिली। लेकिन यह जानकर दुःख भी हुआ कि रावण सीताको वापिस नहीं लौटाना चाहता। उन्होंने सुग्रीव आदि विद्याधरोंसे रावणके साथ युद्ध करनेके लिए अपनी२ सेनायें संगठित करनेके लिए कहा। महाबलि रावणसे युद्ध करनेकी बात सुनकर सभी शूरवीरोंके मुंह नीचे होगए, उन्होंने श्रीरामसे निवेदन किया—

रावण विश्व-विजेता और महाशक्तिशाली है उससे युद्धकर विजय पानेकी आशा आप त्याग दीजिए। यदि यह युद्ध आप अपनी पत्नी पानेके लिए कर रहे हैं तब तो यह बिलकुल बेकार है। हम आपको सीतासे अत्यन्त सुन्दरी अनेक कन्यायें दे सकते हैं। लेकिन सीताको लौटाकर लाना असम्भव है।

राजाओंकी कायरताका तिरस्कार करते हुए रामचन्द्रजी बोले—राजाओ, हम सीताको ही चाहते हैं, सीता हमारी पत्नी है, अपनी पत्नीके अपहरणका अपमान वीर कभी भी नहीं सुन सकता। आप सब इस अत्याचारीको दण्ड देनेसे क्यों हिचकिचाते हैं। अन्यायी कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो लेकिन उसका पतन अवश्य है। वीर कभी अन्यायको सहन नहीं करते रावण क्या, यदि अन्यायके सामने सारा संसार भी होता तो मैं उसका सामना करता। इस अन्यायीकी तुच्छ शक्ति मेरे सामने क्या है! मैं उसकी शक्तिको नष्ट कर सीताको अवश्य ही लौटा कर ले लूंगा, यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है। यदि तुम्हें उसकी शक्तिका डर और अपने प्राणोंका मोह है,

यदि तुम अत्याचारीको दंड देनेमें अपनेको असमर्थ पाते हो तो मुझे तुम्हारी सहायताकी जरूरत नहीं है, राम अकेला ही अन्यायके दमनके लिए काफी है, तुम अपने प्राणोंको लेकर पृथ्वी पर अमर बनकर रहो।

रामके वीर वचनोंसे विद्याधरोंके हृदय गूंज उठे। उनका एक एक शब्द रुधिरमें नई गतिका संचार करने लगा। सब अपनी सेनाएं सजाकर रावणसे युद्धके लिए कटिबद्ध होगए।

हनुमान, सुग्रीव, नल, नील आदि वीर विद्याधर अन्यायके प्रतिकारके लिए लंकापर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़े।

लंकापतिको युद्ध ज्वालाके निकट आनेका पता लगा। वह इस ज्वालाका सामना करनेके लिए तैयार हुआ।

भाई विभीषणने उसे समझाना चाहा और युद्धकी ज्वाला शांत करनेके लिए सीता दे देनेका आग्रह किया। लेकिन उसका दुर्भाग्य यह सब माननेके लिए तैयार न था। विभीषण अपनी सेनाओंके साथ श्री रामसे जा मिला। विभीषणके मिलनेसे श्री रामकी शक्ति चौगुनी बढ़ गई। उन्होंने अब तेजीसे लंकापर चढ़ाई कर दी।

विवेकशाली मंत्रियों और पत्नी मंदोदरी द्वारा समझाये जाने पर भी रावणने इस युद्धको स्वीकार किया। वह अपने शक्तिके मदमें चूर था—उसे अपने पुत्र और भाईयोंकी शक्तिपर विश्वास था। उसे अपनी असंख्य सैनापर भरोसा था।

दोनों ओर भयंकर युद्धकी ज्वाला जल उठी, दोनों ओरसे अनेक जीव युद्धमें आहत हुए, रावणकी शक्तिके स्तम्भ कुंभकर्ण और इन्द्रजीत बंदी बना लिए गए।

विभीषणके द्रोहपर रावण अत्यन्त कुपित था, उसे युद्धमें अपने सामने देख रावणने एक भयंकर बाणका प्रहार किया, समीप खड़े हुए लक्ष्मणने उसे अपने बाणसे बीचमें ही काट डाला। इससे कुपित होकर रावणने इन्द्र द्वारा दिए शक्तिबाणका लक्ष्मणजीपर प्रहार किया। भयंकर बाणकी शक्तिको लक्ष्मण सहन नहीं कर सके और कुम्हलाए हुए कुसुमकी तरह मूर्छित होकर गिर पड़े।

आजका युद्ध समाप्त हुआ, लक्ष्मणके पतनसे रामचन्द्रजीको मारणांतिक पीड़ा हुई, शीघ्र ही उनकी चिकित्सा की गई, लेकिन सब निष्फल हुई। इसी समय एक परिचितने बतलाया कि द्रोणमेघ राजाकी कन्या विशल्यामें अपूर्व शक्ति है, उसका पवित्र तेज मंगल कार्य करता है लेकिन उसका इस समय यहां लाना महा कठिनाईका काम है। वीर हनुमानने उसे लानेका भार लिया। वे तेज गतिसे जाकर सवेरा होनेके पहिले यहां विशल्याको ले आए। उसके स्पर्श और मंत्रित जलके छिड़कनेसे शक्तिका प्रभाव नष्ट हो गया।

दूसरे दिन भयंकर युद्ध हुआ। लक्ष्मण द्वारा रावणका पतन हुआ। विजयी रामने लंकामें प्रवेश किया और वियोगिनी सीताको दर्शन देकर उसे नया जीवन दिया।

वनवासके बारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे. भरत अब एक क्षणके लिए राज्यभार अपने सिरपर नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने नारदजी द्वारा अपने राज्य त्यागका समाचार श्रीरामके समीप भेजा।

भाईकी विनय, और प्रजाकी पुकारसे श्रीरामका हृदय विचल गया उन्होंने पूर्ण वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया।

(१०)

रामके जन्मोत्सवके बादसे अयोध्या अपने सौभाग्यसे वंचित थी, आज रामके लौटने पर उसने अपना सौभाग्य फिर पाया, वह सौन्दर्य-मय हो उठी।

विरागी भरतने श्रीरामके चरणोंपर अपना मुकुट रख दिया, वे एक क्षणके लिए भी अब अयोध्यामें नहीं रहना चाहते थे। प्रजाकी रक्षाके लिए श्रीरामको राज्यभार स्वीकार करना पड़ा।

रामराज्यसे अयोध्याका गया हुआ गौरव पुनः लौट आया, प्रजाने संतोषकी सांस की। राम प्रजाके अत्यंत प्रिय बन गए। उन्होंने राज्यकी सुन्दर व्यवस्था की। प्रत्येक नागरिकको उनके योग्य अधिकार दिये, उनके राज्यमें सबल और बलवान, धनी निर्बल और नीच ऊंचका कोई भेदभाव नहीं था, सबको समान अधिकार प्राप्त था।

सुखसागरमें अशांतिका एक तूफान उठा। तूफानकी लहरें जोरे२ उठीं। "श्री रामने सीताके सतीत्वकी परीक्षा लिए विना ही उसे अपने घरमें स्थान दे दिया, वह रावणके यहां कितने समय तक रहीं, वहां रहकर क्या वह अपने आपको सुरक्षित रख सकी होंगी?"

लहरें श्री रामके कानोंतक जाकर टकराई। भयंकर तूफान उमड़ उठा, इस तूफानमें पड़कर श्री राम अपनेको संभाल नहीं सके, सीताका त्यागकर उन्होंने इस तूफानको शांत करनेका प्रयत्न किया।

सीताजी भयंकर जंगलमें निर्वासित थीं। वहां उन्होंने प्रतापी लव-कुशको जन्म दिया।

नारद द्वारा सीताजी परीक्षा देनेके लिए एकबार फिर अयोध्या लाई। गई उन्होंने अग्निप्रवेश किया और अपने सतीत्वकी परीक्षामें

सफल हुयीं लेकिन गृहस्थ जीवन उन्हें अब पसंद नहीं था, वे श्री रामसे आज्ञा लेकर तपस्विनी होगईं।

(११)

सीताके चले जानेपर श्री रामका जीवन शुष्क बन गया था उनका अब सारा मोह लक्ष्मणमें आ समाया था।

एक दिनकी बात; इन्द्रसभामें राम-लक्ष्मणके अद्भुत स्नेहकी कहानी सुनकर कीर्तिदेव उनके परीक्षणके लिए आया। आकर उसने श्री रामके निधनका झूठ मूठ समाचार श्री लक्ष्मणको सुनाया, लक्ष्मणका हृदय श्री रामका निधन सुनकर टूट गया, वे मूर्छित होकर भूतलपर गिर पड़े। उनकी यह मूर्छा मृत्युके रूपमें परिवर्तित होगई। कीर्तिदेवको स्वप्नमें भी इस दुर्घटनाकी आशंका नहीं थी, लक्ष्मणको मृतक देख उसके हृदयमें भूकंप होगया, उसे अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

लक्ष्मण पर श्रीरामको हार्दिक स्नेह था, उन्हें पृथ्वी पर पड़े देखकर उनके स्नेहका बांध टूट पड़ा, लक्ष्मणजीका शरीर मृतक बन चुका था लेकिन श्रीराम उसे अबतक जीवित ही समझ रहे थे। वे लक्ष्मणको मूर्छित समझकर अनेक प्रयत्नोंसे उनकी मूर्छा हटानेका उद्योग करने लगे।

जनता राम लक्ष्मणके स्नेहको समझती थी, वह यह भी जानती थी कि श्री लक्ष्मणका देहावसान हो चुका है लेकिन मोहवश रामको कोई समझा नहीं सका। जनताके इस मोहमें उनकी सहानुभूति थी, लेकिन सहानुभूतिने अब उपहासका रूप धारण कर लिया था। धीरे २ श्रीरामका यह मोह जनताके कौतूहलकी वस्तु बन गया।

वे लक्ष्मणके मृत शरीरको कन्धे पर रखकर घूमते थे। कभी उसे भोजन खिलाते, कभी शृंगार कराते और कभी उसे उठानेका निष्फल और हास्यजनक प्रयत्न करते थे। राज्यकार्य उन्होंने त्याग दिया था। इसतरह छह मास तक उनका यह मोहका संसार चलता रहा, अंतमें उनका मोहबंधन टूटा, उन्होंने अपने भाईका मृतक संस्कार किया।

संसार-नाटकके अनेक दृश्योंको देखते २ श्रीरामका हृदय अब ऊब गया था। राज्य कार्य और वैभवके वातावरणसे अब वह अपनेको दूर रखना चाहते थे। उनकी निर्मल आत्मापरसे मोहका आवरण हट चुका था। उनकी आत्मोद्धारकी इच्छा प्रबल हो उठी और एक दिन वे अपने प्रतापी पुत्रको राज्यभार सौंप कर सन्यासी बन गए।

निर्मल आकाशमें सूर्य-रश्मिएं जिस तरह चमकती हैं उसी तरह श्रीरामका शरीर तपके दिव्य तेजसे प्रकाशमान हो उठा। देवताओंको उनकी इस निर्ममत्वता पर आश्चर्य होने लगा, उनकी परीक्षाका तीर छूट चुका था। योगी रामके चारों ओर विलासका वातावरण फैल गया, कोयलका पंचम नाद, मधुकरोंका गुंजन, पुष्पोंकी मत्त सुरभि और बालाओंके मृदु स्वरसे सारा वन गूंज उठा।

परन्तु रामका मोह तो गल चुका था। सीताका सौन्दर्य भी अब उसे जिला नहीं सकता था, परीक्षण बेकार था। प्रलोभन विजित हुए, श्रीरामके आत्म-तेजकी विजय हुई।

योगी रामके निर्ममत्वकी देवताओंने प्रशंसा की। महात्मा राम अब महात्मा राम ही थे।

सुमेरु पर्वत जैसी यह निश्चल प्रतिज्ञा ली है, वह जैनेन्द्रदेव, दिगम्बर ऋषिके अतिरिक्त किसी विश्वके सम्राट्को नमस्कार नहीं करेंगे।"

दशाननने कहा—मन्त्री! तब क्या बालिदेवने मुझे नमस्कार करनेकी अनिच्छासे ही ऐसा किया है? नहीं! बालिदेवका राज्य मेरे आश्रित है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह मुझे प्रणाम न करे और मेरी आज्ञा शिरोधार्य न करे? मंत्री! प्रयत्न करने पर भी तुम्हारी इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता।

मंत्रीने कहा—महाराज! 'कर कंकणको आरसीकी क्या आवश्यक्ता?' एक दूत भेजकर आप इसका स्वयं निर्णय कर सकते हैं। लंकेशकी मुद्रासे अंकित एक आज्ञापत्र उसी समय बालीदेवके पास राज्य दूत द्वारा भेजा गया।

(२)

बालिदेव किष्किन्धा नगरके अधिपति थे। प्रख्यात कपिवंशमें उनका जन्म हुआ था, वह बड़े पराक्रमी वीर और दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्हें यह राज्य दशाननकी कृपासे प्राप्त हुआ था। राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उन्होंने अपने दृढ़ प्रतिक्रमके प्रभावसे अल्प समयमें ही अनेक विद्याधरोंको अपने आश्रित कर लिया था। तटस्थ समस्त राजाओंमें वह महामण्डलेश्वरके नामसे प्रसिद्ध थे। निकटस्थ राजाओंपर उनका अद्भुत प्रभुत्व था। उनकी उन सबपर अनिवार्य आज्ञा चलती थी।

वालीदेव धर्मनिष्ठ कर्मठ और विद्वान् थे। जैनधर्म पर उन्हें निश्चल श्रद्धा थी। नित्यकर्म पालनमें वह सतर्कतापूर्वक निरन्तर तत्पर रहते थे।

तपस्वी ऋषियोंके वह बड़े भक्त थे। उनके दर्शनसे उन्हें अत्यन्त आल्हाद, आनन्द और भक्ति उत्पन्न होती थी।

\+ \+ \+

प्रभातके सुन्दर समयमें वन विहार करते हुए एक दिन बालि-देवने तपस्वी शुभंकरको देखा। उनके दर्शनसे वे बहुत प्रसन्न हुए, उनके नेत्रोंसे आनंदाश्रु बहने लगे, हृदय पुलकित हो उठा। उन्होंने भक्तिभावसे ऋषीश्वरके चरणोंमें प्रणाम किया। ऋषिने धर्मस्नेह-पूर्वक उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर वह धर्मकी विशद रूपसे विवेचना करने लगे। बालिदेवको धार्मिक व्याख्यान सुननेमें अत्यन्त आनन्द आता था। ऋषिराजका विशद और मनोहर धार्मिक व्याख्यान सुन उनका मन तन्मय हो गया। आपके भाषणका उनके हृदय-स्थल पर अपूर्व प्रभाव पड़ा, उनका हृदय पूर्ण श्रद्धासे परिपूरित हो गया और उन्होंने उसी समय मुनिराजके आगे निम्न प्रतिज्ञा करनेकी इच्छा प्रगट की। वह कहने लगे—प्रभो! मेरा हृदय जिनेन्द्रदेवके चरणोंमें पूर्णतः अनुरक्त हो गया है। आज मैं आपके सामने यह दृढ़ प्रण लेता हूं कि श्री जिनेन्द्रदेव, दिगम्बर मुनि और चारित्रवान श्राव-कोंके अतिरिक्त संसारके किसी भी व्यक्तिको मैं प्रणाम न करूंगा। इस प्रतिज्ञामें आप मेरे साक्षी हैं।

मुनिराजने कहा—वत्स! तुमने यह प्रतिज्ञा की है सो ठीक किया, किन्तु प्रतिज्ञा लेनेके पहले [illegible] उसके महत्वको ज्ञान लेनेकी पूर्ण आवश्यकता है। मनुष्योंके जीवनमें प्रतिज्ञा जीवन-मरणकी एक परीक्षा है प्रतिज्ञा दृढ़ बंधन है जिसमें बंधकर मनुष्य

मृत्युके साथ ही छुटकारा पाता है । प्रतिज्ञा प्राणोंका एक सारभूत रस है जिसके भङ्ग होजानेपर प्राणोंका रहना निःसारसा होजाता है। राजन् ! प्रतिज्ञा लेना तो आसान है, किन्तु उसका पालन करना असिकी तीक्ष्ण धारके ऊपर चलनेके सदृश अतिशय कठिन है।

प्रतिज्ञा वह वस्तु है जिसके बलपर मानव संसारके प्रभुत्वको प्राप्त कर सकता है । और उसे भंग कर वह अपने जीवनको तुच्छ कीटके सदृश निःसार बना सकता है। प्रतिज्ञा पालनमें महान् आत्म-शक्तिकी आवश्यकता होती है । तुम्हें यह ज्ञात है कि प्रतिज्ञा भंग करनेका कितना महान् पाप होता है । प्रतिज्ञा पालन करके उसके द्वारा उपार्जित पुण्य तो प्रतिज्ञा भंगके पापके सामने सरसोंके समान है । वत्स ! प्रतिज्ञा बड़ी महत्वपूर्ण वस्तु है । अच्छा ! जो प्रतिज्ञा तुमने ली है उसे प्राणपणसे पालन करना यही मेरा अनुरोध है ।

बालिदेवने कहा—भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने प्रतिज्ञाके महत्वको सम्यग् रूपसे समझ लिया है । आपकी दयासे इस प्रतिज्ञाका मैं प्राण प्रणसे पालन करूंगा। मेरी प्रतिज्ञा प्राणोंके साथ ही भंग होगी।

मुनिराजने कहा—" वत्स ! तेरा कल्याण हो । "

बालिदेवने ऋषिराजको पुनः प्रणाम किया और वह अपने स्थानको लौट आए ।

(३)

लङ्काधिपतिकी गर्वपूर्ण प्रकृति समस्त नरेश्वरोंको विदित थी। बालिदेव भी उनकी अभिमानपूर्ण प्रवृत्तिसे परिचित थे। उनके हृदयमें कभी २ यह आशङ्का हो उठती थी कि मेरी यह प्रतिज्ञा लंकेशको

अवश्य ज्ञात होगी और तब मुझे एक दिन उनका कोप भाजन बनना पड़ेगा। किन्तु उन्हें अपनी आत्मशक्ति पर विश्वास था, इसीलिये वह अपनी प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें निश्चिन्त थे।

महाराज बालिदेव सिंहासनारूढ़ थे, इसी समय द्वारपालने आकर निवेदन किया—"महाराज लंकाधिपतिका दूत आपके दर्शन करनेकी प्रार्थना कर रहा है।"

महाराजने उसे आनेकी आज्ञा देते हुए मंत्रीकी ओर एक आशय पूर्ण दृष्टिसे निरीक्षण किया, मंत्रीने भी उनकी ओर उसी भांति देखा।

लंकेशके दूतने राज्य सभामें प्रवेश करके राज्य पद्धत्यनुसार महाराजको प्रणाम किया और अपने प्रभुका संदेश पत्र उन्हें दिया। महाराजकी आज्ञासे मन्त्रीने पत्र पढ़ा, पत्र निम्नप्रकार था—

राजन्! स्वस्ति कुशलं।

आपके और हमारे वंशजोंमें अधिक समयसे मैत्री भाव चला आता है। आपको पूर्व परम्पराका पालन करनेके लिए सावधान रहना चाहिए। आपको स्मरण होगा मैंने आपके पिताको वानर वंशका राज्य प्रदान किया था इसलिए तुम्हें यह उचित है तुम हमारी सेवा स्वीकार करके अपनी बहिन श्रीमाला हमें समर्पण करो और तुम स्वयं आकर मेरे महत्वका प्रदर्शन करो। लिखितं—दशानन।

लंकेशके इस संवादको बालिदेवको महान दुःख हुआ। और उसकी उद्धतता पर कुछ २ रोष भी हुआ। किन्तु अपने मनोगत भावको दबाते हुए उन्होंने मंत्रीसे कहा—मंत्री! लंकेशकी [illegible]

आज्ञाएं माननीय हैं, उनका सर्वथा रूपेण पालन किया जा सक्ता है, किन्तु यह कदापि नहीं हो सक्ता कि मैं उन्हें प्रणाम करूं।

मैं अपनी प्रतिज्ञासे नहीं टल सकता। जब मैंने अपनी प्रतिज्ञाको आजन्म पालन करनेका प्रण किया है तब मैं उस अव्रती व्यक्तिको प्रणाम कैसे कर सक्ता हूं? नहीं! यह कभी नहीं हो सकता। उन्होंने दूतसे कहा–दूत! जाओ!! तुम अपने प्रतापी प्रभुको मेरा यह सन्देह सुना देना कि वालिदेव प्राण रहते हुए भी आपको नमस्कार करनेको तैय्यार नहीं।

दूतने कहा–महाराज! आपका यह वक्तव्य अज्ञानता पूर्ण है। भला जिस महाप्रभुके चरणोंके प्रतापसे पूर्ण पृथ्वी तलके समस्त नरेश्वर वृन्दोंके मुकुट स्पर्श करते हैं उनको नमस्कार न करना आपकी उद्धतता नहीं तो क्या है? महाराज! आपकी यह प्रतिज्ञा लंकेश्वरके रहते हुए पूर्ण न हो सकेगी। अस्तु, आपसे यह मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप सम्राट्के चरणोंके समीप उपस्थित होकर उन्हें सादर प्रणाम करें और राज्यसे प्राप्त हुए अनिंद्य विषय-सुखोंका अधिक काल तक निराबाध्य रूपसे उपभोग करें।

वालिदेवने कहा–"दूत! मेरे सम्मुख तेरा इस प्रकार निरर्थक प्रलाप करना निष्फल है। तू अपने प्रभुकी आज्ञा पालन कर अपने कर्त्तव्यको पूर्ण कर चुका। सुन, लंकापति क्या सुरपति भी मेरी अक्षय प्रतिज्ञाको भंग करनेके लिए समर्थ नहीं। तू जा, अपने प्रभुको मेरा संदेश सुना देना।"

(४)

राज्य सभामें प्रवेश कर दूतने वालिदेव द्वारा कहा हुआ संवाद लंकाधिपतिको श्रवण कराया। उन्होंने वालिदेवके इस उद्धतता पूर्ण आचरणको अक्षम्य अपराध समझा। एक क्षणको उनकी भृकुटीमें बल पड़ गया। सभासद् गण उनके रोष पूर्ण मुख मण्डलका अवलोकन कर कांप उठे। उन्होंने समझ लिया कि किष्किन्धाधीशका शरीर इस भूमण्डलपर अब अल्प समयको ही स्थित है। फिर मंत्रीगणोंकी ओर निरीक्षण करते हुए रावण बोला—

वालिदेवकी इतनी धृष्टता! वह मेरे सम्मुख आकर मुझे नमस्कार न करेगा! वह मेरा आश्रित-मेरी कृपासे इतना राज्य सुखका उपभोग करनेवाला—मुझे नमस्कार न करे! उस मूढ़की यह उद्दण्डता! अच्छा, लंकेशका राज्य दंड उसके इस मानको अभी विनष्ट करेगा। उसका वह शिर अभी मेरे चरणतलपर लोटेगा।

सेनापति! समस्त सेनाको युद्धके लिए तैयार करो। मैं इस समय किष्किन्धापर आक्रमण करूंगा।"

सेनापतिने अपने प्रभुकी आज्ञाका शीघ्र पालन किया। चतुरङ्ग सेना अल्प कालसे सजकर सुसंगठित हो गई।

× × ×

मलयाचलकी तीव्र तरंगोंके समान दशाननकी सेनाने किष्किन्धा-पुरको चारों ओरसे घेर लिया। सेनाके उच्च नादसे नगर पूरित होगया।

मंत्रियोंने वालिदेवके समक्ष उपस्थित होकर विनीत भावसे कहा—
"प्रभो! लंकेशकी विजयिनी सेनाने युद्धकी घोषणा करदी है।

उसकी अपरिमित सेनाके सम्मुख विजयकी आशा करना सर्वथा असम्भव है, अस्तु । प्रभु ! आपका इसीमें इष्ट है कि वह लंकेशकी आज्ञा स्वीकार करे, अन्यथा इसीसे विपरीतावस्थामें भारी हानि होनेकी आशङ्का है । ”

वालिदेवने कहा—“ मंत्रीगण ! मैं आपके इस कायरतापूर्ण वक्तव्यको श्रवण करनेके लिये तैयार नहीं हूं, मैं यह निश्चय रूपसे प्रण कर चुका हूं, कि जिनेन्द्रदेवके अतिरिक्त किसी भी महासत्ताको नमस्कार नहीं करूंगा, इसके विरुद्ध मैं कदापि नहीं जा सकता । मैं लंकेशसे युद्ध करूंगा और अपनी महान् शक्तिका परिचय दूंगा । मेरी समस्त सेनाको इसी समय तैयार करो । ”

× × ×

कालके सदृश भयङ्कर दोनों ओरके सैनिक युद्धके सम्मुख उपस्थित हुए । दोनों ओरके हिंसाकाण्डको रोकनेकी इच्छासे मन्त्रियोंने निश्चय किया, कि दोनों महावीर परस्पर युद्ध करले । इससे सैनिकोंका व्यर्थ वध न हो, युद्धमें जो पराजित हो, वह एक दूसरेको नमस्कार करे । मन्त्रियोंकी सम्मति दोनोंने स्वीकार की ।

लंकेश और वालिदेवमें परस्पर भीषण मल्ल युद्ध होने लगा । दोनों महाबाहु अतिशय बलवान युद्धकुशल और शक्तिशाली थे । उनका युद्ध देवताओंके हृदयमें आश्चर्य उत्पन्न करने लगा । अपने विरोधीकी घात बचानेमें दोनों वीर कुशल थे । अतः बहुत समय पर्यंत उन दोनों वीरोंका मल्ल युद्ध हुआ, किन्तु दोनों वीरोंमेंसे कोई भी विजित नहीं हुआ । भीषणवेगसे युद्ध करते हुए महा बलवान वालिदेवने अन्तमें

दशाननको धराशायी कर दिया। उनका मान गलित होगया।

वालिदेव विजयी हुए, किन्तु उनके हृदय पर इस विजयका विपरीत प्रभाव पड़ा। उन्हें इस दृश्यसे संसारकी पूर्ण नश्वरता विदित होने लगी। उनका मन उसी क्षण संसारसे विरक्त हो गया।

वह इस क्रूर पूर्ण कृत्यके लिए दशाननसे क्षमा याचना करते हुए अपने लघु भ्राता सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य समर्पण कर वनको चल दिये। समस्त नरेश मण्डल उनके इस अद्भुत साहस और त्यागकी मुक्त कंठसे प्रशंसा करने लगा।

वनमें जाकर वालिदेवने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की, वह दिगंबर मुनि बन गए।

(५)

कैलाश पर्वतकी एक विशाल गुफामें ध्यानमग्न हुए वालिदेव निश्चल तपश्चरणमें मग्न थे।

इसी समय लङ्काधिपति अपने विमानमें बैठे हुए किसी कार्य-वशात् शीघ्रता पूर्वक जा रहे थे। उनका विमान आकाश मार्गसे तीव्र गतिसे गमन कर रहा था। कैलाश पर्वतके ऊपर आते ही, उनका विमान उस स्थान पर स्तंभित हो गया।

अभिमान, मानव पतनकी प्रथम सीढ़ी है। मानव जिस समय प्रथम प्रथम अभिमानकी चोटी पर चढ़ना प्रारम्भ करता है उसकी दृष्टि संकुचित हो जाती है। वह दूसरोंको हृदयसे स्वच्छ रीतिसे निरीक्षण नहीं कर सकता। उसका मन [illegible] सीमापर आसीन होनेको लालायित हो जाता है। उसे अपनी दृष्टि,

अपने साहस, यहांतक कि मनुष्यताका भी बोध नहीं रहता, क्रमशः वह साधारण श्रेणीसे निकल कर अपनेको एक विशाल उच्च स्थानपर आसीन हुआ समझने लगता है, और अन्तमें वह अपने मिथ्या महत्त्वके सन्मुख किसी व्यक्तिको कुछ समझता ही नहीं है। यदि उसे अपनी अनुचित शक्तिके विकासके साधन प्राप्त हो जाते हैं तब तो उसके अभिमानका ठिकाना ही नहीं रहता, किञ्चित्मा वैभव अपूर्ण ज्ञान, शारीरिक बल और प्रभाव प्राप्त कर ही वह अपने पैरोंको पृथ्वीपर रखनेका प्रयत्न नहीं करता।

लंकेश उस समय सार्वभौमिक सम्राट् था, वह असंख्य राज्य-वैभवका स्वामी था। उसका राजाओंपर एकछत्र अधिकार था, वह अनेक उत्तमोत्तम विद्याओंका स्वामी था, अपनी विद्याओंका उसे पूर्णतः अभिमान था, अभिमानके लिए और आवश्यक ही क्या है? सत्ता, वैभव और निपुणता अभिमान-अनलके लिए घृतकी आहुतिएं हैं। अपने विमानको आकाशमें अटका हुआ निरीक्षण कर उसने अपनी समस्त विद्याओंका उपयोग करना आरम्भ किया, अपनी समस्त शक्तिको उसने विमान चलानेमें लगा दिया, किन्तु उसका विमान वहांसे टससे मस नहीं हुआ। मंत्र-कीलित पुरुषकी तरह वह उस स्थानपर स्तंभित हो गया। अभिमानी लंकेशका हृदय जल-उठा। वह विमानसे उतरा। उसने नीचे निरीक्षण किया। वहां उसने जो कुछ देखा उससे उसका हृदय क्रोध और अभिमानसे धधक उठा। उसने देखा कि नीचे वालिदेव तपश्चरणमें मग्न हुए बैठे हैं।

× × ×

लंकेश ज्ञानवान व्यक्ति था, उसे शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान था। वह जानता था कि महत्त्वशाली ऋद्धि प्राप्त मुनिगणोंके ऊपरसे विमान नहीं जा सकता है। वह मुनियोंकी शक्तिसे अवगत था, किन्तु हाय रे अभिमान! तू मानवोंकी निर्मल ज्ञानदृष्टिको प्रथम ही धुंधला कर देता है। तेरी उपस्थितिमें मनुष्यके हृदयका विवेक विलग होजाता है, और अभिमानी प्रेतको हेयादेयका किञ्चित भी बोध नहीं रहता। अभिमान-कुमित्रकी ममतामें पड़े हुए लङ्केशके हृदयसे विवेक विलय होगया। वह विचारने लगा—

"ओह! यह वही बालिदेव है, जिसने मेरा उस समय मान भंग किया था और आज भी मुझे पराजित करनेके लिए ही इसने मेरा विमान रोक रक्खा है। अच्छा देखूं मैं इसकी शक्ति! मैं इस पहाड़को ही उखाड़ कर समुद्रमें न फेंक दूं तो मेरा नाम दशानन नहीं। उस समय इसने समस्त राजाओंके सम्मुख मेरा जो अपमान किया था, उसका बदला आज मैं इससे अवश्य लूंगा। आज मैं इसे अपनी आर्जित विद्याओंकी शक्ति दिखला दूंगा।" क्रोध और अभिमानके अतीव वेगको धारण करनेवाले दशाननने अपनी विद्या और [illegible] कैलाश पर्वतके नीचे प्रवेश किया। उसने अपनी समस्त विद्याशक्ति और पराक्रमकी सारी ताकत उस पर्वतके उखाड़नेका उद्योग किया।

योगीश्वर बालिदेव ध्यानारूढ थे, आत्मध्यानमें मग्न थे, उनके हृदयमें कुछ भी द्वेष, अभिमान, अथवा प्रतिहिंसा भाव न था। उन्होंने देखा कि दशानन एक बड़ा भारी अनर्थ करनेको उद्यत हुआ है। इसके इस प्रकारके उखाड़नेसे इस पर स्थित अनेक सुन्दर जिनमंदिर

नष्टभ्रष्ट हो जायंगे, तथा असंख्य प्राणियोंका प्राणघात होगा, अनेक प्राणियोंको असह्य कष्ट होगा और वह भी केवल मात्र मेरे कारण। मुझे अपने कष्टोंकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। कष्ट मेरा कुछ भी नहीं कर सकते; किन्तु इन क्षुद्र प्राणियोंके प्राण निष्प्रयोजन ही पीड़ित हों यह मुझसे कदापि नहीं देखा जा सक्ता। इस प्रकार करुणा भाव धारणकर उन योगिराजने अपने बाएं पैरके अंगूठेको किंचित नीचे दबाया।

आत्म शक्ति-त्यागकी शक्ति, तपश्चरणकी शक्ति अचिंतनीय है, अनन्त है, अकथ है। जो कार्य संपूर्ण पृथ्वीका अधिपति सम्राट् इन्द्र तथा नरेश्वरोंपर अपनी अखण्ड आज्ञा परिचलित करनेवाला चक्रवर्ति अद्भुत शारीरिक बलसे सांसारिक वीरोंको कम्पित कर देनेवाला अखंड बाहु, अनंत कालमें अगाध उद्योगके द्वारा कर सकनेको समर्थ नहीं हो सकता, वही कार्य और उससे अनंत गुणा अधिक कार्य तपस्वी, महात्मा, योगी दिगम्बर मुनि अपनी बढ़ी हुई आत्मशक्तिके प्रभावसे क्षण मात्रमें कर सकता है। असंख्य संपत्ति शालियोंकी शक्ति, असंख्य राजाओंसे सेवित सम्राट्की शक्ति, असंख्य वीरोंसे सेवित वीरकी शक्ति उस योगीकी अलौकिक शक्तिके सामने समुद्रमें बूंदके समान है।

योगिराजके अंगूठे मात्रके दबानेसे ही अखंड परिश्रम द्वारा किंचित ऊपरको उठाया हुआ पर्वत पातालकोकमें प्रवेश करने लगा। दशाननका समस्त शरीर संकुचित हो गया, पसेवकी धारा बहने लगी, अपनेको पृथ्वीतलपर दबता हुआ देखकर उसका मुख चिंतासे म्लान

हो गया । उसका सारा अभिमान, उसकी सारी शक्ति, उसका समस्त विद्या, बल एक क्षणको कपूरके सदृश हो गया । अभिमानी मानव ! इसी नश्वर वैभवके अभिमानके बल पर, इसी क्षणिक शक्तिके मदमें, इसी किंचित् विद्या बलके ऊपर संसारका तिरस्कार करनेको तुल जाता है । धिक्कार ! तुम्हारी बुद्धिपर, शतबार धिक्कार है ऐसे अभिमान पर । आज वह अभिमान गला फाड़कर रो रहा था । आज उस अभिमानका सर्व नाश हो रहा था ! क्या आज दशाननके उस अभिमान कुमित्रका कहीं पता था !

समस्त मानव मंडल चढ़ता है और गिरता भी है, अभिमानी और निरभिमानी एक दिन समय पाकर सभी गिरते हैं, किन्तु निरभिमानी व्यक्तिका वास्तवमें पतन नहीं होता । उसे खेद नहीं होता । अभिमानी खूब चढ़ता है अपनेको बराबर आगे बढ़ाता है, किन्तु समय पाकर वह चारों खाने चित गिरता है । उसका मन मर जाता है, उसके खेदका कुछ ठिकाना नहीं रहता, और वह असमर्थ होजाता है ।

दशानन पर्वतके भारी भारको अपने सिरसे नहीं हटा सका वह जोरसे चिल्लाने लगा । बड़ा भारी कोलाहल उपस्थित होगया । रोने, उसका गला भर आया, बालिदेव दशाननके करुणाक्रन्दनको सहन नहीं कर सके, उनका हृदय दयासे आर्द्र होगया । उन्होंने उसी क्षण अपने पैरके अंगूठेको ढीला किया, दशानन पर्वतके नीचेसे अपना जीवन सुरक्षित लेकर निकल आया । इसी समय कुबेरादिके तीन स्वस्थानोंसे उत्पन्न हुए वह तेजके प्रभावसे देवताओंमें आश्चर्य उत्पन्न हो रहा ।

उन्होंने स्वर्ग लोकसे आकर ऋषीश्वर वालिदेवको प्रणाम किया। उनकी भक्तिकी और स्थिर चितसे प्रार्थनाकी। वह बोले-ऋषीश्वर! आपके अनन्त तेजका सामना करनेके लिए अभिमानसे गर्वित ऐसा कौन व्यक्ति है जो समर्थ होसके? देव! आपकी आत्मशक्तिकी महिमा अचिन्त्य है। क्षणिक शक्तिके बलसे उद्यत हुए लङ्केशको आप अपनी अनन्त क्षमा वारिसे भरे हुए करुण समुद्रके कुछ कणोंका दान कर कृतार्थ कीजिए। उसी समय "रोतीति रावण:" अर्थात् यह रोता रावण" इस नामसे लंकेश देवताओं द्वारा संबोधित किया गया। देवताओंने वालिदेवकी अद्भुत तपशक्तिका अनुमोदन करते हुए अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया।

रावण भी अपने इस अभिमान कृत्यसे अत्यंत लज्जित हुआ। उसने नम्र भाव धारण करते हुए वालिदेवकी स्थिर चित्तसे वन्दनाकी और अपने अपराधकी क्षमा याचना करते हुए लंकाको प्रस्थान किया।

बालिदेवने तपश्चरणकी अचिन्त्य शक्ति द्वारा अपने समस्त आत्म गुणोंको विकसित किया और पूर्ण सर्वज्ञतासे भूषित होकर अनन्त सुखके स्थान मोक्षको प्राप्त किया।

अखंड आत्म तेजसे विभूषित वह महात्मा वालिदेव हमारे हृदयोंमें दृढ़ धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करें।

[११]

दयासागर नेमिनाथ।

(महादयालु, दृढ़व्रती जैन तीर्थङ्कर।)

द्वारिकाका प्रत्येक द्वार आज वंदनवारोंसे सजाया गया था—प्रत्येक नागरीके मुंहपर आज अपूर्व उल्लास और आनंदकी मुस्कराहट दिख रही थी। उनके सब कार्योंमें आज एक निराली ताजगी छाई हुई थी।

एक आगंतुक व्यक्तिने नगरमें आकर किसीसे पूछा—महोदय! आज नगरमें यह सजावट क्यों हो रही है? मैं अनेकसे पूछता हूं लेकिन मुझे इसका कोई उत्तर नहीं दे रहा है, मालूम होता है किसी चक्रवर्ती सम्राट्का आगमन होता है।

एकने अपनी हंसी रोककर कहा—अरे! तुम [illegible] हो [illegible] नहीं जानते लेकिन तुमसे [illegible] है।

अच्छा मैं तुम्हें सुनाता हूं—आज महाराजा समुद्रविजयके पुत्रजन्म हुआ है उसीका उत्सव मनानेके लिए हम सब व्यस्त होरहे हैं।

शौर्यपुर नरेश महाराजा समुद्रविजय सचमुच ही भाग्यशाली थे। जिनके यहां महायोगी और सामर्थ्यशाली महात्मा अरिष्टनेमिका जन्म हुआ हो वह सौभाग्यशाली क्यों न समझे जांय? ऐसा सौभाग्य किसीके ही पल्ले पड़ता है।

रानी शिवादेवी तो महिलाओंके झुंडसे घिरी हुई अपने सौभाग्य पर फूली नहीं समा रही थीं।

द्वारपर देवाङ्गनाएं नृत्य कर रही थीं, पुरोहित मंगल नाद कर रहे थे और कविगण कविता पाठ द्वारा जनताका मनोरंजन कर रहे थे। बालक अत्यंत प्रभावान था। उसके सुगठित और दृढ़ शरीरको देखकर नेत्र प्रसन्न हो उठते थे। शुभ मुहूर्तमें बालकका नामकरण किया गया और उत्सव समाप्त हुआ।

नेमिनाथ अब सोलह वर्षके हो गए थे। षोड्श कांतिवाले चन्द्रमाकी तरह उनकी शरीर कांति चमक उठी थी।

सवेरेके सुन्दर समयमें वे आज वन विहारके लिए निकले थे उनके साथ और भी बालक थे। वनकी क्रीड़ामें सभी मस्त होरहे थे। सूर्यकी किरणें अब कुछ उष्ण हो चली थीं, वन विहारसे सभीका मन ऊब उठा था। सभी मंडली अब नगरकी ओर चल दी।

मार्गमें श्रीकृष्णकी आयुधशाला थी, वे नित्य प्रति उस आयुधशालाको देखते थे। लेकिन आज उनके हृदयमें आयुशालाके शस्त्र देखनेकी इच्छा हुई। आयुधशालामें श्रीकृष्णजीको प्राप्त हुए अनेक

संपूर्ण शस्त्रोंका परीक्षण कर कुमार नेमि अब चक्रके निकट पहुंच गए थे। अधिकारीका हृदय अब भयसे कांप उठा था। वह सोच रहा था कि कुमार कहीं चक्र घुमानेका प्रयत्न न करें, लेकिन उसका सोचना सच था। महाबलवान योद्धा भी जिसके घुमानेका साहस नहीं कर सकते, उस सुदर्शन चक्रको उठाकर वे अपनी अंगुली पर घुमाने लगे। उनकी अंगुलीका इशारा पाकर वह कुम्हारके चाककी तरह घूमने लगा। अधिकारीके प्राण सूख गए, उसके आश्चर्यका कोई ठिकाना नहीं रहा।

चक्रको घुमाकर उन्होंने उसे उसी स्थल पर रख दिया। अब वे उस धनुषकी ओर बढ़ चले जो श्रीकृष्णजीको देवताओं द्वारा प्राप्त हुआ था, जिसके उठानेका साहस श्रीकृष्णजीके अतिरिक्त और किसीमें नहीं था। अपनी टङ्कारसे प्रलयका नाद करनेवाले और देवताओंका आसन कंपा देनेवाले उस धनुषको उन्होंने अपने दृढ़ हाथोंसे उठाया। उन्होंने उस धनुषको इस आसानीसे उठाया जिस तरह हाथी अपनी सूंडसे वृक्षकी डालीको उठाता है। उसे उन्होंने चलाया और अपनी शक्तिसे पृथ्वी तक झुकाया फिर उसे उन्होंने ठीक जगह पर रख दिया। अब गंडकी नामक वज्र गदाको उठाया और उसे अपनी चंचलतासे साधारण दंडकी तरह आकाश-मंडलमें उछाला। शस्त्रोंका परीक्षण अब समाप्त हो चुका था। वे आयुधशालासे निकलनेवाले ही थे कि उनकी दृष्टि पांचजन्य नामक शंख पर पड़ी। उन्होंने शंखको उठाया और उसे बजाने लगे।

नेमिकुमारके मुंहकी वायुको पाकर शंख भयंकर स्वरसे गूंज उठा, उसके विकराल नादसे दशों दिशाएं ध्वनित हो उठीं।

नरेशोंसे सेवित श्रीकृष्णजी अपनी राजसभामें बैठे हुए थे। शंखके भयंकर नादने अचानक ही उनके कानोंमें प्रवेश किया। शंखनाद सुनकर उनका हृदय क्रोधके प्रचण्ड वेगसे भर गया, अपने क्रोधके आवेशको वे नहीं रोक सके और तीव्र स्वरसे बोले—'मृत्यु मुखमें प्रवेश करनेवाले किस मूर्खने मेरा शंख बजानेका साहस किया है। मालूम पड़ता है वह अपने प्राणोंका मोह छोड़ चुका है।' वे क्रोधित होकर अपने सिंहासनसे उठे और सेनापतिको अपनी प्रबल सैन्यसे सन्नद्ध होनेका हुक्म दिया। उनके नेत्र क्रोधसे अरुण वर्ण होचुके थे, भृकुटि ऊपरको चढ़ गई थी और ललाट चौड़ा होगया था। यमराजकी तरह वे अपराधीको दंड देनेके लिए आगे थे। इसी समय भयसे कांपता हुआ आयुधशालाका अधिकारी उनके सामने आया। उसने चरणोंमें गिरकर बड़ी दीनवाणीसे [illegible]— महाराज! आज सवेरेसे ही कुमार नेमिनाथने आयुधशालामें प्रवेश करके मेरे रोकनेपर भी शस्त्रोंका प्रयोग किया। उन्होंने चक्रको घुमाया, धनुषको चढ़ाया, गदाको उठाया और शंखके भीषण नादसे पृथ्वीको पूरित कर दिया है। राजकुमार होनेके नाते मैं उनका हाथ नहीं रोक सका, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है।

अधिकारीके मुंहसे कुमार नेमिनाथके अतुलित बल और वीरताकी बात सुनकर वे कुछ क्षणको विचार-सागरमें डूबे रहे। वे सोचने लगे—ओह! कुमार नेमिनाथ बड़े बलिष्ठ हैं, इनकी यह शक्ति कभी मेरे लिए भयंकर हानिकर हो सकती है, संभव है इनकी दृष्टि कभी राज्य शासनकी ओर जावे तब मैं [illegible]

रहना भी कठिन हो सकता है। "वीर भोग्याः वसुंधराः" की नीतिके अनुसार कभी वह इस राज्यपर अधिकार कर सकते हैं। तब मुझे इसके प्रतिकारके लिए अवश्य ही कुछ करना चाहिए, वे यह सोच ही रहे थे, इसी समय अपने सखाओंके साथ कुमार नेमिनाथ उनकी ओर आते दिखलाई दिए।

श्रीकृष्णजी अपने मनके क्रोध और ईर्षाके भावोंको रोक कर प्रसन्न हृदयसे उनसे मिले। उन्हें योग्य आसन पर विठला कर बोले–कुमार! आज तो आपने मेरे हृदयको बड़ा शंकित बना दिया था। शंखध्वनि सुनकर तो मैं सचमुच ही चौंक पड़ा था, वास्तवमें आप बड़े शक्तिशाली हैं, आपकी इस शक्ति और पराक्रमको देखकर मेरा हृदय अभिमानसे दुगुना फूल उठा है, मुझे आपके अतुलित बलशालि होनेमें कुछ संदेह नहीं है लेकिन सभाके सभी सभासद आपकी शक्तिको प्रत्यक्ष रूपमें देखना चाहते हैं। इन लोगोंके विश्वासके लिए क्या आप अपनी शक्तिका प्रदर्शन करेंगे?

नेमिनाथजीको इस तरहकी बात सुननेकी स्वप्नमें भी आशा नहीं थी। वे भाई कृष्णके अंदर छिपे हुए रहस्यको समझ गए, लेकिन उसे टालते हुए वे बोले–भाईजी! आप मेरी शक्तिका इस तरह सर्वजनोंके सामने प्रदर्शन देखना चाहते हैं, आपकी आज्ञासे मैं यह सब दिखलानेको तैयार हूं लेकिन इस प्रदर्शनसे आपको लाभ होनेकी अपेक्षा नुकसान ही अधिक होगा; यदि इस पर भी आपकी उत्कट इच्छा हो तो आपकी आज्ञाका पालन मुझे करना ही होगा।

श्री कृष्णजी तो आज उनकी शक्तिका अनुमान करना ही चाहते

उनकी अंगुली पर झूलते हुए देखा—दर्शकोंके आश्चर्यकी अब सीमा नहीं रही, उन्होंने अपने दांतोंके नीचे अंगुली दबाकर इस मुग्धकारी प्रदर्शनको देखा—वे एक क्षणको आत्मविस्मृत होकर सोचने लगे—ओह ! इतनी शक्ति ! इतना पराक्रम ! क्या हम लोग जागृतिमें हैं अथवा स्वप्नमें ? इस सुकुमार शरीरमें इतनी शक्तिकी कभी कल्पना की जा सकती थी । वास्तवमें इस सारे संसारमें नेमिनाथ अपनी शक्तिमें अद्वितीय हैं ।

शक्ति प्रदर्शन समाप्त हुआ । श्रीकृष्णजीको हृदय पर इस शक्ति प्रदर्शनसे गहरी चोट लगी । बहुत प्रयत्न करके रोकने पर भी अपने चेहरे परके निराशाके भावोंको वे नहीं रोक सके । उनका चमकता हुआ चेहरा एक क्षणको मलिन पड़ गया । एक गहरी निराशाकी सांस लेकर उन्होंने अपने मनमें कहा—'अब सचमुच ही मेरे राज्यकी कुशल नहीं है' उनके निकट ही खड़े हुए बलभद्रजीने उनकी भावनाको समझा । वे बोले—भाई कृष्ण ! आप अपने हृदयकी चिंता त्याग दीजिए, आप जो सोच रहे हैं वह कभी नहीं होगा । कुमार नेमिनाथ तो बालकपनसे ही वैरागी हैं, भला एक वैरागीको राज्यपाटसे क्या मतलब है ?

बलभद्रजीके संबोधनसे श्रीकृष्णजीके हृदयका भय कुछ कम हुआ । उन्होंने संतोषकी सांस ली और नेमिनाथजीके प्रति अपना पूर्ववत् प्रेमभाव प्रदर्शित किया ।

सभा विसर्जित हुई । श्रीकृष्णजी अपने राज्यमहलकी ओर चले लेकिन राज्य सभाका वह दृश्य उनके नेत्रोंके साम्हने घूम रहा

बुलानेका कारण बतलाती हुई वे प्रेमभरे स्वरमें श्रीकृष्णजीसे बोली–पुत्र ! तुमसे यह बात अपरिचित नहीं होगी कि कुमार नेमिनाथ अपने विवाह सम्बन्धके लिए किसी तरह भी तैयार नहीं होते, और विवाहके विना फिर आगे कुलकी मर्यादा कैसे स्थिर रहेगी ? तुम सम्पूर्ण कलाकुशल हो, तुम्हें मेरे मनकी चिन्ता दूर करना होगी, और किसी प्रकार भी कुमारको विवाहके लिए तैयार करना होगा।

माता शिवादेवीकी बात सुनकर श्रीकृष्णजी प्रसन्न हुए, वे भी यही चाहते थे। उन्होंने शिवादेवीसे कहा–माताजी ! आपने मुझसे अबतक नहीं कहा, नहीं तो यह कार्य कबका सम्पन्न होजाता। लेकिन अब भी कोई हानि नहीं है, आप अब निश्चित रहिए। कुमार नेमिनाथका विवाह अब होकर ही रहेगा ! यह कहकर वे राजमहल लौट आए।

मार्गमें चलते२ उन्होंने सोचा, यह ठीक रहा। नेमिकुमारको शक्तिहीन बनानेमें अब कुछ समयका ही विलम्ब है। उनकी शक्ति उसी समयतक सुरक्षित है जबतक वे महिलाओंके मोहसे दूर हैं। मनुष्योंकी महान शक्ति और पराक्रमका ध्वंश करनेवाली संसारमें यदि कोई शक्ति है तो वह एक मात्र स्त्री शक्ति है। जब तक इनके रूपजालमें कोई व्यक्ति नहीं फंसता तब तक ही वह अपने विवेकको सुरक्षित रख सकता है, लेकिन जहां वह इन विलासिनी तरुणी बालाओंके मधुमय हास्य और मधुर चितवनके साम्हने आता है वहां अपना सब कुछ उनके चरणों पर समर्पित कर देता है। संसारमें यदि मानवी शक्ति किसीके साम्हने पददलित और पराजित होती है तो वह नारीकी रूपशक्ति ही है।

ओर मनोहर हास्यकी वर्षा करती हुई मधु मिश्रित स्वरमें बोली—देवरजी ! आप अपना विवाह क्यों नहीं कराते हैं? क्या आपको पुत्रहीन रहना ही श्रेष्ठ है? परन्तु यह याद रखिए पुत्रहीन पुरुषको कभी अच्छी गति नहीं मिलती, पत्नी रहित पुरुषका हृदय निरंतर ही अंधेरेमें भटकता रहता है। गृहिणी रूपी दीपक ही उसके हृदयको प्रकाशमान बना सकता है। क्या आजीवन ही अंधेरे गृहमें आप रह सकेंगे।

इसी समय हास्यकी मूर्ति बनी हुई दूसरी रमणीने कहा—बहिन ! पत्नीकी कामनाएं तृप्त करना भी तो कोई सरल कार्य नहीं है, गृहिणीका बोझ उठाना अपने सिरपर एक महान् कर्तव्य भार लेना है, यह कार्य अकर्मण्य पुरुषोंके वशका नहीं है, इसके लिये पुरुषार्थ भी तो चाहिये।

तीसरी रमणीने व्यङ्गके स्वरमें कहा—बहिन ! यह बात तुमने ठीक कही, पुरुषार्थ कहीं मांगनेसे थोड़े ही मिलता है। वीर पुरुष ही नारीको अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। इतना आकर्षण यह कहांसे लायेंगे।

बहिन, यदि ऐसा है तब भी कोई हानि नहीं है, यह विवाह करलें, विवाह किसी तरह हो ही जायगा। जब इनके भाई बत्तीस हजार वनिताओंका निर्वाह करते हैं तो क्या यह एकका भी नहीं कर सकेंगे? प्रथम महिलाने फिर कहा—बहिन ! यह तो सब ठीक है परन्तु इसके लिए शारीरिक शक्ति भी तो होना चाहिए नहीं तो विवाह जैसे मंगल कार्यके लिए कौन अस्वीकार करता है? पहलेके सभी महातीर्थ पुरुषोंने भी तो विवाह किए हैं, और फिर संसारका त्यागकर

निकल ही नहीं सकता। वह उनकी कूटनीतिके जालमें शीघ्र ही आजाता है। वे महिलाएं भी उसे अपने कौशलकी डोरमें बंधा देखकर बहुत प्रसन्न होती हैं और अपनी सफलता पर फूली नहीं समातीं। उसका प्रतिफल कुछ भी हो इसकी ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

सरल-हृदय मानव उनकी कुटिलताको नहीं समझता और उनकी प्रसन्नताके लिए उसे कभी २ अपने महान् विचारोंका भी बलिदान कर देना होता है और इस तरह मजबूरीमें पड़कर अपने मनोगत विचारोंके प्रतिकूल आचरण करनेके लिए उसे जबरदस्ती तैयार होना पड़ता है। साधारण व्यक्तियोंकी तो बात ही क्या है, आत्म-कल्याणके पथपर आरूढ़ हुए महापुरुषोंको भी वे अपने विनोदका लक्ष्य बनाकर अपना प्रभाव डालनेसे ही नहीं चूकतीं और अपने प्रयत्नको सफल बनाकर ही छोड़ती हैं।

नेमिकुमारकी मुसकान मात्रसे ही उन विनोदमग्ना महिलाओंने अपने प्रयत्नको सफल समझा। जलक्रीड़ा समाप्त हुई, सभी रानिएं प्रसन्न हृदयसे राजमहलमें पहुंची। उन्होंने बड़े महत्वके साथ ही कृष्णजीसे कहा—"नेमिकुमारजीको हमने विवाहके लिए तैयार कर लिया है, आप उनके लिए किसी योग्य कन्याका प्रबंध कीजिए" श्री कृष्णजीको उनकी इस सफलता पर बहुत प्रसन्नता हुई, वे उसी समय माता शिवा-देवीके पास गए और यह सुसंवाद उन्हें सुनाया। उनके हर्षका अब कोई पार नहीं था। उन्होंने भी श्री कृष्णजीसे योग्य कन्या निर्वाचनके लिए कहा।

मथुराके नरेश उग्रसेनकी परम सुन्दरी कन्या राजमती थी, वह

वैवाहिक संबंध न होनेके कारण ही आजकलका गृहस्थ जीवन श्मशान तुल्य बना हुआ है, और देश तथा समाजकी जागृत मूर्तियां–ये युवक युवतिएं अपने जीवनसे निराश बनी हुई हैं।

महाराज उग्रसेनने अपनी कन्या राजमतीके लिए अनेक वरोंकी खोज की थी, लेकिन उन्हें राजीमतीके अनुरूप एक भी वर पसंद नहीं आया। उनकी खोज अब भी चालू थी। वे अपने प्रयत्नमें हताश नहीं हुए थे।

श्री कृष्णजी आज कुछ चिंतामग्न थे। वे नेमिकुमारका संबंध किसी रूप गुण सम्पन्न योग्य कन्यासे करना चाहते थे। अपनी इस चिन्ताको उन्होंने महारानी सत्यभामा पर विदित किया। सत्यभामाने कुछ विचार करते हुए कहा—आपकी इस गुत्थीको मैं शीघ्र ही सुलझाए देती हूं, मेरी छोटी बहिन राजीमती देव कन्याके समान रूपवती और सर्व-गुण-सम्पन्न है, वह कुमार नेमिनाथजीके लिए सर्वथा उपयुक्त है, आप उसीके साथ इनका विवाह कर दीजिए, महाराज उग्रसेन इस संबंधसे बहुत संतुष्ट होंगे। मुझे आशा है, आप इस संबंधसे अवश्य सहमत होंगे। आप शीघ्र ही जाइए और उग्रसेन-जीसे राजीमतीकी याचना कीजिए।

सत्यभामाकी यह सम्मति श्री कृष्णजीको पसंद आई। वे उसी समय मथुराके लिए चल दिए।

महाराज उग्रसेनने श्री कृष्णजीका भलीभांति स्वागत किया फिर उन्हें अपने राजमहलमें लेजाकर उनके यहां आनेका कारण पूछा।

श्री कृष्णजीने कहा—महाराज! मैं आज आपके पास एक

राजयभवनकी शोभा अवर्णनीय थी। सिद्धहस्त चित्रकारोंने भवनकी दीवालपर अनेक प्राकृतिक दृश्योंको चित्रित किया था, महलकी मोहकताको दूरसे ही देखकर कुमार अपने सारथीसे बोल उठे-सारथी ! यह इन्द्रभवनकी प्रभाको जीतनेवाला और जिसकी चमकके आगे नेत्र स्तंभित होजाते हैं, यह विचित्र राजमहल किसका है? सारथीने मृदुहास्ययुक्त कहा-कुमार ! अपनी सुन्दरतासे, शची और किन्नरीके सौन्दर्यको जीतनेवाली देवी राजीमतीके पूज्य पिताजीका यह उत्तुंग राजमहल है। सारथीकी बात सुनकर एक क्षणको ठहर कर वे उस राज्य महलकी शोभा देखने लगे।

महलके झरोखोंमें समवयस्क सखियोंके समूहसे विभूषित कुमारी राजीमतीने अपने होनेवाले जीवन-सर्वस्व नेमिकुमारकी अकृत्रिम रूपराशिका दूरसे ही निरीक्षण किया। हर्ष, लज्जा और आनंदके वेगसे उसका हृदय परिपूर्ण होगया, सखी मंडलने अपने विनोदके लिए यह उपयुक्त समय समझा। उनमें विनोदकी धारामें तीव्र गतिसे बहनेवाली एक सखीने कहा—

अहा ! राजीमती बड़ी सौभाग्य शालिनी है, जिसने त्रैलोक्यके नेत्रोंको हर्षित करनेवाले नेमिनाथजीको अपने सौन्दर्य पर आकर्षित किया है, ऐसा सौभाग्य किसी विरली ही महिलाओंको प्राप्त होता है, राजीमती ही इस तरहके विरक्त और योगी पुरुषको अपनी ओर खींच सकती थी, मैं सब सखी मंडलकी ओरसे इस कार्यके लिए इन्हें धन्यवाद देती हूं। सखीके इस विनोदमें अपना स्वर मिलाती हुई दूसरी सखी बोली-बहिन ! विधाताने ही पूर्वजन्मके संयोगसे इन

विवाहके लिए ये इकट्ठे हुए हैं ? यह कैसे हो सकता है, तुम ठीक ठीक और सच सब हाल सुनाओ।

सारथीने निर्भय होकर कहा—महाराज ! आपके विवाहमें शामिल होनेके लिये बहुतसे म्लेच्छ राजालोग आए हुए हैं, और उनमें बहुतसे लोग मांस खाने वाले भी हैं।......................

नेमिकुमार बोले—सारथी, बोलते जाओ, तुम बीचमें क्यों रुक गये ? सारथीने कहा-महाराज ! उनके मांस भोजनके लिए ही इन पशुओंको मारा जायगा।

नेमिनाथका हृदय भर आया। वे बोले:—सारथी ! यह तुमने क्या कहा ? मेरे विवाहके लिए उन बेचारे गरीब जानवरोंको मारा जायगा ?

सारथीने फिर कहा:—महाराज ! हां, इनको मारा जायगा। आप दयालु और करुणामय हैं, इसलिए आपको आया हुआ जानकर यह आपसे विनती करनेके बहाने चिल्ला रहे हैं।

नेमिनाथने दयापूर्ण स्वरसे कहा:—ऐ सारथी ! मेरे विवाहके लिए ये गरीब प्राणी मारे जायेंगे, इस लिए यह मुझसे विनती करने आए हैं, सारथी ! क्या यह सब सच है ?

सारथी बोला:—हां महाराज ! श्री कृष्ण महाराजकी ऐसी ही आज्ञा है, उनके वचनोंको कोई टाल नहीं सकता।

नेमिनाथने फिर कहा:—सारथी ! क्या श्री कृष्णजीकी ऐसी ही आज्ञा है कि मेरे विवाहके लिए यह बेकसूर पशु मारे जांय और उसकी इन आज्ञाको कोई टाल नहीं सकता ?

सारथी बोला—हां महाराज ! वह चक्रवर्ती राजा है, उनकी आज्ञाके खिलाफ यहांपर कोई आवाज नहीं उठा सकता।

जायगी ? क्या गरीब, बेकसूर जानवरोंकी हत्या करना ही मनुष्यकी बहादुरी है ? धन्य है इनकी बहादुरीको। सिंह और बाघको देखकर यह दूर भाग जायेंगे और गरीब जीवोंकी इस प्रकार हत्या करेंगे क्या गरीब ही इनका अपराधी है ? मैं इन्हें अभी छोड़े देता हूं।

कुमार नेमिनाथने बाड़ाका दरवाजा खोल दिया। सभी जानवर अपनी २ जान लेकर मौतके पिंजड़ेसे निकले और नेमिकुमारको आशीर्वाद देते हुए जंगलमें अपनी२ जगहको चल दिए।

नेमिनाथने कहा—जाओ गरीब प्राणियों जाओ, अपने बच्चोंसे मिलो। आनंदसे घूमो और सुखसे अपने जीतको व्यतीत करो।

मेरे विवाहके कारण तुम्हें इतनी तकलीफ सहन करना पड़ी, इतना दुःख भोगना पड़ा इसके लिए मुझे माफ करना। गरीब जानवरों! इसमें मेरा कुछ भी कसूर नहीं है, मुझे तुम्हारी इस मुशीबतका कुछ भी पता नहीं था, ओह! मनुष्यजाति दूसरोंके प्राणोंकी कुछ भी कीमत नहीं समझती। मनुष्योंको इस स्वार्थके लिए धिक्कार है और उस मतलबी संसारको धिक्कार है जिसमें मनुष्य ऐसे निर्दय काम करता है।

सारथी मेरा रथ घरकी ओर ले चलो।

सारथीने कहा—महाराज! यह क्यों ? बरातके लोग आ रहे हैं महाराजा उग्रसेन आपके आनेकी बाट देख रहे होंगे। नेमिनाथने विरक्त होकर कहा—नहीं सारथी, मेरा रथ लौटा दो, अब मैं अपना विवाह नहीं करूंगा, मेरे विवाहके लिए इतनी जीव हिंसा होरही हो मैं नहीं देख सकता। मैं संसारको दयाका उपदेश दूंगा, मैं संसारके

ओर देखो! क्या हो रहा है? उनका रथ राज्यमहलके द्वार तक आकर क्यों वापिस लौटा जारहा है? अरे! यह कैसा दुर्भाग्य है वह मुझसे विमुख होकर क्यों जा रहे हैं? क्या मुझसे उनका कोई अपराध बन पड़ा है? हा दैव! तेरा यह कैसा कुटिल चक्र है, वह मेरे प्राणाधार मेरे जीवन सर्वस्व क्यों रुष्ट होकर चल दिए? आहा! अब मैं क्या करूं? उसने अपनी सखी चन्द्राननाको शीघ्र ही रथ लौटानेके कारणका पता लगाने भेजा। वह शीघ्र ही उस स्थान पर गई, वहां जाकर उसने संपूर्ण व्यवस्था जान ली, वह लौटकर आई और राजीमतीसे कहने लगी—प्रिय सखी! बड़ा अनर्थ होगया। कुमार नेमिनाथ रथ लौटाकर चले जारहे हैं, वे अब नहीं लौटेंगे। राजीमतीने बड़ी उत्सुकताने पूछा—बहिन! क्या तू यह सच कह रही है? बोल! ऐसा क्या कारण हुआ जिससे वे वापिस जारहे हैं?

चन्द्राननाने कहा—सखी सुन! कुमार नेमिनाथजीका रथ जब उस स्थान पर पहुंचा जहां मूक पशु बद्ध थे, तो मृत्युके मुखमें जानेवाले उन पशुओंके समूहने कुमार नेमिनाथके सन्मुख करुणा पूर्ण स्वरसे रुदन किया, उनमेंसे एक हरिण बधिकको संबोधित कर कह रहा था, हे बधिक! विपत्तिमें साथ देने वाली यह हरिणी मुझे अत्यंत प्रिय है, इसलिए उसका वध करनेके पहिले ही तू मेरा वध कर डाल, क्योंकि उसकी मृत्युको मेरे नेत्र नहीं देख सकेंगे। उसकी यह बात सुनकर हरिणी कह रही थी, स्वामी! आप मेरे वधकी चिंता न कीजिए, अब मेरा वध नहीं होसक्ता। वह देखो करुणासे पूर्ण हृदय कुमार नेमिनाथ त्रैलोक्यके रक्षक आरहे हैं, वह समस्त प्राणियोंके

माता शिवदेवीके स्नेहसने सरल शब्द सुनकर कुमार नेमिनाथ बोले—प्रिय जननी ! मैं जानता हूं कि आपका हृदय पुत्र-प्रेमसे पूर्ण है, लेकिन अब आपको मोहका यह स्वप्न भंग करना होगा। मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद होरहा है कि मैं, अब आपके इस आग्रहको स्वीकार नहीं कर सकूंगा। अब मैं इस सांसारिक विवाहके बंधनमें नहीं फंसूंगा। अब तो मेरा विवाह उस अद्वितीय मुक्ति-रमणीसे ही होगा जिसकी उपासनामें मेरा मन सदैव तन्मय रहता है। मां, यह वैवाहिक संबंध तो क्षणिक है, संसारमें भ्रमण करते हुए हमने कितने विवाह संबंध नहीं किए ? लेकिन उनसे कभी हमें तृप्तिका अनुभव हुआ है ? हमने कितने महोत्सवोंके क्षणिक सुखोंका अनुभव किया है लेकिन दो दिनके लिए मनमें कुछ क्षणिक उल्लास आनेके अतिरिक्त और उनसे क्या हुआ है ! मां, यह सभी संबंध क्षणिक और नश्वर हैं फिर इन संबंधोंको जोड़ना ही क्यों ? मां मेरे ममत्वका बंधन टूट चुका है, अब मैं फिर उसे जोड़कर गांठ नहीं डालना चाहता। यदि आपको मुझसे वास्तविक प्रेम है और मेरा कुछ भी कल्याण यदि आप चाहती हैं तो इस विवाह संबंधके लिए अब आप मुझसे कुछ भी मत कहिए। क्योंकि मैं जानता हूं कि आपका कथन सब बेकार जायगा।

स्नेहशीला माता-पिता और अन्य स्नेही जनोंके समझानेका जब कुमार नेमिनाथके हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तब उनके हृदयमें ममत्व भाव उत्पन्न करनेके लिए कुछ सखियोंने राजीमतीको उनके निकट भेजा। राजीमतीके लिए यह समय उसके जीवन मरणका

प्राणेश्वर ! अपने हृदयके करुणा द्वारको खोलिए मेरी मूक आवाजको उसमें प्रवेश करने दीजिए । अपने हृदयको इतना कठोर मत बनाइए । अपने रथको फिरसे राज्यमहलकी ओर लौटाइए और मुझे अपनाकर अपनी दयालुताका परिचय दीजिए ।

राजीमतीके हृदय-द्रावक करुण और स्नेह भरे वचनोंका नेमिनाथके विरक्त हृदय पर चिकने घड़ेपर पानीकी बूंदकी तरह कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । वे अपने निश्चयसे थोड़ासा भी चलित नहीं हुए । उसकी सभी प्रार्थनाओं और अभिलाषाओंको ठुकराते हुए वे दृढ़ताके स्वरमें बोले-राजीमती ! मानवोंका यह सांसारिक मोह ही उन्हें आत्म कल्याणके पथसे दूर ले जाता है । इस मोहकी मदिराका नशा बड़ा भयानक होता है । यह नशा मानवकी अंतरंग विवेक-शक्तिको खो देता है । इसको पीकर मानव अपनी चेतना शक्तिको भूल जाता है और वासनाका दास बनकर उसके चरणोंपर अपने मस्तकको झुका देता है ।

मैं अनादिसे मोहकी तीव्र शराब पीकर विजय प्रेतोंके हाथोंका खिलौना बना हुआ था । सौभाग्यसे आज मेरा नशा भङ्ग होगया है । आज मैंने अपने आपको समझा है । मैंने अपने चैतन्यको जागृत कर लिया है । अब तुम मुझे फिरसे उस मोहके बन्धनमें डालनेका असफल प्रयत्न मत करो । अब मैं पूर्ण जागृत हूं । तुम्हारे स्नेह वचनोंका अब मेरी दृढ़ आत्मापर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा । तुम मेरे मिल-नेकी आशा मत करो । राजीमती, बालू पीलनेसे तेल नहीं निकलता, आकाश पुष्पकी कल्पना करना भी व्यर्थ है । अनंत सुख-साधनके

यदि वह शुष्क हृदय तुझे नहीं चाहता तो उसे जाने दे, अभी तो अनेक गुणशाली राजकुमार इस भूमंडलपर हैं। कुमारी कन्याके लिए वरकी क्या कमी और फिर तेरे जैसी सुन्दरी और गुणशीलाकी इच्छा कौन व्यक्ति नहीं करेगा? तुझे अब पागल नहीं बनना चाहिए और अपने हृदयमें नए आनंदको भरना चाहिए।

सखियोंके प्रलोभनपूर्ण वाक्य जालसे अपनेको निकालती हुई राजीमती स्थिर होकर बोली—सखियो! तुम आज मुझे यह क्या उपदेश दे रही हो? मालूम पड़ता है तुम इस समय होशमें नहीं हो। यदि तुम्हे होश होता तो तुम ऐसे शब्दोंका प्रयोग मेरे लिए कभी नहीं करतीं। तुम नहीं जानती, यदि सूर्य कभी पश्चिम दिशामें उदित होने लगे और चन्द्र अपनी शीतलता त्याग दे किन्तु आर्यकुमारिएं जिस महापात्रको हृदयसे एकबार स्वीकार कर लेती हैं उसके अतिरिक्त फिर किसी पुरुषकी स्वप्नमें भी आकांक्षा नहीं करती। मैं नेमिकुमारको हृदयसे अपना पति स्वीकार कर चुकी हूं, क्या हुआ यदि विवाह वेदीके समक्ष उन्होंने मेरे हाथपर अपना हाथ आरोपित नहीं किया। लेकिन उनका अलुप्त हाथ तो मैं अपने मस्तकपर रखकर अपनेको महा भाग्यशीला समझ चुकी हूं। क्या हाथपर अपना हाथ रखना ही विवाह है? मंत्रोंके चार अक्षर ही क्या विवाहको जीवन देते हैं? नहीं, कभी नहीं। हृदय समर्पण ही विवाह है और मैं वह पहिले ही कर चुकी थी। क्या हुआ दुर्भाग्यवश मेरा उनसे संयोग नहीं हो सका। प्रत्यक्षमें व्यवहारिक क्रियाएं नहीं हुई। क्या माता पिता द्वारा कन्यादान करना ही विवाह है? पार्थिव शरीरदान हीको

जीवन उस आदर्शकी ओर अग्रसर हो रहा है, ऐसी स्थितिमें यह कभी भी नहीं हो सकता कि मैं अपने हृदय-सर्वस्वके लिए जो अक्षय प्रेमको स्थापित किए हुए हूं उसे विसर्जन कर दूं ! जो हृदय नेमिकुमारजीके निर्मल प्रेमसे ओतप्रोत होरहा है उसमें अन्य व्यक्तिके लिए कहीं भी स्थान नहीं हो सकता ।

जिन महिलाओंमें आर्यत्व और धर्मत्वका कुछ गौरव नहीं है संभव है वे ऐसा कुछ कर सकें । जिनका लक्ष्य प्राचीन आदर्शकी ओर नहीं है और जो इन्द्रिय वासना तृप्ति तक ही जीवनका उद्देश्य समझती हैं, जो सांसारिक प्रलोभनोंके साम्हने अपने आपको स्थिर नहीं रख सकतीं उनके साम्हने इस आदर्शका भले ही कुछ महत्व न हो लेकिन मेरे साम्हने तो उसका महत्व स्थिर है ।

मैं यह स्पष्ट कह चुकी हूं, मेरा यह निश्चित मत है कि इस जीवनमें श्री नेमिकुमारजीको ही मैंने अपना पति स्वीकार किया है वही मेरे सर्वस्व हैं, वही मेरे ईश्वर हैं उनके अतिरिक्त किसी व्यक्तिसे मेरे संबन्धकी बात जोड़ना मेरे पातिव्रत धर्मको कलंकित करना है । अबतक मैं बहुत सुन चुकी अब भविष्यमें ऐसे शब्दोंको मैं एक क्षणके लिए नहीं सुन सकूंगी । मैं सूचित कर देना चाहती हूं कि कोई भी अब मेरे लिए ऐसे शब्दोंका प्रयोग न करें ।

धन्य ! कुमारी राजीमती ! तेरी अलौकिक दृढ़ताको धन्य है ! तेरा आत्मत्याग महान् है, तेरा आदर्श भारतीय महिलाओंमें अनंतकाल तक जागृतिकी ज्योति जगायेगा ।

वर्तमान कुमारियोंको महासती राजीमतीके इस निर्भय आदर्शसे

कैवल्य प्राप्त होने पर संसारके उद्धारके लिए उन्होंने महान् उपदेश दिया। उनका उपदेश सुननेके लिए श्रीकृष्णजी तथा पांडव आदि राजा आए थे, उन्होंने अनेकांत धर्मका उपदेश दिया। राजा सगरने उनसे आसक्तिके बंधनसे छूटनेका उपदेश सुनना चाहा जिसकी व्याख्या उन्होंने बड़े सुन्दर ढंगसे की—

"सगर!" संसारमें मोक्षका ही सुख वास्तविक सुख है, परन्तु जो धन और धान्यके उपार्जनमें व्यग्र तथा पुत्र और पशुओंमें आसक्त हो रहा है, उस मूर्ख मनुष्यको उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जिसकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त हो उसका मन अशान्त होता है। ऐसे पुरुषकी चिकित्सा करनी कठिन है। स्नेहबंधनमें बंधे हुए अज्ञानीका मोक्ष नहीं हो सकता। अब मैं तुम्हें स्नेहके बन्धनोंका परिचय देता हूं, सुनो! समझदार मनुष्यको ये बातें कान लगाकर और ध्यान देकर सुननी चाहिए। तुम न्यायपूर्वक इन्द्रियोंके विषयोंका अनुभव करके उनसे अलग हो जाओ और आनन्दके साथ विचरते रहो; इस बातकी परवा न करो कि सन्तान हुई है या नहीं? इन्द्रियोंका विषयोंके प्रति जो कौतूहल है, उसे मिटाकर मुक्तकी भांति विचरो और दैवेच्छासे जो भी लौकिक पदार्थ प्राप्त हों, उनमें समान भाव रक्खो—राग-द्वेष न करो। मुक्त पुरुष सुखी होते और संसारमें निर्भय होकर विचरते हैं किन्तु जिनका चित्त विषयोंमें आसक्त होता है वे चींटियों और कीड़ोंकी तरह आहारका संग्रह करते करते ही नष्ट हो जाते हैं। अतः जो आसक्तिसे रहित हैं, वे ही इस संसारमें सुखी हैं, आसक्त मनुष्योंका तो नाश ही होता है। यदि तुम्हारी बुद्धि

"अब आगेकी बातपर भी ध्यान दो—जिसने क्षुधा, पिपासा, क्रोध, लोभ और मोह आदि भावोंपर विजय पा ली है, उस सत्व सम्पन्न पुरुषको मुक्त ही समझना चाहिये। जो मोहवश प्रमादके कारण जुआ, मद्यपान, स्त्री संसर्ग तथा मृगया आदिमें प्रवृत्त नहीं होता, वह भी मुक्त ही है। जो सदा भोगयुक्त होकर स्त्रीमें भी आत्मदृष्टि ही रखता है—उसे भोग्य बुद्धिसे नहीं देखता, वही यथार्थ मुक्त है। जो प्राणियोंके जन्म, मृत्यु और कर्मोंके तत्वको ठीक-ठीक जानता है, वह भी इस संसारमें मुक्त ही है। जो हजारों और करोड़ों गाड़ी अन्नमेंसे एक प्रस्थ (सेरभर) को ही पेट भरनेके लिए पर्याप्त समझता है (उससे अधिक संग्रह नहीं करना चाहता) तथा बड़ेसे बड़े महलमें भी मात्र बिछानेभरकी जगहको ही अपने लिये आवश्यक मानता है, वह मुक्त हो जाता है। जो थोड़ेसे लाभमें ही सन्तुष्ट रहता है—जिसे मायाके अद्भुत भाव छू नहीं सकते, जिसके लिये पलंग और भूमिकी शय्या एकसी है, जो रेशमी वस्त्र, कुशके बने कपड़े, ऊनी वस्त्र और वल्कलको समान भावसे देखता है, संसारको पाञ्च-भौतिक समझता है, तथा जिसके लिये सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, इच्छा द्वेष और भय उद्वेग बराबर हैं, वह सर्वथा मुक्त ही है। जो इस देहको रक्त, मल, मूत्र, तथा बहुतसे दोषोंका खजाना समझता है और इस बातको कभी नहीं भूलता कि बुढ़ापा आनेपर झुर्रियां पड़ जायेंगी, बाल पक जायेंगे, देह दुबला-पतला एवं सौन्दर्य-हीन हो जायगा, कमर भी झुक जायगी, पुरुषार्थ नष्ट हो जायगा, आंखोंमें सूझ नहीं पड़ेगा, कान बहरे हो जाएंगे और प्राणशक्ति

उपदेश होता रहा, स्थान स्थानपर भ्रमण कर उन्होंने प्राणियोंके हृदयकी कलंक—कालिमाको धोया, उनके उपदेशका मानवोंके हृदयपर एकांत प्रभाव पड़ता था, और वे अपने बलको देखकर कुछ न कुछ संयम और त्याग अवश्य ही ग्रहण करते थे, महिलायें और पुरुष समान रूपसे उनके उपदेशका लाभ लेती थीं।

भारतमें कुछ समयके लिये आत्म त्याग और लोककल्याणकी ध्वनि गूंज उठी, संतप्त मानव उससे मीठी शांति और सुखका अनुभव करने लगे। जबतक उनका शरीर शेष रहा उसका एक२ क्षण उन्होंने लोकसेवाके लिए दिया। अपने शरीरका अंत जानकर वे गिरनार पर्वत पर गए, वहां उन्होंने निश्चल समाधि धारणकी और वहींसे निर्वाण प्राप्त किया।

महाराज वासुदेवके राज्यके आधीन ही पोदनपुर नामक एक छोटासा राज्य था। राजा अपराजित महाराज वासुदेवकी आज्ञाके आधीन रहकर वहांका राज्य शासन करते थे। कुछ दिनसे उसके हृदयमें राज्य प्रलोभन तथा अधिकार सत्ताने अपना प्रभाव डाला था, उसनें महाराजा वासुदेवकी आधीनताको अस्वीकार करते हुए उनकी राज्य सीमापर अनेक उपद्रव करना प्रारंभ कर दिया। अपने सैन्य बलसे समीपके अनेक छोटे २ राजाओंको भी उसने अपने आधीन कर लिया था। अनेक राजाओंकी संयुक्त शक्तिसे वह मदोन्मत होउठा और अनेक ग्रामोंपर आक्रमण कर वहांकी प्रजाको कष्ट देने लगा। यह सच है कि क्षुद्र पुरुष थोड़ासा भी अधिकार और वैभव पाकर मदोन्मत्त होजाते हैं, उन्हें अपनी शक्ति, सत्ताका कुछ भी ध्यान नहीं रहता ! वह उच्छृङ्खल होकर अपनी शक्तिको न देखते हुए भी अपनेसे महान पुरुषोंका भी अपमान करने लग जाते हैं। ठीक वही हाल राज्य सत्ताके मदमें चूर हुए अपराजितका भी था।

अपराजितके द्वारा किये गये उपद्रवोंसे प्रजा संतापित हो उठी। उसने महाराजा वासुदेवके पास आकर पुकार की। महाराजा वासुदेवको उसके दमनकी चिन्ता हुई। उसकी बढ़ी हुई संयुक्त शक्तिकी बातें उन्होंने सुनी थीं इसलिए अपने मंत्रियोंसे परामर्श करना उन्होंने उचित समझा।

(२)

आज महाराजा वासुदेवकी राज्यसभा वीर सामन्तोंकी उपस्थितिसे सुशोभित थी। सेनाके प्रधान सेनापति और अनेक युद्ध-विजयी

महाराजाके संदेशको सुनकर शूरवीरोंके हृदयोंमें वीरत्वका संचार होने लगा । उनके प्रत्येक अंग जोशसे फड़कने लगे, किन्तु अपराजितकी बढ़ी हुई शक्तिके आगे उनकी वीरताका उबाल हृदयमें उठकर ही ठंडा पड़ गया, उन सबका उत्साह भंग हो गया ।

सामन्तोंमेंसे किसी एकका भी साहस नहीं हुआ कि जो वीरत्वका बीड़ा उठावे, वे एक दूसरेका मुख देखते हुए मौन रह गए । इसी समय एक सुन्दर कांतिवाले सुगठित शरीर युवकने राजसभाके मध्यमें उपस्थित होकर उस बीड़ेको उठा लिया । समस्त राज्यसभा आश्चर्यसे उस साहसी कांतिवान युवकका मुंह निरीक्षण करनेको उत्सुक हो उठी, किन्तु यह क्या ! उन्होंने देखा यह तो द्वारिकाके युवराज राजकुमार गजकुमार थे । उनके मुखमण्डलसे उस समय वीरताकी अपूर्व ज्योति प्रकाशित होरही थी । साहसके अखंड तेजसे चमकता हुआ उनका मुखमण्डल दर्शनीय था । कुमारने बीड़ेको उठाकर अपने वीरत्वको प्रदर्शित करते हुए दृढ़तापूर्वक कहा—“ पिताजी ! आपके प्रतापके सामने वह कायर अपराजित क्या है ! आपके आशीर्वादसे मैं एक क्षणमें उसे आपके चरणोंके समीप उपस्थित करता हूं । आप आज्ञा प्रदान कीजिए, देखिए आपकी कृपासे वह अपराजित, पराजित होकर आपके चरणोंमें कितना शीघ्र पड़ता है और अपने दुष्कृत्योंके लिए क्षमा याचना करता हुआ नतमस्तक होता है । उसका प्रताप क्षीण होनेमें अब कोई विलम्ब नहीं है केवल आपकी आज्ञाकी ही देरी है ।”

युवक गजकुमारका ओजस्वी उत्तर सुनकर सामन्तगणोंके मुंह

नेकी शक्ति रहती है। मैं इस युद्धमें अवश्य जाऊंगा, मेरे होते हुए आप युद्धके लिए जाएं यह हो नहीं सकता, दृढ़ता पूर्वक प्रण करता हूं, यदि आज ही उस दुष्ट अपराजितको पकड़ कर आपके चरणोंके निकट उपस्थित न कर दूं तो मैं आपका पुत्र नहीं। आज्ञा दीजिए, मेरा समस्त शरीर उस शक्तिहीन अपराजित नामधारी विद्रोहीका दमन करनेके लिए शीघ्रतासे फड़क रहा है।

कुमारके हृदयकी परीक्षा हो चुकी थी, अब उसके वीरता पूर्ण सत्साहसकी प्रशंसा करते हुए महाराज बोले–"वत्स! मैं तुमपर बहुत खुश हूं, तुम जाओ और युद्धकुशल सैनिकोंको अपने साथ ले जाकर उस उद्दण्ड अपराजितको पराजित कर अपनी शक्तिका परिचय दो।"

सैन्य बलसे गर्वित अपराजित उद्दंड बन गया था, वह बड़ी सेना लेकर महाराजा वासुदेवके आधीन एक नगरपर आक्रमण करनेको अग्रसर होरहा था। इसी समय गजकुमारकी संरक्षकतामें युद्ध करनेके लिये सजी हुई एक बड़ी भारी सेनाके आनेकी उसे सूचना मिली।

अपराजितने अपनी शक्तिका कुछ भी ध्यान न रखते हुए, गजकुमारकी सेना पर भीषण वेगसे आक्रमण किया। कुमारकी सेना पहलेसे ही सतर्क थी। उसने अपराजितके आक्रमणको विफल करते हुए प्रचण्ड गतिसे शस्त्र चलाना प्रारम्भ किया। कुमारकी सेनाके अचानक आक्रमणसे अपराजितके सैनिक क्षुब्ध होकर पीछे हटने लगे। अपनी सेनाको पीछे हटते देख अपराजितके क्रोधकी सीमा न रही। वह आगे बढ़कर सेनाको उत्साहित करता हुआ कुमारकी सेना पर तीव्र वेगसे शस्त्रपात करने लगा। गजकुमारने उसके सामने

प्रचण्ड वेगको नहीं सम्हाल सका। उसका हृदय सदाचरणके शिखरसे पतित होने लगा। पतन! ओह! मनुष्य जब पतनकी ओर होता है, जब उसका हृदय वासनाकी तीव्र तरंगोंसे, पूर्ण हो जाता है तब वह लोक मर्यादा, धार्मिक शृंखला तथा गुरुओंकी लज्जा आदि मानव जीवनके सभी उच्च सोपानोंका क्रमशः उल्लंघन कर डालता है और पतनकी पराकाष्ठाको प्राप्त होजाता है। वह विचारशून्य होजाता है। अज्ञानका अंधकार उसके हृदयके विवेक प्रकाशको नष्ट कर देता है और अपने प्रचुर प्रभावसे हृदय-मंदिरको आच्छादित कर लेता है। अनाचारका अकांड तांडव उसके चारों ओर होने लगता है और वह अमानुषिकताके क्रीड़ाक्षेत्रमें निर्लज्जता पूर्वक नग्न नृत्य करने लगता है।

गजकुमारका पतन हुआ-घोर पतन। वह रात दिन रूप, सौन्दर्य और यौवनकी उपासनामें व्यस्त रहने लगा। ऐसा कोई भी अनाचार नहीं था जो उसने न किया हो।

मनुष्योंकी आत्मशक्ति और सच्चरित्रताकी परीक्षा उसी समय होती है जब नष्ट कर देने वाले साधन उपस्थित हों। किसीके आत्मबलका परिचय उसी समय प्राप्त हो सकता है जब कि विषय-संबन्धी संपूर्ण सुन्दर पदार्थ उपस्थित होनेपर और उनके भोगनेकी शक्ति होते हुए भी वह अपनेको स्थिर रख सके। जब मन और इन्द्रियों पर अपना प्रभाव डालनेवाले ऐन्द्रिक विषय-सामग्रियोंकी उपलब्धि होनेपर भी वह अपने मनको, अपनी इन्द्रियोंको संयमित रख सके और अपनेको सच्चरित्रताके सर्वोच्च शिखरपर स्थित रख सके। वह व्यक्ति जो विषय सामग्री, वैभव आदिके अभावसे बड़े भक्त

मात्रसे व्याकुल होने लगीं। कुलीन नागरिक अपनी युवती कन्याओं और सुन्दरी महिलाओंकी धर्म रक्षाके लिए सतर्क रहने लगे, किन्तु मदोन्मत्त गजेन्द्रकी तरह उन्मत्त हुए युवक राजपुत्रकी मदन-लिप्सा, विलास वासना और विषय लोलुपताका वेग कुछ भी कम नहीं हुआ। राजपुत्रके अधिकारोंके तीव्र आतङ्कके आगे प्रजाके लोग चूं तक नहीं कर सकते थे। किसीने यदि उसके सामने अपना सिर उठाया तो राजकुमारके दुश्चरित्र मित्र उसपर अनेक आपत्तियोंका पहाड़ ढा देते थे। बेचारी जनता मूंक हृदयसे उसके राक्षसीय अनाचारको सहन कर रही थी।

(४)

पांसुल सेठ नगरके कुलीन और धनिक नागरिकोंमेंसे था। नगरमें उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थीं। वह बड़ा चतुर, कलाकुशल और सच्चारित्र पुरुष था। उसकी पत्नी सुन्दरी और नव यौवना थी। प्रकृतिने उसके अङ्ग प्रत्यङ्गको बड़ा सुन्दर सुडौल और मोहक बनाया था। वह मधुर भाषिणी और लज्जाशीला भी थी। उसके सुन्दर रूप यौवन तथा मोहकताकी चर्चा राजकुमारके कानोंतक पहुंची तो उसके रूप यौवन पर राजकुमारका मन मचल पड़ा। उसके वियोगमें हृदय बेकल हो उठा। उसने सोचा, पांसुल सेठकी सुन्दरी रमणीका यदि मैं आलिंगन नहीं कर सका तो मेरा जीवन व्यर्थ है। उसका सौन्दर्य मेरे द्वारा अछूता रह सके यह असम्भव है, मुझे उसे प्राप्त करना ही होगा।

दुष्कर्मोंकी पूर्तिके अनेक साधन अनायास ही मिल जाते हैं। सेवा परोपकार और त्यागके लिए सम्भव है आपको ढोल पीटने पर

आधिपत्य और प्रभावकी ओर विचार किया, तब उसका हृदय अत्यंत निराश हो गया। कुछ समयको बदला लेनेकी उसकी भावना बदल गई। बदला लेनेके लिए वह समयकी प्रतीक्षा करने लगा।

(५)

अपने दिव्य ज्ञानकी प्रकाशमयी किरणोंसे मानवोंके हृदय-कमल विकसित करनेवाले भगवान् नेमिनाथके धर्मतीर्थका द्वारिका नगरीमें आगमन हुआ। नगरकी जनता उनका उपदेशामृत पान करनेके लिए उमड़ पड़ी। बलभद्र, वासुदेव और अनेक राजागण हर्ष, भक्ति और उत्सुकताके साथ भगवानके चरणकमलोंकी उपासनाके लिए उनके धर्मतीर्थमें उपस्थित हुए। सभीने अनन्य भक्तिसे उनकी पूजाकी, स्तुति की और उनके महान् गुणोंका गान किया। राजपुत्र गजकुमार भी भगवान्‌के समवशरणमें उनके दर्शन करनेको गया था।

स्वार्थ त्यागी महात्माओंका भाषण पतितसे पतित मानवके हृदयमें अपना अद्भुत प्रभाव डालता है, तीव्र पाप-वासनाओंमें सदा ही संलग्न रहनेवाले व्यक्ति भी एकबार उनकी पवित्र वाणी सुनकर अपनी आत्माको पावन बना लेते हैं। निर्मल आत्मा पातकी व्यक्तिओंकी आत्मा पर भी अपना प्रभाव डाले विना नहीं रहता, इतना ही नहीं, वह उनके सभी अनाचारों और पाप तापोंको एकक्षणमें शीत कर देता है। सच्चारित्रतासे शून्य, विषय पथपर विचरण करनेवाले स्वार्थी मानवोंके कोरे उपदेश, उनकी वाक्यपटुता, शुष्क प्रलापका मानवोंके अन्तस्तल पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन सदाचारी सत्कर्तव्य-निरत महात्माओंकी सीधी सादी सरल बातें मानवजीवन सुधार देती हैं।

भावना थी । वह निष्पृही महात्मा दुखित, संतापित दीन प्राणियोंके लिए वत्सल थे । उनका आत्मा पवित्रताकी चरम सीमाको प्राप्त हो चुका था । उनके दर्शनसे हृदय-कुटिल काम विलास और स्वार्थोंकी आंधीसे हटकर स्थिर, शान्त और सुखमय बन जाता था । फिर उनका पवित्र धार्मिक व्याख्यान, दिव्य चरित्र और आत्म विकासका अलौकिक प्रकाश बढ़ानेवाली दिव्य वाणी, पतितसे पतितका उद्धार करनेके लिए मंत्र रूप थी ।

युवक राजकुमारने दिव्य प्रभासे प्रकाशित उनके मुखमंडलको देखा । हृदयको झन झना देनेवाले भाषणको सुना । सुन कर एक क्षणको वह उसीमें तल्लीन होगया । उसके नेत्र महात्माके मुखमण्डल पर स्थिर हो गए । चित्रकी तरह स्थिर होकर उनके उस अमृतमय उपदेशको एकबार सुना, दो बार सुना और कई बार सुना लेकिन उसे तृप्ति नहीं हुई । काम विकारके पटलसे ढके हुए उसके हृदयपर इस उपदेशका विलक्षण प्रभाव पड़ा । उसके अन्तरसे मदन मदका तीव्र तम अन्धकार विलीन हो गया । विलास मदिराका नशा भंग हो गया । पापाचरणका प्रभाव नष्ट हो गया । उसके अन्तरके ज्ञान-नेत्र खुल गये । उसे अपने किए हुए दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप हुआ, पूर्व पाप स्मरणसे उसका हृदय कांप उठा, पापका मैल उसके नेत्रोंसे अश्रुओंके रूपमें वह कर पृथ्वीतलको प्रक्षालित करने लगा ।

वह विचारने लगा—ओह ! काम पिशाचने मेरी आत्मा पर अपना कितना तीक्ष्ण प्रभाव डाल रक्खा था । उसकी उन्मत्ततामें मत्त मुझ पतितको कार्य अकार्य और अपने भविष्यका कुछ भी ध्यान नहीं रहा ।

किए हुए भयानक पाप फलसे शीघ्र ही सावधान होगया, यह तेरा शुभोदय समझना चाहिए। अब तेरा आत्मकल्याण होनेमें कुछ समयका ही विलम्ब है। तू अपनी आत्माको अब अधिक खेदित मत कर, आत्मामें अनन्त शक्तियां हैं, उसी आत्म-शक्तिके प्रकाश मय पथ पर चलकर तू अपना कल्याण कर।

भक्तवत्सल नेमिनाथकी दयापूर्ण वाणीसे युवक गजकुमारको बहुत संतोष मिला। वह प्रसन्न होकर बोला-भगवन्! आपकी मुझ पापात्मा पर यदि इतनी अनुकम्पा है तो मुझे महाव्रतोंकी दीक्षा दीजिए, जिनसे मैं अपना जीवन सफल कर सकूं।

भगवानने उसे दया करके साधु दीक्षा प्रदान की। काम-तृष्णामें लिप्त हुआ मदोन्मत्त युवक गजकुमार नेमिनाथकी पवित्र शरणमें आकर एक क्षणमें कल्याणके महाक्षेत्रमें उतर पड़ा। उसका पाप पंक धुल गया, वह दीक्षा लेकर भयानक वनमें तीव्र तपश्चरण करने लगा।

(६)

प्रति हिंसा! बदला! आह बदला कितनी भयंकर अग्नि है। ईंधनके अभाव होनेपर अग्नि शांत हो जाती है। किंतु प्रतिहिंसा अग्नि, ओह! वह निरन्तर हृदयमें तीव्र गतिसे प्रज्वलित होती रहती है और प्रतिक्षण बढ़ती हुई अपने प्रतिद्वंदीके सर्व नाशकी बाट देखती रहती है।

अपमानने पांसुल सेठके हृदयमें तीव्र स्थान कर लिया था। वैभवका नष्ट होना मानव किसी तरह सहन कर लेता है,

किए हुए भयानक पाप फलसे शीघ्र ही सावधान होगया, यह तेरा शुभोदय समझना चाहिए। अब तेरा आत्मकल्याण होनेमें कुछ समयका ही विलम्ब है। तू अपनी आत्माको अब अधिक खेदित मत कर, आत्मामें अनन्त शक्तियां हैं, उसी आत्म-शक्तिके प्रकाश मय पथ पर चलकर तू अपना कल्याण कर।

भक्तवत्सल नेमिनाथकी दयापूर्ण वाणीसे युवक गजकुमारको बहुत संतोष मिला। वह प्रसन्न होकर बोला—भगवन्! आपकी मुझ पापात्मा पर यदि इतनी अनुकम्पा है तो मुझे महाव्रतोंकी दीक्षा दीजिए, जिनसे मैं अपना जीवन सफल कर सकूं।

भगवानने उसे दया करके साधु दीक्षा प्रदान की। काम-तृष्णामें लिप्त हुआ मदोन्मत्त युवक गजकुमार नेमिनाथकी पवित्र शरणमें आकर एक क्षणमें कल्याणके महाक्षेत्रमें उतर पड़ा। उसका पाप पंक धुल गया, वह दीक्षा लेकर भयानक वनमें तीव्र तपश्चरण करने लगा।

(६)

प्रति हिंसा! बदला! आह बदला कितनी भयंकर अग्नि है! ईंधनके अभाव होनेपर अग्नि शांत हो जाती है। किन्तु प्रतिहिंसा अग्नि, ओह! वह निरन्तर हृदयमें तीव्र गतिसे प्रज्वलित होती रहती है और प्रतिक्षण बढ़ती हुई अपने प्रतिद्वंदीके सर्व नाशकी वाट देखती रहती है।

अपमानने पांसुल सेठके हृदयमें तीव्र स्थान कर लिया था। वैभवका नष्ट होना मानव किसी तरह सहन कर लेता है,

तरह भी नहीं समझा, वह बड़ी शांति धैर्य और स इन शीलताके साथ अपने आत्म ध्यानमें तन्मय रहे। वास्तवमें शारीरिक सुख दुख केवल मनकी कल्पना है। जिन मनुष्योंको शरीरसे अधिक मोह रहता है, उसीमें विशेष तन्मयता रहती है। जो शरीरके पोषण, संरक्षण तथा उसकी सुन्दरताके प्रतिपादनमें ही लगे रहते हैं, उसे अपनी वस्तु समझते हैं, वही थोड़ासा भी शारीरिक कष्ट होनेपर उसे सहन करनेके लिए कायर होजाते हैं, किन्तु योगी, महात्मा शारीरिक क्रियाओंको–शरीरको अपने आत्मासे पृथक समझते हैं। वह उसे अपनी वस्तु नहीं समझते। उन्हें उससे पूर्ण निस्पृहता होती है। वे कठिनसे कठिन शारीरिक आपत्तियोंमें और ऐसी तीव्र वेदनामें जिसकी कल्पना करते ही कायर मनुष्योंका हृदय भयभीत होजाता है, अपने आत्म ध्यानसे चलित नहीं होते। वह अपने आत्मामें जरा भी दुःखका अनुभव नहीं करते।

योगिराज गजकुमारने उस घोर उपसर्गके सामने ध्यानकी उत्कटतामें तल्लीन रहते हुए अपना देहात्सर्ग किया। परम समाधिके फलसे वे अपने नश्वर शरीरको त्यागकर स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। वहां वह महान् ऐश्वर्यसे परिपूर्ण, दिव्य शरीरको धारण कर दीर्घकाल तक उत्तम सुखका उपभोग करेंगे।

महात्माओंका मन दुःसह कष्ट और उपद्रवके अवसर पर अत्यंत स्थिर रहता है। वह वास्तविक तत्त्वज्ञानको प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्व-ज्ञानकी महत्ताका प्रभाव उनकी समस्त आत्मामें विलक्षणरूपसे परिपूर्ण रहता है। अस्तु, जिन मानवोंको संसार तथा शरीरजनित कठिन

हुए बैठा है । इस अनाचारी पाखण्डीको जरा भी लज्जा नहीं आती ? दुष्टने कैसा कपट वेष बना रक्खा है । मुझे आज अपने अपमानका बदला चुकानेका यहां अच्छा अवसर हाथ लगा है ।"

" बगुला महाराज ! ठहरो, तुम्हें इस धूर्तताका मैं कैसा मजा चखाता हूं । ओह ! यह वही महा पापी है जिसने अधिकार तथा यौवनके मदमें मदोन्मत होकर मेरी पत्नीका........यह वही नारकीय राक्षस है । दुष्ट ! पापी । अनाचारी !..........."

यह कह कर यमराजकी तरह भयंकरताको धारण किए हुए उस निर्दय पांसुलने आत्म चिंतनमें मग्न हुए उन महात्मा गजकुमारके सन्धिस्थानोंमें बलपूर्वक बड़े २ कीले ठोंक दिए और कहा—दुराचारी ! ले उस विषयवासनाका मजा चख । मूर्ख ! आज तेरी वह शक्ति कहां गई ? वह अधिकार कहां गया ? वे तेरे दुष्ट साथी आज कहां गये ? जिनके घमण्ड पर तू फूला हुआ था अकड़ रहा था । उन्हें तकलीफ देकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसी प्रकार कीले लगे हुए छोड़कर हर्षित हृदय अपने स्थानको चला गया ।

(७)

ऋषिराज गजकुमारने अल्प समयमें ही तपश्चरणके प्रभावसे अपनी आत्माके ऊपर पूर्ण दृढ़ता प्राप्त कर ली थी । उन्होंने जैन तत्वोंका पूर्ण तन्मयतासे अभ्यास करके अपनी आत्माको अध्यात्मके रंगमें रंग लिया था । वे आत्मानुभवके पूर्ण उत्कर्षको प्राप्त कर चुके थे । वे सच्चे तपस्वी थे । उन्होंने इस अमानुषिक उपसर्गको तृण चुभनेकी

तरह भी नहीं समझा, वह बड़ी शांति धैर्य औरम इन शीलताके साथ अपने आत्म ध्यानमें तन्मय रहे। वास्तवमें शारीरिक सुख दुख केवल मनकी कल्पना है। जिन मनुष्योंको शरीरसे अधिक मोह रहता है, उसीमें विशेष तन्मयता रहती है। जो शरीरके पोषण, संरक्षण तथा उसकी सुन्दरताके प्रतिपादनमें ही लगे रहते हैं, उसे अपनी वस्तु समझते हैं, वही थोड़ासा भी शारीरिक कष्ट होनेपर उसे सहन करनेके लिए कायर होजाते हैं, किन्तु योगी, महात्मा शारीरिक क्रियाओंको-शरीरको अपने आत्मासे प्रथक समझते हैं। वह उसे अपनी वस्तु नहीं समझते। उन्हें उससे पूर्ण निस्पृहता होती है। वे कठिनसे कठिन शारीरिक आपत्तियोंमें और ऐसी तीव्र वेदनामें जिसकी कल्पना करते ही कायर मनुष्योंका हृदय भयभीत होजाता है, अपने आत्म ध्यानसे चलित नहीं होते। वह अपने आत्मामें जरा भी दुःखका अनुभव नहीं करते।

योगिराज गजकुमारने उस घोर उपसर्गके सामने ध्यानकी उत्कटतामें तल्लीन रहते हुए अपना देहोत्सर्ग किया। परम समाधिके फलसे वे अपने नश्वर शरीरको त्यागकर स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। वहां वह महान् ऐश्वर्यसे परिपूर्ण, दिव्य शरीरको धारण कर दीर्घकाल तक उत्तम सुखका उपभोग करेंगे।

महात्माओंका मन दुःसह कष्ट और उपद्रवके अवसर पर अत्यंत स्थिर रहता है। वह वास्तविक तत्त्वज्ञानको प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्व-ज्ञानकी महत्ताका प्रभाव उनकी समस्त आत्मामें विलक्षणरूपसे परिपूर्ण रहता है। अस्तु, जिन मानवोंको संसार तथा शरीरजनित कठिन

दुःखोंसे बचे रहनेकी इच्छा है, जो निरन्तर आत्म-सुखके आनंदमें निमग्न रहना चाहते हैं, जो घोर आपत्ति दुःख तथा उपसर्गोंके अवसर पर अपने आपको दृढ़ निश्चल रखना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वह यत्नपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्तिका उपाय करें, अपने आपको उत्तम ग्रन्थोंके अध्ययनकी ओर आकर्षित करें और व्यर्थकी बातोंमें, अपनी आत्मशक्तिका अपव्यय न करके ध्यानपूर्वक आत्मतत्त्वका अनुसंधान करें। तभी उन्हें पूर्ण सुख, शांति और आत्मशक्तिकी प्राप्ति होगी।

[१३]

पवित्र-हृदय चारुदत्त

(पतितको पावन बनानेवाले महापुरुष)

(१)

मदिराका प्याला ओठोंसे लगाते हुए चारुदत्तने कहा—प्रिये ! तुम कितनी सरस सुन्दरी हो। यदि इस जीवनमें तुम्हारा संयोग मुझे न मिला होता तो यह मरुस्थल ही बना रहता। मेरे जीवनको हराभरा उद्यान बनानेका श्रेय तुम्हें ही है। तुम्हारा प्रेम कितना उन्मादक है। तुम्हारी रूपसुधाका पान करते करते आँखें तृप्त नहीं होतीं। सचमुच ही तुममें एक विचित्र आकर्षण है।

प्रियतम ! आपके लिए इस नगरमें मेरी जैसी अनेकों दासियां मिल सकती हैं, लेकिन यह मेरा सौभाग्य है जो आपने मुझ दासीको

अपनाया है। सच कहती हूं, आपके प्रेमने मुझ पर कितना जादू डाला है। यह बात जब मैं सोचती हूं तो हृदय पागल हो जाता है। सारा संसार पैसेसे प्रेम करता है, लेकिन आप जानते हो मेरा प्रेम विक्रयकी वस्तु नहीं है। सच्चे प्रेमके बदलेमें अनंत वैभवका भी कुछ मूल्य नहीं होता। मेरे दरवाजे पर कितने ही वैभवशाली नित्यप्रति आते हैं, लेकिन मैं उन्हें ठुकरा देती हूं। कितनी घृणा होती है मुझे उन विलासी कीड़ोंसे? लेकिन अपने मनको मसोसकर रह जाती हूं। सचमुच ही आपके प्रेमके सामने मैं सारे संसारका प्रेम तुच्छ समझती हूं। प्यालेको लबालब भरते हुए वसंतसेनाने कहा।

चंपापुरकी उच्च अट्टालिकाके सजे सजाए कमरेमें यह बातचीत चल रही थी।

यह अट्टालिका नगरकी प्रसिद्ध सुन्दरी वेश्या वसंतसेनाकी थी। चारुदत्त चंपानगरीके प्रसिद्ध श्रेष्ठियोंमेंसे था, वह असंख्य वैभवका स्वामी था। उसके घरमें पत्नी और माता बस यही दो ही प्राणी थे। बचपनसे चारुदत्त संयमी, सदाचारी और पवित्र विचारोंका था। उसके पिताका नाम भानुदत्त और माताका नाम सुभद्रा था। भानुदत्तने अनेक देशोंमें भ्रमण कर व्यापार द्वारा अमित धन कमाया था। उसके वैभवकी कोई कमी नहीं थी। यदि कोई कमी थी तो यही कि वह निःसंतान था, अनेक प्रयत्नोंके बाद बड़ी आयुमें उसे पुत्र दर्शन हुए थे, इसलिए पुत्रपर उसे एकान्त स्नेह था।

यौवन-सम्पन्न होनेपर चारुदत्तका विवाह नगरके प्रसिद्ध श्रेष्ठी सर्वार्थकी सुन्दरी कन्या मित्रवतीसे हुआ था।

पवित्र हृदय चारुदत्त व वेश्यापुत्री वसंतसेना।

मित्रवती गुणशीला और सुन्दरी थी। लेकिन वह चारुदत्तके विकार-शून्य हृदयको अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी थी। पतिका हृदय जीतनेके लिए वह जितने प्रयत्न करती थी सब निष्फल जाते थे। चारुदत्तका हृदय विरक्त साधुओंके संसर्ग और अध्यात्म ग्रन्थोंके अध्ययनसे काम विकार शून्य बन गया था। वासना और इन्द्रिय तृप्तिके लिए उसमें कहीं भी स्थान नहीं था।

माताको चिन्ता थी कि मेरा पुत्र कहीं इसी तरह संसारसे विरक्त रहकर सन्यासी न बन जाय। उसने चारुदत्तके काका रुद्रदत्तसे यह सब कहा और किसी भी तरह चारुदत्तका हृदय गृहस्थ जीवनकी ओर आकर्षित करनेकी प्रेरणा की।

रुद्रदत्त आचरणहीन व्यक्ति था। नगरकी वेश्याओंसे उसका बहु। संपर्क था। वह अपने साथ चारुदत्तको वेश्याओंके निवासस्थान पर ले जाने लगा।

एक दिन वह कलिंगसेना वेश्याके यहां उसे ले गया था, उसकी पुत्री वसंतसेना नृत्य और गानकलामें अत्यंत कुशल थी। यौवनका उन्माद उसके सारे शरीरमें फूट रहा था। उसका सारा शरीर सुडौल था और उसमें एक विचित्र आकर्षण था।

चारुदत्त युवक, धनी और सुन्दर था। वेश्याको इसके अतिरिक्त और क्या चाहिए था, उसने हृदयहारी नृत्य प्रारम्भ किया। उसका आजका नृत्य चारुदत्तके आकर्षणके लिए ही था। अर्द्धमुद्रित नेत्रोंसे देखती हुई वसंतसेनाने अपना मादक नृत्य समाप्त किया। उसके नृत्यमें चारुदत्तके नेत्र और हृदय दोनों आकर्षित हो चुके थे, चारुदत्तका पतन हुआ, वह वेश्याका दास बन गया।

वसंतसेनाकी अट्टालिका ही उसका निवास-स्थान बन गई। पिताके द्वारा उपार्जित अपरिमित धनसे वसंतसेनाका घर भरा जाने लगा।

उसकी पतिपाणा पत्नी कितनी रोई, उसने कितनी प्रार्थनाएं कीं लेकिन चारुदत्तके कामुक हृदयने उनको ठुकरा दिया, माता सुभद्रा आज अपने किए पर पछता रही थी। उसने प्रयत्न किया था, अपने प्रिय पुत्रको गृहजीवनमें फंसानेका, लेकिन परिणाम विपरीत ही निकला। वह गृह-जालमें न फंसकर वेश्याके जालमें फंस गया। चारुदत्तके जीवनके सुनहरे बारह वर्ष वेश्याके अरुण अधरोंपर लुट गए। उसका धन वेश्याके यौवनपर लुट गया। आज अब वह धनहीन था, उसकी पत्नीके बचे हुए आभूषण भी प्रेमिकाके अधर मधु पर बिक चुके थे।

कलिंगसेनाने आज बारह वर्षके बाद अपनी पुत्रीको शिक्षा दी थी। वह बोली-वसंत! अब तेरा यह वसंत तो पतझड़ बन गया, अब इस सूखे मरुस्थलसे क्या आशा है? अब तो यह निर्धन और कंगाल होगया है, अब तुझे अपने प्रेमका प्याला इसके मुंहसे हटाना होगा, अब तुझे किसी अन्य वैभवशालीकी शरण लेनी होगी।

वसंतसेनाका माथा आज ठनका था, वह कलिंगसेनाका जाल समझ गई थी, वसंतसेनाको चारुदत्तसे अकृत्रिम स्नेह होगया, वह उसके वैभव पर नहीं किन्तु गुणोंपर अपने यौवनका उन्माद न्योछावर कर चुकी थी। सरलहृदय चारुदत्तको वह धोखा नहीं देना चाहती थी। उसने कांपते हृदयसे कहा-मां मेरे प्रेमके संबंधमें तुझे कुछ कहनेका अधिकार नहीं है। चारुदत्त मेरा प्रेमी नहीं किन्तु पति है।

वेश्या होकर भी मैंने उसे पति रूपमें ग्रहण किया। उसका हृदय महान है। उसने अपना अपरिमित द्रव्य मेरे यौवन पर नहीं किन्तु निष्कपट प्रेमपर कुर्बान किया, मैं उसके प्रेमसे लहराती लतिकाको नहीं तोड़ सकती।

माने कहा—"वसंत! वेश्याकी पुत्रीके लिए पति और प्रेमके शब्दोंको केवल प्रपंचताके लिए ही अपने मुंहपर लाना होता है, वास्तवमें न तो उसे किसीसे प्रेम होता है और न कोई उसका पति होता है। वेश्या-पुत्री होकर यह अनहोनी बात तेरे मुंहसे आज कैसे निकल रही है? प्रिय वसंत! हमारा कार्य ही ऐसा है जिसे विधिने पैसा पानेके लिए बनाया है, प्रेमके लिए नहीं। यदि हम एकसे इस तरह प्रेम करें तो हमारा जीवन निर्वाह ही नहीं होसकता। मैं तुझसे कहे देती हूं, अब अपने द्वार पर चारुदत्तका आना मैं नहीं देख सकूंगी।"

वसंतसेनाने यह सब सुना था लेकिन उसका हृदय तो चारुदत्त-के प्रेमपर बिक चुका था, वह उन्हें इस जीवनमें धोखा नहीं दे सकती थी, जो कुछ वह कर नहीं सकती थी उसे कैसे करती? जिसके चरणोंके निकट बैठकर उसने प्रेमका निश्छल संगीत सुना था, जिसके हृदयपर उसने अपने हृदयको न्योछावर किया था, जिसके अकपट नेत्रोंका आलोक उसने अपने अरुण नेत्रोंमें झलकाया था, जो सरल स्मृतियां उसके अन्तस्थलपर चित्रित होचुकी थीं उन्हें वे कैसे भुला सकती थी? बस प्रेम दानके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकी।

चारुदत्त अब भी उसी तरह आता था और जाता था। यद्यपि वह निर्धन हो चुका था परन्तु वसंतसेनाके प्रेमका द्वार उसके लिए आज भी उसी तरह खुला था।

कलिंगसेना अधिक समय तक यह सब न देख सकी, एक रात्रिको जब चारुदत्त, वसंतसेनाके साथ गाढ़ निद्रामें सो रहा था, उसने अपने सेवकोंके द्वारा उसे उठवाकर घर भेज दिया।

(२)

चारुदत्तके उन्मादका नशा आज प्रथम दिन ही टूटा था, आज उसकी पत्नीने उसके नेत्रोंमें एक अनोखी ज्योति देखी थी। उसने भी नेत्र भरकर आज अपनी पत्नीके सौन्दर्यका अवलोकन किया था। दोनोंके नेत्र एक विचित्र द्विविधासे भरे हुए थे।

चारुदत्तके हृदय पर वसंतसेनाके प्रेमका आकर्षण अभी था लेकिन उसकी निर्धनताने उसे लज्जित कर दिया था। आज अपना अपार द्रव्य खोकर उसने द्रव्यके मूल्यको समझा था।

दुखी माता और पत्नीने निर्धनतासे संतापित चारुदत्तके हृदयको स्नेहरससे सिंचन किया। उसे अपनी कंगाली खटकी, द्रव्योपार्जनकी चिंताने उसके सोये मनको आज जगा दिया था।

पत्नीके पास छिपे हुए गुप्त धनको लेकर उसने व्यापारकी दिशामें प्रवेश किया। उसने द्रव्य कमानेमें अपना मन और शरीर दोनोंको व्यस्त कर लिया था, लेकिन दुर्भाग्यने उसका पीछा नहीं छोड़ा था। लाभकी इच्छासे उसने व्यापार किया था, लेकिन उसमें वह अपना बचा हुआ सारा धन खो बैठा।

चारुदत्त द्रव्य कमानेके लिये पागल हो गया था। वह अपने पौरुष और साहसकी बाजी धनके लिये लगा देना चाहता था। अपने जीवनको भी वह धनके पीछे खतरेमें डाल देना चाहता था, उसने ऐसा किया भी।

धन कमानेके लिए अपने कुछ साथियोंके साथ वह रत्नद्वीपको चल दिया। मार्गमें जाते हुए उसे तथा उसके साथियोंको लुटेरोंने लूट लिया था। चारुदत्तके पास धन नहीं था इसलिए वे उसे अपने साथ पकड़कर ले गए। वे उसका देवी पर बलिदान कर देना चाहते थे, लेकिन उनके सरदारको उसकी युवावस्था और सुन्दरता पर तरस आ गया, उन्होंने उसे एक भयानक जंगलमें छोड़ दिया।

जंगलमें उसे एक जटाजूट तपस्वीके दर्शन हुए। तपस्वीने उसे अपनी मोहक बातोंके जालमें फंसाना प्रारम्भ किया। वह बोला— "युवक! मालूम पड़ता है, तुम धनकी लालसासे ही जंगलोंमें पर्यटन कर रहे हो, मैं तुम्हें इस चिंतासे अभी मुक्त किए देता हूं देखो! इस जंगलमें एक बावड़ी है जिसमें रसायन भरा हुआ है। उस रसायनको प्राप्त कर लेनेपर तुम चाहे जितना स्वर्ण उससे तैयार कर सकते हो, लेकिन तुम्हें इसके लिए थोड़ा साहस और दृढ़तासे कार्य लेना होगा, मैं तुम्हें एक रस्सेसे बांधकर उस वापीमें छोड़ दूंगा और तुम्हें एक तूंबी दूंगा, पहले एक तूंबी रसायन तुम्हें मुझे लाकर देना होगी इसके बाद तो वैभवका दरवाजा तुम्हारे लिये खुला ही है, तुम चाहे जितना रसायन अपने लिए ला सकते हो।

द्रव्योपासक सरल-हृदय चारुदत्त तपस्वीकी मीठी बातोंमें आ गया, उसने अपनी स्वीकृति दे दी। तापसीके सब पौबारह थे। वह चारुदत्तको वापीके निकट ले गया और उसके गलेमें रस्सी बांधकर हाथमें एक तूंबी देकर उसे वापीमें उतार दिया।

बापी बहुत गहरी थी, उसमें काफी अंधेरा भी था, नीचे उतर

कर उसने ज्योंही तूंबीको वापीमें रस भरनेके लिए डाला उसे किसी व्यक्तिके कराहनेकी आवाज सुनाई दी, भयसे उसके होश गुम होगए। वापीमें पड़े व्यक्तिने बड़े धैर्यसे हाथ हिलाया, वह धीमे स्वरमें बोला—अभागे पथिक! तू कौन है, तेरा दुर्भाग्य तुझे यहां खींचकर लाया है। मैं तेरा हितचिंतक हूं, तूंबी ले जानेके पहिले तू मेरी बात सुनले, इससे तेरा कल्याण होगा।

चारुदत्त वापीमें पड़े व्यक्तिकी बात ध्यानसे सुनने लगा। वह बोला—यह तपस्वी बड़ा दुष्ट है। इसने मुझे तेरी तरह रसायनका लोभ देकर इस वापीमें पटका है। एकबार मैंने उसकी तूंबी भरकर उसे दे दी, लेकिन दूसरीवार जब मैं रसायन लेकर रस्सेसे ऊपर चढ़ रहा था इस निर्दयने रस्सेको बीचमेंसे काट दिया जिससे मैं इस वापीमें पड़ा सड़कर अपने जीवनकी घड़ियां व्यतीत कर रहा हूं, अब मेरी मृत्युमें कुछ समय ही शेष है इसलिए मैं तुझे चेतावनी देता हूं तू इस दुष्टके जालसे शीघ्र निकलनेका प्रयत्न कर।

चारुदत्तकी बुद्धि कूच कर गई थी, वह अपने छुटकारेके लिए कुछ भी नहीं सोच पाता था। उसने करुण होकर अपरिचित व्यक्तिसे ही इस मृत्यु-मुखसे निकलनेका मार्ग पूछा—

अपरिचितने कहा—चारुदत्त! तुझे अब यह करना होगा, तू इस तूम्बीको लेकर उस दुष्ट तपस्वीको दे दे और दूसरी बार जब वह तेरे पकड़नेको रस्सी डालेगा तब उसमें इस बड़े पत्थरको जो मैं तुझे दे रहा हूं बांध देना और तू इस वापीकी उस सीढ़ी पर जो कुछ ऊपर दिख रही है उस पर बैठ जाना, तुझे बंधा देखकर वह दुष्ट

तापस रस्सा काट देगा और तेरी जगह यह पत्थर वापीमें गिर जायगा। इसके बाद मैं तुझे वापीसे निकलनेका उपाय बतलाऊंगा। अब अधिक समय नहीं है, यहीं वह दुष्ट अपनी इस बातको सुन लेगा तो तेरे प्राण बचाना कठिन हो जायगा।

चारुदत्तने तुम्बी रससे भरकर ऊपर पहुंचा दी, तापसी तुम्बी लेकर प्रसन्न हुआ। दूसरी बार चारुदत्तने अपने स्थान पर पत्थर बांध दिया, तापसीने उसे बीचसे ही काट दिया। पत्थर बावड़ीमें गिरा और चारुदत्तके प्राण बच गए।

चारुदत्त अपने प्राणोंको सुरक्षित देख प्रसन्न हुआ, उसने वापीमें पड़े व्यक्तिसे बाहिर निकलनेका मार्ग पूछा, अपरिचितने कहा—संध्या समय इस वापीका रस पीनेके लिए एक बड़ा गोह आता है, आज संध्याको भी वह आयगा। तुम उसकी पूछ पकड़ कर इस वापिकासे निकल जाना, भय मत करना, पूछ मजबूतीसे पकड़े रहना, गोहकी कृपासे तुम वापीसे बाहिर निकल जाओगे।

अपरिचित व्यक्तिके उपकारको चारुदत्त नहीं भूल सका, वह उसकी सहायता करना चाहता था, लेकिन अपरिचित अब मृत्युके सन्निकट था, प्रयत्न करके भी वह उसे बाहिर न निकाल सकता था, उसने णमोकार मंत्र जाप करनेके लिए दिया और उसका महत्व समझाया।

गोहकी कृपासे वह अब वापीके बाहिर था, लेकिन इस भयानक जंगलमें अपना कुछ कर्तव्य नहीं सोच सकता था। संध्या समय हो गया था, वह तापसीकी दृष्टिसे बचना चाहता था, इसलिए वह जंगलमें एक ओर बढ़ चला।

वह आगे बढ़ रहा था, इसी समय सौभाग्यसे उसे रुद्रदत्त दिखा। रुद्रदत्त द्रव्य कमानेकी इच्छासे उस वनसे गुजर रहा था; दोनों आपसमें मिले।

रुद्रदत्तने कहा—चारुदत्त! सुवर्णद्वीप सुवर्णका भण्डार है, मैं वहां जाकर स्वर्ण लाना चाहता हूं। यदि तेरी इच्छा हो, मैं तुझे भी साथ ले चलनेके लिए तैयार हूं। मार्ग कठिन है, कठिनाइयोंका साम्हना करना होगा। द्रव्य जितनी आसानीसे खोया जा सकता है, कमाया नहीं जा सकता। वैभव प्राप्त करनेके लिए यमराजका भी सामना करना पड़ता है। यदि तेरी उत्कट लालसा धनिक बननेकी है तो तू मेरे साथ चल। लेकिन तुझे वही करना होगा जो कुछ मैं कहूंगा।

संपत्तिके विना मनुष्य जीवनका कोई मूल्य नहीं; यह चारुदत्त समझ चुका था। उसने सब कुछ स्वीकार किया।

वे दोनों ऐरावती नदीके उत्तरकी ओर गिरिकूटको पारकर टंकण देशमें पहुंचे। वहां उन दोनोंने दो बकरे खरीदे। दो बकरोंपर बैठकर वे पहाड़ पर चढ़कर उसकी चोटी पर पहुंच गए। चोटी पर पहुंच कर नृशंस रुद्रदत्त बोला—चारु! हमारा अभी अंतिम कार्य शेष है उसे शीघ्र ही समाप्त करना होगा। मैं समझता हूं तेरा करुण हृदय इसे स्वीकार नहीं करना चाहेगा, लेकिन धन प्राप्तिके लिए हमें अपने हृदयके कोमल प्रदेशको कठोरतासे मरना होगा। हमें अब इन बकरोंका वध करना होगा। और इनकी मशक बनाकर इसके अंदर बैठना पड़ेगा। कुछ देर बाद यहां पर भैरूंड पक्षी आएंगे, वे मांसके लोभसे हमारी माथड़ियोंको ले उड़ेंगे और हमें सुवर्णद्वीपमें पहुंचा देंगे।

श्री चारुदत्त मुनि अवस्थामें ।

रुद्रदत्तने यह सब कहा और उत्तरकी प्रतीक्षा किए विना ही उन बेकसूर बकरोंके गले पर छुरी चला दी। चारुदत्तका करुण हृदय इस बीभत्स दृश्यसे कांप उठा। उसने रुद्रदत्तके हाथसे छुरी छीनना चाहा। लेकिन इसके पहले ही वह दोनों बकरोंका वध कर चुका था। रुद्रदत्तके इस कामकी चारुदत्तने भर्त्सना की। हत्या संसारको वैभव पानेकी इच्छा नहीं रखती थी। बकरोंके करुण क्रन्दनसे उसका हृदय घायल हो गया, लेकिन सब प्रयत्न बेकार थे। उसने करुणा करके उन दोनों बकरोंके सामने महामंत्रका पाठ किया, बकरोंने मंत्रको बड़ी शांतिसे सुना, इस कृत्यसे उसके घायल हृदयको कुछ संतोष हुआ।

रुद्रदत्तने दो भांथड़ी बनाई, एकमें वह स्वयं बैठा और दूसरीमें उसने चारुदत्तसे बैठनेको आग्रह किया। चारुदत्त किसी तरह भी चमड़ीके उस थैलेमें बैठनेको तैयार नहीं होता था तब उसने उसे जबरदस्ती उसमें ठूंस दिया और उसके मुंहको सीं दिया।

निश्चित समयपर भेरुंड पक्षी वहां आए। वे उन भाथड़ियोंको अपनी लंबी और मजबूत चोंचसे पकड़कर उन्हें आकाशमें ले उड़े, चारुदत्तने अपने जीवनको कुछ समयके लिए मृत्युके मुंहमें जाते देखा, उसे भय हुआ, क्या पता ये पक्षी निश्चित स्थानमें न ले जाकर आकाश मार्गसे कहीं नीचे गिरा दें तो जीवनकी खैर नहीं।

पक्षी अपने निश्चित स्थानपर पहुंच गए। सुवर्ण द्वीपमें जाकर उन पक्षियोंने भाथड़ियोंको नीचे रख दिया, वे उसके ऊपरके मांसको भक्षण करना चाहते थे। इसी समय रुद्रदत्तने तेज छुरीसे उसे चीर डाला और बाहिर आगया, चारुदत्तने भी यही कार्य किया। अब वे

सुवर्णद्वीपमें थे, सुवर्णद्वीपमें उन्होंने इच्छित स्वर्ण प्राप्त किया, उनकी धन प्राप्तिकी इच्छा वहां जाकर पूर्ण हो गई थी, अनेक कठिनाइयोंके बाद इच्छित वैभव प्राप्त कर वे चम्पापुरको लौट आए।

चारुदत्त अब फिर पहिलेकी तरह अपार सम्पत्तिका स्वामी बन गया था। नगरके श्रेष्ठिमंडलमें उसकी बड़ी साख होगई थी।

अब वह अपने महलमें अपनी पत्नी और माताके साथ रहने लगा था। वसंतसेनासे उसे अब भी उसी तरह स्नेह था, लेकिन उन्मादका नशा उतर चुका था।

वसंतसेना आज भी चारुदत्त पर अपना हृदय न्योछावर करती थी। अपनी मां कलिंगसेनाके अनेक प्रयत्न करनेपर भी उसने किसीको नहीं चाहा था। उसके हृदयपर चारुदत्तके प्रेमकी अमिट छाप थी, मानो उसके अंतस्तल पर उसकी छाया-मूर्ति अंकित होगई हो ऐसा उसे लगता था।

वैभवके नशेमें मत्त अनेक युवक उसके द्वारपर प्रेम-भिक्षा मांगने आए थे। उसकी मधुर मुसकान पर वे अपना जीवन और धन अर्पित कर देना चाहते थे, लेकिन वसंतसेना तो एक ही रंगमें रंगी हुई थी।

राजाका साला वसंतसेनाके प्रेममें पागल बन रहा था। वह उसे किसी प्रकार भी अपने वशमें करना चाहता था। उसने वसंतको धनका लालच और प्रभुताका भय दिखलाकर अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। लेकिन वह वसंतसेनाकी छाया भी नहीं छू सका, अंतमें उसने एक प्रयत्न किया, वह अपने इस प्रयत्नमें सफल भी हुआ।

कलिंगसेना अब वसंतपर प्रसन्न न थी। चारुदत्तसे अब उसे कुछ नहीं मिलता था, वसंतसेना उससे कुछ नहीं लेती थी। राजाके सालेने कलिंगसेनासे मिलकर एक षड्यंत्र रचा।

एक रात्रिको चारुदत्त वसंतसेनासे मिलने आया था। रात्रि अधिक होगई थी, इसलिए वसंतके आग्रहपर उसने आज वहीं शयन करना स्वीकार कर लिया।

समय देखकर कलिंगदत्तने अपने साथियों द्वारा वसंतसेनाका वध करवा डाला—वसंतसेनाने अपने बचनेका काफी प्रयत्न किया। चारुदत्तकी निद्रा भी इसी समय खुल गई थी। उसने रक्षाके लिए अपनी जानको खतरेमें डाल दिया लेकिन वह उसे बचा नहीं सका।

वेश्याका वध करके कलिंगदत्त अपने साथियोंके साथ चला गया था। अब वहां खूनसे लथ पथ वेश्या और चारुदत्त ही रह गए थे। इसी समय कलिंगदत्तके साथ कुछ राज्य कर्मचारियोंने आकर उसे वसंतसेनाकी हत्याके अपराधमें पकड़ लिया।

वसंतसेनाके वधका संवाद नगर निवासियोंने सुना लेकिन यह सुनकर तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, कि वसंतसेनाका वध करते हुए नगरके प्रसिद्ध श्रेष्ठि चारुदत्त पकड़े गए हैं।

आज राज्य दरबारमें वसंतसेनाकी हत्याके अपराधमें चारुदत्त खड़ा था। कलिंगसेना, कलिंगदत्त और अन्य कुछ व्यक्ति साक्षीके रूपमें उपस्थित थे, अपराध स्पष्ट था, इसी समय एक विचित्र घटना हुई।

कलिंगके साथियोंने वसंतसेनाका वध कर डाला था लेकिन

वह मरी नहीं थी, उसके प्राण अभी शेष थे। कलिंगको यह सब मालूम हो चुका था, इसने भय और उत्पातकी आशंकासे उसे एक कोठरीमें बन्द कर दिया।

वसंतसेना उस कोठरीमें बन्द रहते हुए बाहरके लोगोंकी आवाज सुनती थी, उसे यह निश्चित रूपसे मालूम हो गया था कि मेरा प्रियतम चारुदत्त मेरे वधके अपराधमें पकड़ा गया है, उसे यह भी पता लग गया था कि राजा द्वारा आज उसे फांसीका दण्ड दिया जायगा। उसके प्राण अपने प्रियतमको बचानेके लिये तड़फड़ा उठे, परन्तु अपनी असहाय अवस्थाको देखकर उसका आत्मा विफल हो रहा था। अंतमें एक उपाय उसे सूझा। कोठरीके ऊपर एक खिड़की थी, वह किसी तरह उस स्थानपर पहुंची। अब उसने चिल्लाना प्रारम्भ किया, उसकी चिल्लाहट सुनकर एक व्यक्ति उसके निकट आया।

वसंतसेनाके गलेमें एक हार अब भी था। उसने उस हारका लालच देकर उस व्यक्तिसे द्वार खोलनेको कहा। वह अपने प्रयत्नमें सफल हुई, कोठरीका द्वार खुला था।

वसंतसेना अशक्त थी। न्यायद्वार तक जानेकी शक्ति उसमें नहीं थी। लेकिन आज न जाने किसी दैवी शक्तिने उसके अंदर प्रवेश किया था। आज तो यदि उसे सात समुद्र पार करना हो तो वह पार कर जाती ऐसी शक्तिका आवाहन उसने अपनेमें किया था।

चारुदत्तको वसंतसेनाके वधके अपराधमें प्राण दंड दिया जा चुका था। बधिक उसे वध स्थलपर ले जा चुके थे। दर्शकके रूपमें चंपापुरकी समग्र जनता उसके चारों ओर चित्र लिखितसी खड़ी थी।

पत्नी और माता शोक समुद्रमें गोते लग रहीं थी। फांसीका फंदा गलेमें अब पड़ा, कि तब निर्दय—हृदय बधिक चारुदत्तके प्राणोंको कुछ क्षणका विश्राम ही दे रहे थे। इसी बीच बहुत दूरसे हांफती चिल्लाती हुई वसंतसेना दर्शकोंको दिखी। वह अब दर्शकोंके बिल्कुल निकट आ गई थी। बोलनेकी शक्ति उसमें नहीं थी, उसने बधिकोंको हाथके इशारेसे आगे बढ़नेको रोकते हुए एक क्षणके लिए गहरी सांस ली। फिर उसने बधिकोंसे आज्ञाके स्वरमें कहा——

बधिक! श्रेष्ठी चारुदत्तके बंधन खोल दो—वह अपराधी नहीं है। मैं बतलाऊंगी अपराधी कौन है। मुझे राजाके साम्हने ले चलो।

चारों ओरसे हर्षकी ध्वनि उठी। राजाको यह सब मालूम हुआ। वह शीघ्र ही बध स्थलपर आया, वसंतसेनाने कलिंगदत्तको अपने प्राण बधका अपराधी सिद्ध किया। चारुदत्त निर्दोष साबित होकर छोड़ दिया गया।

वसंतसेना अब चारुदत्तके कुटुम्बमें सम्मिलित हो गई थी। चारुदत्तकी पत्नीने अपने हृदयके उच्चतम स्थानमें जगह दी थी। वह उसे अपने प्राणोंसे अधिक प्रिय समझने लगी थी, उसके हृदयका द्वेष भुल गया था, पतिके सिंहासन पर दोनोंका आसन था। किसीको इससे द्वेष नहीं था, अनुताप नहीं था, माताने अपने प्रेमका प्रसाद दोनोंमें पुत्रवधुओंकी भावनाके रूपमें बांटा था।

वसंतसेनाका स्नेह चारुदत्त पर अब चौगुना बढ़ गया था, लेकिन वह स्नेह वासनाका नहीं था, उसमें कोई कामना नहीं थी,

कोई चाह नहीं थी, वह प्रेमोत्सर्ग था, प्रेमोन्माद नहीं । वह प्रेम जीवनके लिए था, विषयके लिये नहीं ।

उसने चारुदत्तके संयोगसे अपना जीवन अब सेवा और त्यागकी भावनाओंको लेकर निर्माण करना प्रारम्भ किया । परोपकार और साधनायें उनके जीवनके ध्येय हो गये ।

वसंतसेनाने अपने आदर्श जीवनसे यह स्पष्ट कर दिया था कि एक वेश्या भी योग्य साधन और सहयोग पाकर अपने आपको उच्च और महान बना सकती है ।

समाज जिसे घृणाकी वस्तु समझता है, जिन्हें केवल काम-पिपासा तृप्ति और अपने मानसिक विनोदका साधन मान लिया है जिसकी ओर समाजकी उदार दृष्टि कभी नहीं जाती वही समाजका पतित अंग साधन मिलनेपर पावन बन सकता है ।

कहते हैं पारसको छूकर पत्थर सोना होजाता है। पारस पत्थरको सोना तो बना देता है लेकिन पारस नहीं बना पाता ।

चारुदत्तने वसंतसेना वेश्याके शरीरका स्पर्श कर उसे वेश्या जैसे घृणित वर्गसे निकालकर पवित्र गृहस्थ जीवनमें ला दिया ।

इतना ही नहीं, उसे गृहस्थजीवनसे वह और ऊंचे लेगए। वे उसके जीवनको अत्यंत पवित्र और लोककल्याणकारी बना देना चाहते थे। पवित्रता और लोककल्याणके बीज वसंतसेनाके हृदयमें उग चुके थे । थोड़ासा जल सींचनेकी आवश्यकता थी, इसके लिए उन्हें स्वयं अपना उत्सर्ग करना था । वे अपना उत्सर्ग करनेके लिए कमर उठे ।

एक दिन उनके हृदयकी पवित्र भावना अन्दर नहीं रह सकी। उनका आकुल अन्तर भी आकुल हो उठा। उन्होंने तपस्वी जीवन बितानेका दृढ़ संकल्प कर लिया।

वसंतसेना अब वह विलासिनी वेश्या नहीं रह गई थी। उसका हृदय धुल गया था। विलासका कीचड़ उसके अंतर्द्वारसे निकल चुका था उसने चारुदत्तके पवित्र विचारोंको जाना।

श्रेष्ठिकपुत्र चारुदत्त और वेश्या वसंतसेना आज तपस्वीकी शरणमें थे। उन्होंने अपने हृदयकी कमजोरीको निकाल डाला था। दोनोंने अपने जीवनको साधुके चरणोंमें अर्पण कर दिया था।
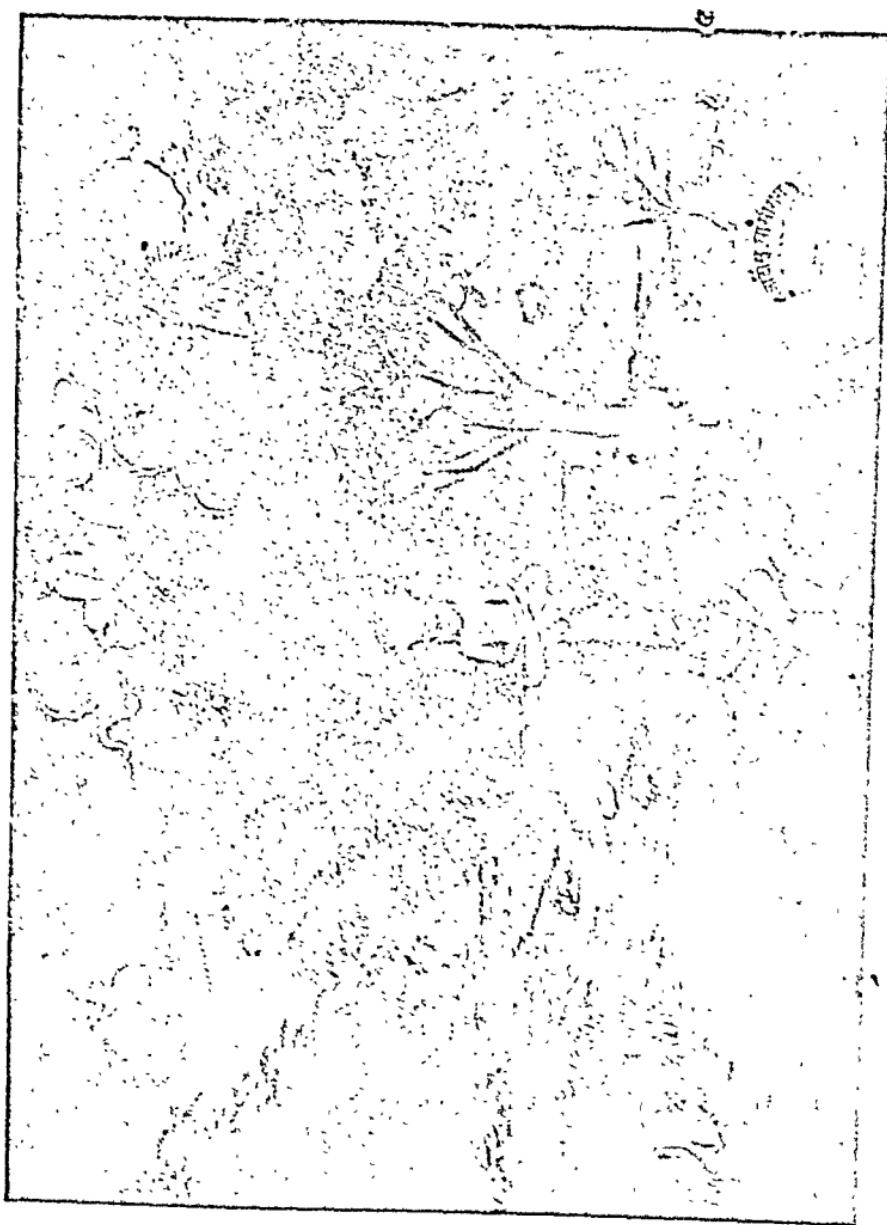
(१४)

आत्मजयी पार्श्वनाथ।

(महान् धर्मप्रचारक जैन तीर्थंकर)

पार्श्वकुमार आज प्रातःकाल ही भ्रमण करके अपने साथियों सहित वापिस लौटे थे। रास्तेमें उन्होंने जटा बढ़ाए और लंगोटी पहिने हुए एक साधुको देखा वह अपनी धूनिके लिए एक बड़े भारी लकड़ेको फाड़ रहा था। एक ओर उसकी धूनि सुलग रही थी। उसकी जटाएं पैरों तक लटक रही थीं। तमाम शरीरमें धूल लगी हुई थी। एक रंगी हुई लंगोटी उसके शरीर पर थी, पास ही मृग छाला और चिमटा पड़ा हुआ था। देखनेसे वह घमंडी मालूम पड़ता था।

पार्श्वकुमार उस तपस्वीके सामनेसे निकले, उसने अपने सामनेसे निकलते हुए देखकर उन्हें बुलाया और बड़े घमंडके साथ बोला— क्योंजी! तुम बड़े घमंडी और दुर्विनीत मालूम पड़ते हो।

श्री पार्श्वनाथको पूर्व वैरीका उपसर्ग व धरणेन्द्र तथा पद्मावती देवी द्वारा उपसर्ग निवारण।

कुमारने सरलतासे कहा:-कहिए। मैंने आपका क्या अपमान किया है?

तपस्वी जरा जोरसे बोला-देखो, मैं तुमसे बड़ा हूं, तपस्वी हूं इसलिये तुम्हें मुझे नमस्कार करना चाहिए था।

कुमार नम्र होकर बोले:-बाबा खाली भेष देखकर ही मैं किसीको नमस्कार नहीं करता, गुण देखकर करता हूं।

तपस्वी क्रोधित स्वरसे बोला:-क्योंजी, क्या मुझमें गुण नहीं है? देखो! मैं रातदिन कठिन तप करता हूं और बड़ी२ तकलीफोंको सहता हूं। मैं बड़ा तपस्वी और महात्मा हूं।

कुमारने फिर कहा:-अज्ञानतासे अपने शरीरको अपने आप दुःख पहुंचाना तप नहीं कहलाता। बड़ी तकलीफें सहन कर लेना भी तप नहीं है। गरीब और निर्धन लोग तो हमेशा ही कठिनसे कठिन तकलीफें सहन करते हैं। जानवर भी हमेशा सर्दी गरमी और भूख प्यासको सहते हैं लेकिन वह तप नहीं कहलाता। यह तो आत्म हत्या है।

तापसका क्रोध और भी बढ़ गया। वह बोला-देखो, मैं आगके सामने बैठा हुआ कितना कठिन योग साधन करता हूं।

कुमार इसी तरह फिर बोले:-आगके सामने बैठना ही तप नहीं है। इसमें तो अनेक जीवोंकी हिंसा ही होती है। बाबाजी, ज्ञानके बिना योग साधन नहीं हो सकता, यह तो केवल ढोंग है।

तापस अपने क्रोधको नहीं रोक सका। वह बोला:-ऐं! क्या कहा! मैं योगी नहीं हूं यह सब मेरा ढोंग है! आगमें जीवकी हिंसा होती है! अरे! तू क्या कह रहा है, मैं चुपचाप तेरी सब बातें सुन

रहा हूं, इस लिए तू बोलता जारहा है। मैं तपस्वी हूं, तू मेरा तनिक भी आदर नहीं करता और उलटा ज्ञान सिखाता है।

कुमारने फिर कहा:—बाबाजी, आप इतने नाराज और क्रोधित क्यों होते हैं ? मैं तो सच सच कह रहा हूं। भस्म लगाने, जटा बढ़ाने, मृगछाला रखनेसे ही कोई योगी नहीं होजाता। योगी बननेके लिए ज्ञान वैराग्य और सच्चे त्यागकी जरूरत है। केवल कपड़े त्याग देनेसे ही कुछ नहीं होता, क्रोध और घमंडका त्याग करने और इच्छाओंका दमन करनेसे ही मनुष्य योगी कहलाता है।

तापसी क्रोधसे जल कर बोला:—तब क्या मैं तपस्वी नहीं हूं ? मूर्ख !........मेरी निंदा कर रहा है। तू छोटासा बालक मुझ बूढ़े तपस्वीको ज्ञान सिखलाता है।

कुमारने फिर उत्तर दिया:—बाबाजी, जरा शान्त रहिए...बड़ा हो या बूढ़ा, ज्ञान किसीकी जागीर नहीं है। उसे तो जो कोई हासिल करता है वही ज्ञानी कहलाता है। ज्ञान रहित बड़ा बूढ़ा अज्ञानी है और ज्ञान रहित तपस्वी भी अज्ञानी है। परन्तु जिसमें ज्ञान हो वह बालक भी ज्ञानी है और वह बड़ेसे बड़े बूढ़े और तपस्वीको ज्ञान सिखलाता है।

तापसीका धीरज टूट गया, वह बोला:—तब मैं अज्ञानी हूं और तू ज्ञानवान् ! बच्चे, मुंह संभाल कर नहीं बोलता ? जानता नहीं, मैं साधु हूं, अभी चिमटोंसे तेरा सारा ज्ञान निकाल दूंगा। बड़ा उपदेशक बन कर आया है मेरे सामने ! अभी बोलना भी तो आता नहीं है और ज्ञानकी बातें बघार रहा है।

कुमार बड़ी नम्रतासे बोले:—बाबाजी ! आप अज्ञानी नहीं हैं तो आप और क्या हैं ! देखिए, उस लक्कड़में एक नाग और नागिनी जल रहे हैं और आप मजेसे उसे जला रहे हैं। किसी प्राणीकी जान जाये उसकी आपको जरा भी परवाह नहीं। यह अज्ञानता नहीं तो और क्या है ?

तापसी अकड़कर बोला—क्या कहता है मूर्ख बालक ? इस लकड़में नाग और नागिनी जल रहे हैं ? अरे तू बड़ा ज्ञानी है। अच्छा बतला, इसमें नाग नागिनी कहां जल रहे हैं ?

कुमार बोले—बाबाजी ! आपको इतना भी नहीं मालूम और आप अपनेको ज्ञानी और तपस्वी कहते हैं। अच्छा इस काठको फाड़-कर देखिए इसमें नाग नागिनी हैं या नहीं।

तापसने घमंडसे कहा—अगर इसमें नाग नागिनी नहीं निकले तो तेरी ऐसी दुर्गति बनाऊंगा की तू ही जानेगा।

कुमारने सरलतासे कहा—बाबाजी, मेरी दुर्गति फिर बनाइए पहिले जो बेचारे नाग नागिनी इसमें जल रहे हैं उन्हें तो निकालिए। देखिए वे इस जगह जल रहे हैं।

तापसने क्रोधसे अपने कुल्हाड़ेको लक्कड़पर उसी जगह मारा तो उसमेंसे छटपटाते हुए एक नाग और नागिनी निकल पड़े।

तपस्वी लज्जित होकर नीचेको मुंह किये अपनी जगहपर खड़ा रह गया।

कुमार पार्श्वनाथको उस तड़पते हुए नागके जोड़ेपर बड़ी दया आई। वह उनके उपकारकी बात सोचने लगे। उन्होंने फौरन ही

उन दोनोंको णमोकार महामंत्र सुनाया । मंत्रको सुननेके बाद ही नाग नागनी परलोकको सिधार गए ।

फिर पार्श्वकुमारने तपस्वीको दयाका उपदेश दिया और उसे सच्चे योगका रास्ता बतलाकर अपने घर चले गए ।

नाग नागनी मरकर उस महामंत्रके प्रभावसे स्वर्गलोकमें धरणेन्द्र और पद्मावती नामक देव हुए ।

पार्श्वकुमार बनारसके प्रसिद्ध नरेश अश्वसेनके सुपुत्र थे, उनकी विदुषी माताका नाम वामादेवी था ।

पार्श्वकुमार बालकपनसे ही प्रतिभाशाली और चमत्कृत-बुद्धि-निधान थे । उनके शरीरमें जन्म समयसे ही अनेक सुलक्षण थे । वे शक्तिशाली और आकर्षक थे । युवावस्थामें उनकी आकर्षण शक्ति और प्रतिभा उन्नति गिरिके शिखरपर पहुंच गई थी । अनेक विद्वान् अपने हृदयकी अनेक सामाजिक और धार्मिक युक्तियां सुलझाने उनके पास आया करते थे । उनके प्रभाव और ज्ञानके साम्हने कठिनसे कठिन समस्या एक क्षणमें हल हो जाती थी ।

उस समयके वे एक प्रभावशाली नेता बन गए थे । बनारस और उसके निकटकी जनता उनके वाक्योंको वेदवाक्यकी तरह मानती थी । सारी जनताके हृदयमें उनके प्रति अपूर्व श्रद्धा और भक्ति थी । वह उनकी देवताकी तरह पूजा किया करती थी ।

पार्श्वकुमारका हृदय सत्य, दया और पवित्र प्रेमसे परिपूर्ण था, जनताकी सेवा, उनका धर्म और प्रत्येक प्राणीको कष्टसे बचाना उनका कर्तव्य था । वे अपने कर्तव्यपालनके कभी पीछे नहीं हटते थे ।

कठिनसे कठिन संकटके समयमें वे तनिक भी नहीं घबराते थे। उन्हें अपने अनंत आत्मबल पर विश्वास था। उनका संपूर्ण समय जनताकी सेवा और आत्मधर्मके अध्ययनमें व्यतीत होता था।

राज्यवैभवके लिए उनके हृदयमें कोई स्थान नहीं था। भोगोंकी लालसा उन्हें किंचित् भी नहीं थी। राजपुत्र होनेका उन्हें अभिमान नहीं था।

वैभवकी छायामें पलने पर भी वह उन्हें छू नहीं सकी थी। राज्यसत्ताका सुनहला स्वप्न उन्हें आकर्षित नहीं कर सका था।

एक दिन उनका यह सुनहला स्वप्न सदैवके लिए विलीन हो गया। जनताके कल्याणके लिए उन्होंने संपूर्ण वैभव और राज्यसत्ताका त्याग कर दिया। वे सर्वत्यागी बनकर विश्वकल्याणके पवित्र क्षेत्रमें उतर पड़े।

\+ + +

पार्श्वकुमार अब तरुण तपस्वी थे। उन्होंने अपने यौवनको त्यागके रास्ते पर डाल दिया था। भोगविलासको लालसाको तपश्चरणकी वेदी पर बलिदान कर दिया था। मदनकी क्रीड़ाओंका स्थान आत्मत्यागने ले लिया था। उन्होंने अपनी संपूर्ण इच्छाएं, संपूर्ण साधनाएँ आत्म ध्यानमें निमग्न कर दीं थीं।

कमठ उनके अनेक जन्मोंका शत्रु था। ध्यान निमग्न पार्श्वनाथको उसने एक वनमें देखा। उसकी पाशविक वृत्तियें उत्तेजित हो उठीं। क्रोध उतावला होता है वह समय नहीं देखना चाहता। कमठने उसी समय अपनी संपूर्ण पाशविक शक्तियोंका परीक्षण करना

चाहा। एकसे एक क्रूर वृत्ति पार्श्वनाथके ऊपर उपसर्ग बनकर आने लगी।

पार्श्वनाथ समर्थ थे, शक्तिशाली थे, उनमें आत्मसामर्थ्य थी। वे कठिनसे कठिन यातनाएं सह सकते थे। उन्होंने सब सहन किया। लेकिन एक ओर उनकी कृतज्ञताका किसीपर ऋण था। उसे वह ऋण पूर्ण करना था। वह वे जलते हुए नाग नागनी जिन्होंने पार्श्वकुमारसे मंत्र पाकर धरणेन्द्र, पद्मावतीके दिव्य शरीरको प्राप्त किया था, उन्होंने अपने फणोंको फैलाकर योगी पार्श्वके ऊपर घनी छत्रछाया की और मूसलधार मेघ वर्षाकी एक बूंद भी उनके शरीर पर नहीं पड़ने दी।

पापी कमठकी क्रूरवृत्तियां पराजित हुईं। वह तपस्वी पार्श्वके चरणोंपर नत था, गल गया था उसके हृदयका अभिमान।

योगी पार्श्वनाथने कैवल्य प्राप्त किया। अपने दिव्यज्ञानसे उन्होंने संपूर्ण जगतको देखा और जगतके कल्याणके लिए उन्होंने आजीवन सद्धर्मका प्रचार किया। वे जैनियोंके तेईसवें तीर्थंकर थे।

[१५]

शीलव्रती सुदर्शन ।

(एकपत्नीव्रतका आदर्श)

रमणीके रूपमें कितनी आकर्षण शक्ति है । यह मानव मनको किसतरह एक दृष्टि डालकर ही आकर्षित करते हैं ! मैंने आजतक उसे कहीं नहीं देखा । उससे बातचीत भी नहीं की । केवल एकबारके साधारण दर्शन मात्रसे ही मेरा हृदय उसकी ओर इतना क्यों खिंच रहा है ? मेरा शांत मन आज इतना चंचल क्यों हो रहा है ? वह सुन्दर मूर्ति मेरे नेत्रोंके सन्मुख खड़ी होकर मेरे मनको क्यों बे चैन बना रही है ? वह कौन थी ? किसकी कन्या थी ? यह सब जाने बिना ही मेरा हृदय उसके ऊपर क्यों समर्पित होरहा है ।

सुदर्शनका विरक्त हृदय सुलोचनाके दर्शन मात्रसे ही आज एकदम कराह उठा था ।
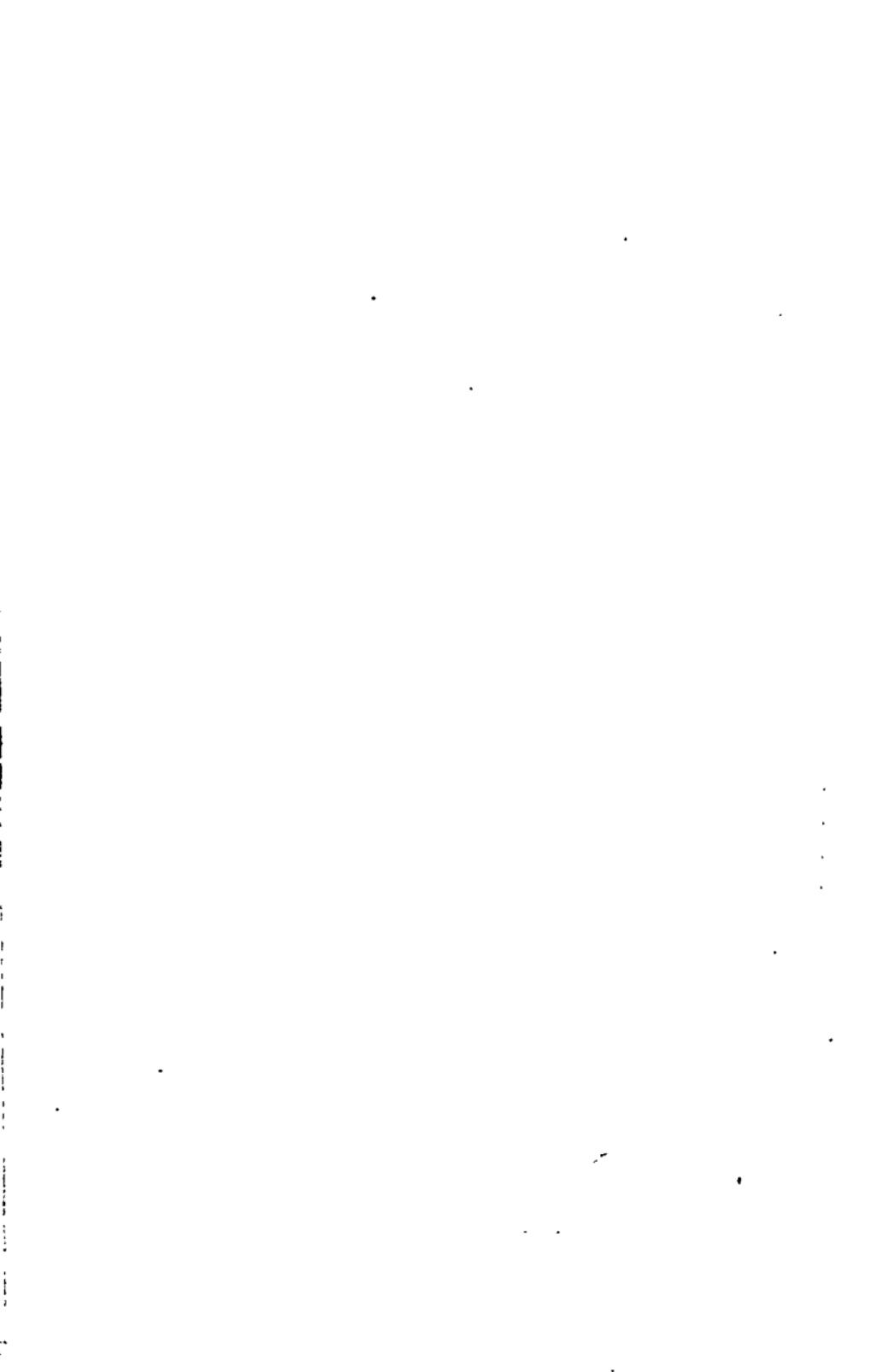
सुदर्शन—नगरके प्रसिद्ध श्रेष्ठी सागरदत्तका सुपुत्र था। वह युवा हो चुका था। लेकिन उसका विरक्त मन विवाहकी ओर अभी तक आकर्षित नहीं हुआ था। माताने उसकी शादीके लिए अनेक प्रयत्न किए थे कई सुन्दर कन्याओंको वह निर्वाचन क्षेत्रमें ला चुकी थी। लेकिन सुदर्शनके मनपर कोई भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकी थीं। उसका मन विषय विरक्त अबोध बालककी ही तरहका था।

मित्र उसे अपनी विनोद मंडलीमें लेजाते थे लेकिन मौनके अतिरिक्त उन्हें सुदर्शनसे कुछ नहीं मिलता था। वे उसकी इस नीरसतासे चिंतित थे। लेकिन उनका कोई प्रयत्न सफल नहीं होता था। आज उसके मित्रने उसे चिंतित देखा था। सुदर्शनकी भाव-भंगीसे वह उसके हृद्गत विचारोंको समझ गया था। उसकी इस बेबसी पर प्रसन्न था वह अपने मनमें बोला—मालूम होगया, आज यह महात्मा किसी सुन्दरीके रूप जालमें फंस गये हैं। मदनदेवका जादू आज इनपर चल गया है इसीलिए आज यह किसी रमणीके रूपके उपासक बने बैठे हैं। मैं तो यह सोच ही रहा था, रमणीके कुटिल कटाक्षके सामने इनका ज्ञान और विवेक अधिक दिन तक स्थिर नहीं रहे सकेगा। आज वह सब प्रत्यक्ष दिख रहा है। वह सुदर्शनके हृदयको टटोलते हुए बोला—मित्र! आज आप इस प्रकार चिंतित क्यों होरहे हैं? क्या आपके पूजा पाठमें आज कोई अंतराय आगया है? अथवा आपके स्वाध्यायमें कोई उपसर्ग उपस्थित होगया है? बतलाइए आपके सिरपर यह चिंताका भूत क्यों सवार है?

सुदर्शन मानो किसी स्वप्नको देखते हुए जाग उठा हो बोला—

श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथस्वामी (प्राचीन प्रतिमा)

ओह ! मित्र आप हैं ? कुछ नहीं, आज मैं बैठा बैठा कुछ यूं ही विचार कर रहा था।

मित्र उसके मनकी भावनाओंको कुरेदता हुआ आगे बोला—नहीं, मालूम होता है आज आपके भोजनमें अवश्य ही कोई अभक्ष्य पदार्थ आगया होगा। अथवा आपके साम्हने किसीने रमणी पुराण आरम्भ कर दिया होगा इसीसे आपका हृदय........।

सुदर्शन अपने हृदयके वेगको स्थिर कर मित्रको आगे बढ़नेसे रोकता हुआ बोला—"नहीं मित्र! आप इतनी अधिक कल्पनाएँ क्यों कर रहे हैं ? आज ऐसी कोई बात नहीं हुई है, मैं पूर्ण स्वस्थ हूं, आप मुझे आज इस तरह क्यों बना रहे हैं ?

मित्रने हंसीका फव्वारा छोड़ते हुए कहा—वाह मित्र! खूब रहे उलटे चोर कोतवालको डांटे। आपने खूब कहा, मैं आपको बना रहा हूं या आप अपने मनका हाल छिपा कर मुझे अंटसंट उत्तर देकर बना रहे हैं। लेकिन यह याद रखिए जाननेवालोंसे आप मनका हाल नहीं छिपा सकते, छिपानेकी आप कितनी ही कोशिशें कीजिए सब बेकार होंगी, आपकी आंखें तो साफ साफ उत्तर दे रही हैं कि आज आप किसी खास तरहकी चिंतामें ग्रस्त हैं।

सुदर्शन कच्चा खिलाड़ी था। उसने प्रेमकी चौसरका पासा फेंकनेको अभी उठाया ही था। वह अपने मनकी उमड़ती भावनाओंको दबा नहीं सका। वह खुल कर बोला—मित्र! सचमुच आप मेरी अवस्थाको जान गए हैं, क्या करूं मनका भेद लाख छिपाने पर भी

स्पष्ट हो ही जाता है, ओह ! आज मैंने जबसे उस सुन्दरी रमणीको देखा है तभीसे............

हां हां, मैं समझ गया। मित्रने बीचमें रोकते हुए कहा—"तभीसे आपको संसारसे पूर्ण विरक्ति होगई है। आपका मन घृणासे भर गया है। अब आप किसी रमणीका मुंह भी नहीं देखना चाहेंगे।"

नहीं मित्र ! आप तो मुझे अपने मनका हाल ही नहीं कहने देते, सुदर्शनने बड़ी शीघ्रतासे कहा—"सुनिए, तभीसे मेरा हृदय किसी गुप्त वेदनासे तड़प रहा है।"

मित्र, अभी इस विनोदमें और रस लेना चाहता था। आश्चर्य प्रकट करता बोला—ऐं मित्र ! वेदना ! और हृदयमें ! क्यों ! क्या उसने आप पर कुछ आघात किया है, आप जैसे सरल और सज्जन व्यक्तिके हृदय पर ? तब तो वह अवश्य ही कोई पाषाण-हृदया होगी। देखूं, कोई विशेष चोट तो नहीं आई है ?

सुदर्शनका हृदय अब अधीर हो उठा। वह बोला—"मित्रवर ! अब आप अधिक विनोदको स्थान मत दीजिए। मेरी वेदनाको अधिक मत भड़काइए, सचमुच ही मैं उसी समयसे उसकी मोहनी मूर्ति पर आकर्षित हो गया हूं।"

"ओह ! मित्र ! क्या कहा ? आप मुग्ध होगए हैं ? उसकी लक्ष्य-कलापर। बेशक, क्यों न हो, लक्ष्य भी उसने आपके हृदय पर अचूक किया है तब तो आप उसे अवश्य कुछ पारितोषक देंगे।" देवदत्तका विनोद अन्तिम था।

सुदर्शनका हृदय देवदत्तके परिहाससे आहत हो चुका था।

वह करुणस्वरसे बोला—"मित्र, मेरा हृदय अब उसके वियोगकी असह्य वेदना सहन करनेके लिए तैयार नहीं। आप हास्य छोड़िये और मेरी व्यथा नष्ट करनेका प्रयत्न कीजिए "

देवदत्तका हास्य अब समाप्त होचुका था। वह अब एक मुक्त भोगीके स्वरमें बोला—'सुदर्शन! मैं तेरे हृदयकी व्यथा जो उसी समय समझ गया था जब तू शून्यसा चुपचाप बैठा था; मुझे प्रसन्नता है कि तेरे मनने योग्य चुनाव किया है। मैं सागरदत्त श्रेष्ठिकी सुंदरी कन्या सुलोचनासे परिचित हूं। मैं आज उस बगीचेमें होनेवाले तुम लोगोंके प्रणयको भी पहिचान गया हूं। तेरे अकेले पर ही मदनदेवने कृपा की है ऐसा नहीं है, सुंदरी सुलोचना पर ही उसकी अनुकंपा हुई है, अब तुम दोनों आपनेको शीघ्र ही विवाहबंधनमें जकड़ा हुआ देखोगे।"

देवदत्तका हृदय आज उछल रहा था। उछलते हुए हृदयसे उसने श्रेष्ठी ऋषभदत्तके कमरेमें प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उसने कहा—"पिताजी! आप इस तरह निरुद्देश्य क्यों बैठे हैं और माताजी कहां हैं? फिर वह कुछ ठहरकर बोला—आइए, माताजी आपको यह सुसंवाद सुनाऊं। अरे! क्या संवाद सुनाऊं मुझे यह कहना चाहिए। आप शीघ्र ही सुदर्शनके विवाहकी तैयारी कीजिए अन्यथा बड़ा अनर्थ हो जायगा।

श्रेष्ठि ऋषभदत्तने चौंकते हुए कहा—" देवदत्त! सुदर्शनके विवाहकी चिंतामें तो हम लोग धैर्य ही खो चुके हैं। कितना समझाया, लेकिन वह समझता कहां है।"

देवदत्तने बातको समाप्त करते हुए कहा—" पिताजी ! अब वह आज समझ गया है । श्रेष्ठि सागरदत्तकी सुन्दरी कन्या सुलोचनापर आज उसका हृदय आकर्षित हो चुका है । मैं यह सुसंवाद सुनाने ही आपके पास आया हूं । आप मुझे इस शुभ कार्यके लिए पारितोषिक दीजिए और शीघ्र ही विवाहकी तैयारी कीजिए ।"

श्रेष्ठि सागरदत्त अपनी कन्याके लिए योग्य वरकी चिंतामें थे इसी समय देवदत्तने उनसे अपने मित्रके लिए सुलोचनाको मांगा । वे इस मांगसे प्रसन्न हुए ।

\+ + +

सुदर्शन और सुलोचना अब विवाहके पवित्र बंधनमें बद्ध थे । दोनोंके हृदय खिल गए थे ।

सुदर्शन एक दिन अपने मित्र रुद्रदत्तके घर गया था । रुद्रदत्तकी पत्नी विजयाने उसे देखा था तो वह उसकी निर्दोष सुन्दरता पर मुग्ध होगई । उसने अपनी सखी अभया पर अपनी चाह प्रकट की । अभयाने उसे समझानेका शक्तिभर प्रयत्न किया, परन्तु सुदर्शनकी चाह विजयाके हृदयसे नहीं निकली । सुदर्शनके विरहमें ब्राह्मणी विजयाका शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा । अभया अपनी प्रिय सखीकी वेदना नहीं देख सकी और एक दिन उसने सुदर्शनसे मिला देनेका निश्चल प्रण किया ।

रुद्रदत्त आज किसी गांव गया था । अभयाने सुदर्शनके लानेके लिए यह दिन उपयुक्त समझा । वह सुदर्शनके घर जाकर बड़ी घबड़ाहटके साथ बोली—" आपके मित्र रुद्रदत्त बीमार होकर पलंग पर पड़े

हुए हैं, उनकी वेदना आज बहुत बढ़ रही है। आप चलकर उन्हें शांति देनेका प्रयत्न कीजिए।"

अभयाके हृदयका छल सुदर्शन नहीं जान सका था। उसे अभयाकी बात पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह उसी समय मित्रको देखनेके लिए चल दिया।

रुद्रदत्तके घर जाकर उसने देखा, भीतर एक पलंग बिछा हुआ है। उस पर बीमार लेटा हुआ है। अभयाने घरके भीतर ले जाकर सुदर्शनको बीमारके निकट छोड़ दिया।

सुदर्शनने पलंग पर बैठकर बीमार रुद्रदत्तके शरीर पर हाथ रखा। बीमारके शरीर पर हाथ रखते ही उसका सारा शरीर झनझना उठा—उसने देखा मित्र रुद्रदत्तके स्थान पर उसकी पत्नी कपिला पड़ी हुई है। वह उसी क्षण पलंग परसे उठकर खड़ा होगया। विजया उनका हाथ पकड़ कर उन्हें बैठाती हुई बोली—कुमार! आप भागते क्यों हैं? मैं कोई अछूत कन्या नहीं हूं जिसे छूते ही आप भागकर दूर खड़े होगए हैं। मैं आपके मित्रकी पत्नी कपिला हूं. मैं आज भीषण व्यथासे जल रही हूं, क्या आप अपनी मित्र पत्नी पर दया लाकर उसकी रक्षा नहीं करेंगे?

सुदर्शन अपना हाथ छुड़ाकर क्षणभर खड़ा रहा और बोला—"मित्र-पत्नीकी सहायता करना मेरा कर्तव्य है। लेकिन आपकी सखीने मुझसे कहा था, मेरे मित्र रुद्रदत्त अस्वस्थ हैं, कृपया मुझे बतलाइए वह कहां हैं?"

विजया सुदर्शनके पवित्र नेत्रों पर अपने नेत्र स्थिर करती हुई

मधुर स्वरमें बोली—"मान लीजिए, यदि आपके मित्रकी जगह मैं ही पीड़ित हूं तो क्या आप मेरी पीड़ा नष्ट करनेका प्रयत्न नहीं करेंगे?"

"परन्तु मुझे इस तरह विश्वास देकर क्यों बुलाया गया है? मित्र रुद्रदत्त कहां है? क्या आप यह सब बतलायेंगी?" सुदर्शनने खड़े रह कर ही पूछा।

"आप इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं? आपके मित्र कहां है? और मैंने आपको क्यों बुलाया है? यह सब आपको अभी ज्ञात हो जायगा। आप थोड़ा धैर्य रख कर मेरे पास बैठिये।" विजयाने स्नेह मिश्रित स्वरमें कहा—

सुदर्शन इस पहेलीको शीघ्र सुलझाना चाहता था। एकांत स्थानमें अकेली तरुणीके निकट वह ठहरना नहीं चाहता था। वह खड़ा रह कर ही बोला—"आप मेरे बैठनेकी चिंता मत कीजिए और मुझे शीघ्र ही यह सब रहस्य समझानेकी कृपा कीजिए।"

विजया अब पलंग पासे उठ बैठी थी, उसने सुदर्शनके बैठनेके लिए एक आसन लाकर रख दिया, फिर वह एक गहरी सांस छोड़कर बोली—"कामदेव! आप इस रहस्यको जानना चाहते हैं तो सुनिये—

मैंने उस दिन आपके सुंदर मुखमंडलको देखा था, उस दिनसे मेरा हृदय आपके प्रेममें पागल होगया है। उसी प्रेमके उन्मादने मेरे मन पर पूर्ण प्रभाव डाल रक्खा है। मैं आपके विरहमें व्याकुल हो रही हूं, आप मुझे अपना स्नेह दान देकर मेरी रक्षा कीजिए।

नारीके कपटपूर्ण हृदयको सुदर्शन समझ गया था, अब वहां वह एक क्षण भी नहीं ठहरना चाहता था। वह उठा और उठकर

बोला—' मान्या! आप मुझे क्षमा कीजिए। आप, मेरे मित्रकी पत्नी, मेरी मां स्वरूपा हैं, आपके मुंहसे ऐसी अरुचि पूर्ण बातें सुनकर मैं लज्जासे गड़ा जाता हूं मैं ऐसी बातें सुननेके लिए एक क्षणको भी तैयार नहीं हूं।' यह कहकर वह जानेका प्रयत्न करने लगा।

विजया हृदयका धैर्य खो चुकी थी। वह अधीर होकर बोली—" मदन! एक क्षण ठहरिए। मैं कोई मृत्यु नहीं हूं जो आप मेरे निकटसे इस तरह भागनेका प्रयत्न कर रहे हैं मैं आपके चरणोंपर पड़ती हूं। एक क्षणके लिए अपने पाषण हृदयको मृदु बना कर मेरी व्यथाकी कहानी सुनिए।"

सुदर्शन इस अप्रिय प्रसंगमें एक क्षणके लिए भी अपना सहयोग नहीं देना चाहता था। लेकिन विजयाकी करुण पुकार सुनकर वह जरा रुक गया और बोला—" माताजी! शीघ्र कहिए, आप अब और क्या कहना चाहती हैं? क्योंकि मैं यहां अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहता।"

विजयाने अपने हृदयका संपूर्ण स्नेह रस निचोड़ते हुए कहा—

" प्रिय मदन! आशाकी स्नेहज्वालामें जलती हुई एक अबलाको छोड़कर चला जाना क्या आपका कर्तव्य है? क्या पुरुष हृदय इतना कठोर होता है कि वह नारीके हृदयकी वेदनाको नहीं समझता? आपके स्वरूपको देखकर मैं यह नहीं समझ सकी थी कि आप इतने निष्ठुर होंगे। वास्तवमें आप बहुत ही छली प्रतीत होते हैं। आप एकबार अपने हृदयकी भावनाओंको जगाकर सोचिए। आपके वियोगमें मुझ अबला नारीकी क्या दशा होगी। थोड़ी कल्पना

कीजिए, यदि आपके वियोगको मेरे प्राण नहीं सहन न कर सकें और वह कूच कर गए तो यह क्या आपके लिए प्रियकर होगा? प्रिय, बोलिए! आप मेरे प्राणोंकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं अथवा आपके वियोगमें उनका चला जाना ठीक है?"

सुदर्शनका हृदय उसका प्रलाप सुनकर एक क्षणको कांप उठा—फिर वह अपने हृदयके सद्विवेकको जागृत कर बोला—माता! आपके विचार सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप अपने अमूल्य प्राणोंको इस तरह मदनदेवके हाथोंका खिलौना बनाना चाहती हैं इससे अधिक मूर्खताकी बात और क्या होगी? वास्तवमें यदि आपको कामशरने अपना लक्ष्य बना लिया है और आप उसके बाणोंसे बेकल हो रही हैं तो आपको पातिव्रतकी अवेध्य ढालकी शरण लेना चाहिए फिर मदन आपका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकेगा।"

सुदर्शनके विवेक पूर्ण वचनोंसे कपिलाका कामविकार कम नहीं हुआ। वह उसी स्वरमें बोली—"प्रियतम! पातिव्रतकी ढाल तो मेरे हाथसे पहले ही टूट चुकी है। अब वह टूटी ढाल मेरी क्या रक्षा कर सकती है? कामदेव मेरे हृदयके सद्विचार दीपकको पहले ही बुझा चुका है अब उसमें विवेकके लिए स्थान ही कहां रह गया है? अब तो वहां कामदेवका क्रीड़ा स्थल बन चुका है। आप अब मेरे हृदयमें आशुनायकका कार्य कीजिये और प्रेम-नाटककी भूमिकाको समाप्त कीजिए।"

प्रिय, आप इतने शंकित क्यों हो रहे हैं? आपको यहां भय ही किसका है? यहां मेरे और आपके अतिरिक्त है ही कौन? आप इस

कामके लिकुंजमें निर्भय विश्राम कीजिए। आपको यहां स्वर्गीय शांति प्राप्त होगी।

सुदर्शनने देखा—कपिला अधिक आगे बढ़ चुकी है, अब वह उसे और आगे नहीं बढ़ने देना चाहता। वह बोला—"माताजी! माताका पवित्र हृदय इस तरह कलंक कालिमासे भरने योग्य नहीं है। जो मातृ स्नेह गंगाजलकी तरह निर्मल होता है, जिसमें क्षीरनिधिकी तरह पवित्रता होती है, जिसकी किरणें पीयूषके निर्झरकी तरह अमृत बहाती हैं उसीसे आप अपवित्रता ताप और गालकी धारा क्यों बहा रही हैं? आप शांत हों पातिव्रतकी शरणमें आएं और अपने अंतःकरणको मातृ स्नेहकी पवित्र धारामें विलीन करदें।

कपिला प्रेममें पागल होरही थी। वह यह कुछ नहीं सुनना चाहती थी। वह आगे बढ़नेसे नहीं रुकी, बोली—प्रियतम! उपदेशके इन क्षारकणोंसे मेरे ज्वलित हृदयको शांत करनेका यह असफल प्रयत्न रहने दीजिए। जरासे जर्जरित व्यक्तिके लिए देने योग्य इस थोथे ज्ञानकी कहानी आप बन्द कीजिए। इस समय तो यौवनकी मधुर तरंगोंको बढ़ने दीजिए और मधुर उमंगोंके साथ प्रणयधाराको प्रवाहित कीजिए। यौवन, सौन्दर्य, और उन्मत्ततासे भरे हुए इस प्यालेको ओठोंसे लगाइए और अपने अपूर्व प्रेमका परिचय दीजिए।

सुदर्शन अब अपने उपदेशका अंतिम उपयोग करना चाहता था, वह बोला—" रमणी! सावधान हो। तू बहुत आगे बढ़ चुकी है। अपने इस निंद्य व्यवहार द्वारा प्रेमके पवित्र नामको कलंकित मत कर। प्रेम वह स्वर्गीय शब्द है जिसे सुनकर हृदयमें पवित्रताकी तरंग उम-

जुने लगती हैं। प्रेम वह मंत्र है जिसमें वासना और विलासकी भावनाएं नष्ट होजाती हैं। प्रेम वह अपूर्व वस्तु है जिसके द्वारा मानव ईश्वरके साक्षात् दर्शन कर सुख और शांतिके अनंत साम्राज्यको प्राप्त करता है। तू इस पवित्र शब्दका गला मत घोट। अगर तू प्रेम ही करना चाहती है तो अपने पवित्र पातिव्रत धर्मसे प्रेम कर जो तेरे जीवनको स्वर्गीय बना देगा।

कपिलाका मन अभी तक शांत नहीं हुआ था। वह अपने अंतिम शस्त्रका प्रयोग करना चाहती थी। उसने अपने नेत्रोंको अधिक मादक बना लिया था। वचनोंमें मधुकी मधुरताका आह्वान कर लिया था। वह बोली—"प्राणेश! आपके मुंहसे धर्म धर्मकी बात मैं कईबार सुन चुकी हूं, लेकिन मैं नहीं समझती कि धर्म क्या है? और उससे क्या सुख मिलता है? कुछ समयको यह मान भी लें कि तरह तरहके कष्ट देकर शरीरको तपाग्निमें तपाकर और प्राप्त सुखोंका त्याग कर हम धर्मके द्वारा परलोकमें स्वर्ग सुख प्राप्त कर लेंगे, लेकिन आपके उस धर्मके साथ भी तो उसी स्वर्गीय सुखका सवाल लगा हुआ है। फिर परलोकके अप्राप्त सुखोंकी लालसामें वर्तमान सुखको ठुकरा देना ही क्या धर्मकी आपकी व्याख्या है! तब इस व्याख्याको आप परलोकके लिए ही रहने दीजिए। इस लोकके लिए तो इस समय जो कुछ प्राप्त है उसे ग्रहण कीजिए। स्मरण रहे आपके शब्द जालमें वह शक्ति नहीं है जो उन्मत्त रमणीके तर्कके सामने स्थिर रह सके। उसे तो आप अब रहने दीजिए और मुझे अपना आलिंगन देकर मेरे जीवन और यौवनको कृतार्थ कीजिए।

कपिला अपना कथन समाप्त कर आगे बढ़ी, वह सुदर्शनका आलिंगन करना चाहती थी। सुदर्शनने देखा, जानेका द्वार बंद था। एक क्षणमें भारी अनर्थकी आशंका उसे मालूम हुई। उसने देखा ज्ञानसे अब काम नहीं चलता है। उसने अब छलका आलम्बन लिया, अपनेको पीछे हटाते हुए वह बोला—

" थोड़ासा ठहरिए, आप यह क्या अनर्थ कर रही हैं ! आप सोच रखिए आपको मेरे आलिंगनसे कुछ भी तृप्ति नहीं मिलेगी, केवल पश्चात्ताप मिलेगा। आप जिस आशासे मुझे ग्रहण करना चाहती हैं वह आशा आपकी पूर्ण नहीं होगी।"

कपिला उत्तेजित होकर बोली—"मेरी आशा अवश्य पूर्ण होगी, क्यों नहीं होगी ? आपका आलिंगन मुझे जीवनदान देगा।"

सुदर्शन उसी स्वरमें बोला—" नहीं होगी, कभी नहीं होगी; रमणी ! तू जिसे अनंग रससे भरा सुन्दर प्याला समझ रही है उसमें तृप्ति प्रदान करनेकी जरा भी शक्ति नहीं है। जिसे तू शांति प्रदायक चन्द्रबिंब समझ रही है वह राहुके कठिन ग्राससे ग्रसित है। पुरुषत्व विहीन और रति क्रिया क्षीण पुरुषके आलिंगनसे तुझे क्या तृप्ति, क्या सुख मिलेगा ? इसमें न तो रतिदान देनेकी शक्ति है और न मदनकी स्फूर्ति है।"

कपिला चौंककर बोली—" हैं ! आप यह क्या कह रहे हैं ? नहीं मुझे विश्वास नहीं होता, आप यह सब मुझे छलनेका प्रयत्न कर रहे हैं। मैं आपकी बातका विश्वास नहीं कर सकती।"

सुदर्शनने अत्यंत विश्वासके स्वरमें कहा—"आश्चर्य है, तुम्हें

मेरी बातपर विश्वास नहीं होता? तुम्हारी समझमें क्या यह नहीं आता कि जिस रमणीकी दिव्य रूप राशिके उन्मत्त लीला विलासने तीक्ष्ण और कुटिल कटाक्ष पातमें स्निग्धता और तृप्तिकर स्पर्शने देवताओंके हृदय भी विचलित कर दिए। ब्रह्माके व्रतको भंग कर दिया, विष्णुको अपना दास बना लिया और महर्षियोंकी तपस्याको नष्ट कर डाला उसका प्रभाव मेरे जैसे साधारण व्यक्तिपर नहीं पड़ता। मेरे पुंसत्वहीन होनेके लिए इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिए।"

सुदर्शनकी बातसे कपिला अत्यंत निराश हो चुकी थी। वह पश्चात्तापके स्वरमें बोली-"ओह! तब मैंने व्यर्थ ही अपने हृदयको कलंकित किया।"

सुदर्शन यह सुननेके लिए वहां खड़ा नहीं रहा। वह शीघ्र ही कपिलाके घरसे बाहिर निकल गया।

× × ×

वसंत ऋतु आई। वसंतोत्सव मनानेके लिए नगर निवासी उन्मत्त होकर उपवनकी ओर जाने लगे। सुदर्शन भी अपनी पत्नी और पुत्रोंके साथ वसंतोत्सव मनाने गया था। महारानी अभया भी यह उत्सव मनाने गई थी। उनके साथ विप्र पत्नी कपिला और उसकी अन्य सखियां भी थीं।

महारानी अभयाने सुदर्शनके सुन्दर पुत्रोंको देख कर अपनी दासीसे पूछा-"चपला, क्या तू बतला सकेगी यह सरल और पुष्ट बालक किसके हैं।"

चपलाने कहा-महारानीजी! यह सुन्दर बालक नगरके प्रसिद्ध धनिक श्रेष्ठी सुदर्शनके हैं।

सुदर्शनके यह बालक हैं, सुनकर कपिला एकदम सिहर उठी, अनायास उसके मुंहसे निकल गया—"सुदर्शनके बालक! सुदर्शन तो पुरुषत्व हीन है।"

रानीने कपिलाके हृदयकी यह सिहरन देखी, उसके कहे शब्दोंको सुना। यह सब उसे अत्यंत रहस्यजनक प्रतीत हुआ। उसने कपिलासे यह सब जानना चाहा।

कपिला उत्तेजनामें आकर कह तो चुकी थी परन्तु उसे अपनी बातपर बड़ी लज्जा आई, वह कुछ समयको मौन रह गई। फिर बोली—"महारानीजी कुछ नहीं, मैंने सुदर्शनके संबंधमें किसीसे यह सुना था।"

उसके बोलनेके ढंग और लज्जाशील मुंहको देखकर रानीको उसके कहनेपर संदेह होगया, वह बोली—"नहीं कपिला, तू अपने हृदयकी स्पष्ट बातको मुझसे छुपा रही है, तू सत्य कह, तूने यह कैसे जाना है?"

कपिला अपने हृदयकी बातको छुपा नहीं सकी, उसने अपने ऊपर बीती हुई सारी घटना रानीको कह सुनाई।

कपिलाकी कहानी सुनकर रानीके हृदयमें एक विचित्र आकर्षण हुआ। करुणा और हास्यकी धाराएं तीव्र गतिसे बहने लगी। अपने हृदयमें सब भावनाएं लेकर वह वसंतोत्सवसे लौटी।

\+ + +

रानी अभयाका हृदय आज अत्यंत चंचल हो उठा था। कितने ही प्रयत्नों द्वारा दबाये जानेपर भी जब उसके हृदयकी चंचलता नहीं रुक सकी तब उसने अपने हृदयकी हलचलको अपनी धाय पंडिता पर प्रकट किया।

पंडिता अत्यन्त चतुर और समझदार थी। उसने उसकी इस चंचलताके लिए बहुत धिक्कारा। उसने कहा—"बेटी, मैं बचपनसे ही तेरे समीप कार्योंकी सहायिका रही हूं। जीवनभर तुझे अपने प्रयत्नों द्वारा सुख पहुंचानेका प्रयत्न किया है। लेकिन मैं ऐसे घृणित कार्यकी कभी सहायक नहीं बन सकती। तू राजरानी है, तुझे इन पतित कामुक विचारोंको अपने हृदयमें स्थान नहीं देना चाहिए। सुदर्शन एकपत्नीव्रती और संयमी पुरुष है, उसके प्रति तुझे अपने हृदयमें विकारकी भावना नहीं भरना चाहिए।"

अभया बोली—"नहीं मां, तुझे आज मेरी प्रतिज्ञामें सहायक बनना ही होगा, कान खोलकर सुनले। मैंने आज यह निश्चल प्रतिज्ञा की है। जब तक मैं यह सिद्ध नहीं कर दूंगी कि सुदर्शनकी यह प्रतिज्ञा उसका कोरा ढोंग है, यह सब उसकी प्रपंचना मात्र है और जब तक मैं उसे अपनी इस अकृत्रिम रूपराशिके साम्हने पराजित नहीं कर दूंगी तबतक अन्न, जल ग्रहण नहीं करूंगी।"

पण्डिता आश्चर्यसे बोली—"बेटी! मैं जानना चाहती हूं ऐसी अयोग्य प्रतिज्ञा करनेका कारण?"

अभया उत्तेजित होकर बोली—"तुम कारण जानना चाहती हो, अच्छा सुनो। मैं उसे प्यार करती हूं, मैं उसे चाहती हूं, मैं अपना जीवन और यौवन उस पर अर्पण कर चुकी हूं, लेकिन वह व्रती है। वह विश्वविजयिनी महिलाओंकी शक्तिको नहीं जानता। वह रमणी रूपका निरादर करता है, वह इस स्वर्गीय विलासको उपेक्षाकी दृष्टिसे

देखता है : बस इसीलिए उसके व्रत और उसकी उपेक्षाको पराजित करनेके लिए ही मैंने यह प्रतीज्ञा की है।"

धाय मां उसकी इस उत्तेजनाने घबड़ा उठी. वह उसे शांत करनेके उद्देश्यसे बोली—" बेटी, तेरा यह दुराग्रह मालूम पड़ता है, तेरी प्रतिष्ठा नष्ट कर देगा। अपना सर्वस्व नष्ट करनेकी इस तेरी प्रतिज्ञामें मैं थोड़ासा भी सहयोग नहीं दे सकूंगी, तुझे यह अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी होगी।"

रानीने उसी उत्तेजनाके स्वरमें कहा—" नहीं मां, यह नहीं होगा। मैं अन्नजलका त्याग कर सकती हूं, अपने प्राणोंका मोह भी छोड़ सकती हूं लेकिन यह प्रतिज्ञा नहीं तोड़ना चाहती। मैंने पूर्ण निश्चयके साथ यह प्रतिज्ञा की है और तू जानती है कि मैं जो निश्चय कर लेती हूं उसे पूरा करके ही छोड़ती हूं। तुझे मेरे निश्चयको सफल बनाना होगा।"

अभयाके निश्चयके सामने धाय निरुपाय थी। उसे अपने मनके विरुद्ध उसके इस अनुचित कार्यमें सहयोग देना पड़ा।

× × × ×

चंपापुर नरेश आज किसी कार्यसे अन्यत्र गये हुए थे। रानीने आज रात्रिको ही सुदर्शनको अपने महलमें बुलाना उचित समझा।

आज चतुर्दशीकी रात्रि थी। सुदर्शन एकांत स्थानमें आज रात्रिको मौन रहकर आत्मचिंतन किया करता था, पंडिता धायने गुप्तद्वारसे अपने गुप्तचरों द्वारा महलमें उठा मंगाया। सुदर्शन आत्मध्यानमें मग्न था, उसे रानीके इस षड्यन्त्रका कुछ भी पता नहीं था।

महलका यह कमरा, जिसमें सुदर्शनको रक्खा गया था, मादक द्रव्योंसे सजा हुआ था। ध्यानस्थ सुदर्शनको उत्तेजित करनेके लिए रानी उसके निकट आकर अपने कामोद्गार प्रकट करने लगी। वह बोली—"प्रिय कुमार! आप किसके लिए यह ध्यान लगाये हुए बैठे हैं? देखिए इस तपस्यासे आपको अधिकसे अधिक सुन्दरी देवबालाएं प्राप्त होंगी, लेकिन देवबालाके सौन्दर्यको जीतने-वाली यह बाला आपके साम्हने स्वयं उपस्थित है तब आपको अपने शरीरको कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है नेत्र खोलकर आप मेरी इस अनिंद्य सौन्दर्यको देखिए। सुनिए, मैं राजरानी हूं। मेरी प्रसन्नताकी एक दृष्टिसे आप स्वर्गीय वैभवके स्वामी बन सकते हैं। आप अपनी इस मनोहर दृष्टिको इसतरह बंद न कीजिए। इस सौन्दर्यका दर्शन कीजिए।

रानीके प्रलोभनसे पूर्ण कामोत्तेजक विचारोंको सुनकर सुदर्शन अपने हृदयमें सोचने लगा—नारीका यह पतन! जिसके प्रभावसे वह अखिल ब्रह्माण्डकी पूजनीया देवी बन जाती है जो संसारमें मातृत्वकी पवित्र प्रतिमा बनती है, जिसके हृदयमें मातृस्नेहका सरस सरोवर लहराता है, वही नारी इस तरह प्रचुर पापकी सृष्टि उत्पन्न करनेके लिए तैयार होरही है! पतनकी प्रबल आंधीमें संसारको बहा देनेका प्रयत्न कर रही है! और यह मानव कितना अज्ञ है जो अपने विवेकको खो कर इस घृणित मांस पिंडके आगे अपना मस्तक झुका देता है। जिसका अन्तरतम अनंत शक्तियोंका केन्द्र है, जो दिव्य गुण-रत्नोंका समुद्र है वही अपनेको इन नश्वर विषय विलासोंका

दास बना लेता है। लेकिन यह पतिता रमणी मुझे कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकती। मैं दिव्य आत्मदर्शनमें मग्न हूं, इसके मादक प्रहारोंका मेरे वज्र हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। मैं उस आत्म-प्रकाशमें स्थित हूं जहां इसके कामांध हृदयकी धाराएँ प्रवेश नहीं कर सकतीं।

सुदर्शनको उसी तरह ध्यान-निमग्न देख अभया अनुनय करती हुई बोली—"प्रिय कुमार! देखिए, कितने समयसे मैं प्रेम भिखारिणी आपकी सेवामें खड़ी हूं लेकिन आप इतने निष्ठुर हैं कि मेरी ओर दृष्टिपात तक भी नहीं करते। एकबार आप इस रूपके साम्राज्यको देखिए, यह सब आपके चरणोंमें समर्पित होनेके लिए खड़ा है। बस आपकी स्नेह दृष्टि भरकी देर है। आप अपने स्नेह नेत्रोंको खोलिए और मुझे संतुष्ट कीजिए।"

ध्यानरूप सुदर्शनका हृदय इस समय उच्चकोटिकी आत्म भावनाओंमें निमग्न हो रहा था। वह अपने ध्यानसे थोड़ासा भी चलित नहीं हुआ। अभयाने उसके हृदयमें काम विकार उत्पन्न करनेके लिए अनेक चेष्टाएं कीं। लेकिन उसे अपने सब प्रयत्नोंमें निष्फलता ही प्राप्त हुई। तब अन्तमें उसने ध्यानस्थ सुदर्शनके कोमल अङ्गोंका स्पर्शकर उसे उत्तेजित करनेका प्रयत्न किया। इधर रजनी कामिनी उसके इस पाप कृत्यको देखकर भागनेकी चेष्टा करने लगी। अपने प्रचंड किरण दंडको लेकर सूर्यदेव उसे इस अनर्थका दंड देनेकी चेष्टा करने लगा। सुदर्शनका ध्यान अब भंग हो चुका था। पातित रमणीका प्रेम अब भयानक क्रोधमें परिणत हो गया। बदलेकी भावना

उसके चारों ओर चक्कर काटने लगी; उसने उपाय सोच लिया, अचानक ही वह बड़े जोरसे चिल्लाने लगी। कोई दौड़ो, यह दुष्ट मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहता है। इसी समय उसने अपने बदनकी बहुमूल्य साड़ी चीर फाड़ डाली। नखोंसे अपने बदनको खरोंच डाला और अपना बहुत ही बेढंगा रूप बना लिया।

उसकी चिल्लाहट सुनकर द्वारपाल दौड़े आए, उन्होंने सुदर्शनको पकड़ कर अपने बंधनमें ले लिया।

राजदरबार लगा हुआ था। सुदर्शन अपराधीके रूपमें खड़ा था। उसपर राजरानीके सतीत्व हरणका अपराध था। सैनिकोंने उसे राजमहलमें एकाकी रानीके समीप पकड़ा था, उसका अपराध स्पष्ट था।

उसे प्राण दंड मिला, जिसे उसने हंसते हुए हृदयसे स्वीकृत किया—सुदर्शनको प्राणदंड देनेके लिए बधिक उसे शूलीकी ओर लेगए थे। उन्होंने उसे शूलीपर चढ़ानेको खड़ा किया। लेकिन उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। शूलीका स्थान सिंहासनने ले लिया था और सुदर्शन उसपर बैठा हंस रहा था। गगनसे हर्षध्वनि हो उठी थी और देवगण जयर शब्द बोलने लगे थे।

बधिकने यह आश्चर्यजनक घटना देखी। वह राजाके निकट दौड़ा गया और सम्पूर्ण घटना चंपापुर नरेशको सुनाई। उन्होंने आकर इस देवी चमत्कारको देखा।

रानीका कुत्सित हृदय भयसे भर गया था। उसे अपने कृत्य पर पश्चाताप होने लगा। वह रोती हुई सुदर्शनके चरणोंपर गिरी और

राजाके साम्हने सुदर्शनको निर्दोष प्रमाणित करते हुए उसने अपना अपराध स्वीकार किया।

पाप पराजित हुआ और पुण्यकी विजय हुई। राजा और प्रजाने एकपत्नी व्रतके इस प्रभावको देखा, उनका मस्तक सुदर्शनके पवित्र चरणोंपर झुक गया था।

सुदर्शनने अपने आदर्श द्वारा दिखला दिया कि दृढ़व्रती यदि अपने प्रण पर स्थिर रहता है तो उसे संसारकी कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती। सत्य जिस समय अपने दृढ़ तेजको प्रकाशित करता है उस समय उसकी प्रखर किरणोंके सामने असत्य और पाप एक क्षणके लिए भी स्थिर नहीं रह सकता।

[१६]

सुकुमार सुकुमाल।

(वह इतना सुकुमार था कि दीपकका प्रका
उसके नेत्र सहन नहीं कर सक्ते थे। रत्न-
कम्बल उसके शरीरको चुभता था।....)

(१)

सुरेन्द्रदत्तके प्रभावको उज्जैन जानता था। वे नगरके प्र
धनिकोंमेंसे थे। उनका वैभव बेसुमार था। यशोभद्रा उनकी प
सुशील और सुंदर थी। दोनों प्रेममग्न थे। धन और यौवन, श
और सुंदरता दोनोंके स्वामी थे। सम्मान और यशकी उन्हें कमी
थी। वे चरित्रवान और संयमी थे—उन्हें सब कुछ प्राप्त था। यदि
कमी थी तो यही कि वे संतान हीन थे। वे सोचा करते थे कि मेरा

अनंत वैभव किस लिए ? मेरे इस उज्वल वंशकी मर्यादा कौन स्थिर रखेगा ? आह ! मैं अपुत्रवान हूं। यही सब सोच कर वे बेचैन हो उठते और वैभवके उस नंदननिकुंजमें एक मूक वेदना कराह उठती।

शरद्के प्रातःकालका समय था, दिशाएं निर्मल और प्रकृति शान्त थीं। यशोभद्रा प्रकृतिकी सुन्दर छटा निरीक्षणमें निमग्न थी। एक सुकुमार बालक—इसी समय उसने देखा। दौड़कर उसने अपने धूलसे धूसरित अंगोंको माताकी गोदमें डाल दिया। हृदयकी सम्पूर्ण ममता समेट कर मांने उसके सुकुमार अंगोंको झाड़कर उसका चुंबन किया। पुत्र विहीना यशोभद्राके हृदयको एक गहरी चोट लगी। वह तड़प उठी—आह! सरल हास्यसे भरा हुआ बालक किसका हृदय नहीं चुराता ? दारिद्र्यका भयानक कष्ट हृदयकी अपार वेदनाएं उसके सरल हास्यमें विलीन होजाती हैं, उसका भोला मुंह अपार शोकसागरमें भी स्वर्गीय सुखकी तरंगें उत्पन्न करता है, जलता हुआ हृदय लहलहा उठता है उसके स्पर्शसे—बालक ! अहा बालक !! कितनी सौभाग्य-शालिनी है वह महिला, जिसकी गोद पुत्ररत्नसे भरी हुई है और मैं उस सुखसे सर्वथा वंचित हूं। मां, अहा ! संसारके सभी मधुर रसोंके संमिश्रणसे इस शब्दकी रचना हुई है, वह मधुर शब्द जिससे स्त्रीकी हृदतंत्री झंकारित हो उठती है। ओह ! मैं कितनी हतभागिनी हूं। मैं उस सुन्दर शब्द सुननेके सौभाग्यसे रहित हूं। पत्नीका महत्व मातृत्वमें है, क्या मैं भी उस सौभाग्यको प्राप्त कर सकूंगी !

वह विचारोंकी सरितामें बहती गई, अनायास सूर्यकी चमकती हुई बाल किरणोंने उसका ध्यान भंग किया। वह उठी, उसने देखा, कि

सारा संसार स्वर्णमय बन गया था, उसने स्नान किया और देव-मंदिरको चल दी।

द्वार प्रवेश करते ही उसे महात्माके दर्शन हुए। उसने भक्ति और श्रद्धासे उन्हें प्रणाम किया। महात्माने आशीर्वाद दिया। तू सुखी हो। अरे! यह क्या? यशोभद्राके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। महात्मा विचलित हो उठे। बोले—पगली, तू रोती है?

महात्माजी! कहते हुए उसका हृदय करुण हो उठा। वह बोली—योगिराज! आप सब जानते हैं, कहिए। कब मैं पुत्रवती होऊंगी? मैं अभागिनी क्या कभी मां शब्द सुन सकूंगी? बतलाइए क्या मुझे पुत्र-सुख मिलेगा? महात्मा बोले—"बहिन! शान्त हो। संसारमें सबको सब कुछ मिलता है, तुझे भी मिलेगा। तेरे पुत्र होगा—ऐसा पुत्र जो अपने उन्नत आदर्शसे संसारको चकित कर देगा, जिसकी यशःध्वनिसे संसार गूंज उठेगा, उन्नत मस्तक जिसके चरणोंपर लोटेंगे जिसकी चरित-चन्द्रिका भूतलपर अपनी उज्ज्वल किरणें फैलायेंगी ऐसा पुत्र तेरे होगा। 'किन्तु'...महात्मा मौन होगए।

यह सुनकर पुत्रकी उत्कट इच्छा रखनेवाली यशोभद्राका हृदय हर्षसे फूल उठा—पर महात्माके अंतिम शब्द 'किन्तु', को वह समझ न सकी। वह आतुर होकर बोली—महात्मा! कहिए इस "किन्तु"का क्या मतलब? इसने मेरे हर्षित हृदयको बेचैन कर दिया है। इसने उस अनंत आनंदके दरवाजेको बंद कर दिया है जिसमें मैं शीघ्र प्रवेश करना चाहती थी। इस "किन्तु" की पहेलीको शीघ्र हल कीजिए।

महात्मा कुछ सोचकर बोले—बहिन! तुझे पुत्र-रत्न तो प्राप्त होगा

किन्तु पुत्र प्राप्तिके साथ ही तुझे पति-वियोग होगा। पुत्र जन्मके समय ही तेरे स्वामी इस संसारकी मायाका त्याग कर तपस्वी बन जायेंगे।

यशोभद्राने सुना—देखा, महात्मा ध्यानमग्न होगए हैं। वह उठी, देव-दर्शन किया और हर्ष विषादके हिंडोलेमें झूलती हुई अपने घर चल दी।

(२)

कालकी चाल नियमित है। संसारके प्राणी जो नहीं बनना चाहते उसे समय बना देता है। जो देखना नहीं चाहते हैं समय अपनी परिवर्तन शक्तिसे वही दिखला देता है। समयकी गतिने यशोभद्राके लिए वह अवसर ला दिया जिसके लिए वह अत्यन्त उत्सुक थी।

वह अब गर्भवती थी। अपने हर्षके हिंडोलेको वह हौले हौले झुला रही थी, उसका हृदय किसी अभूतपूर्व आशाके प्रकाशसे जगमगा रहा था। नगरके उद्यानमें कुछ तपस्वी महात्मा पधारे थे। सुरेन्द्रदत्त उनके दर्शनके लोभको संवरण नहीं कर सके। वे शीघ्र ही उद्यानमें पहुंच गए। महात्माओंका उपदेश चल रहा था संसारकी नश्वरताका नग्न दिग्दर्शन होरहा था, उपदेश प्रभावशाली था। सुरेन्द्र-दत्तके हृदय पर इस उपदेशने इतना गहरा रंग जमाया कि वे उसीमें रंग गए, घरकी सुधि गई। पत्नीके प्रेमका तूफान भंग हुआ और वैभवका नशा उतर गया। अधिक सोचनेके लिए उनके पास समय नहीं था। वे उसी समय तपस्वी बन गए।

इधर, उसी समय यशोभद्राने एक सुन्दर बालकको जन्म दिया। उसके प्रकाशसे सारा घर जगमगा उठा। स्वजन हितैषियोंके समूहसे

घर व्याप्त होगया, मंगल गान होनेलगा और याचकोंको अभीष्ट वस्तुयें मिलने लगीं। कैसा आश्चर्य जनक प्रसंग था यह! इधर पुत्र जन्म उधर पति वियोग! संसार कितना रहस्य मय है!

सुरेन्द्रदत्तने पुत्र जन्मका संवाद सुना, पर वे तो उस दुनियांसे बहुत दूर चले गये थे। इतनी दूर कि जहांसे लौटना ही अब असंभव था।

यशोभद्राने भी सुना, पति तपस्वी बन गए हैं। उसे कुछ लगा पर वह तो पुत्र-जन्मके हर्षमें इतनी अधिक मग्न थी कि उसे उस समय कुछ अनुभव ही नहीं हुआ।

(३)

शून्यताके अवगुंठनमें छिपा हुआ सुरेन्द्रदत्तका प्रांगण आज बालकोंकी चहल पहलसे जाग उठा था, बालकोंके समूहसे घिरे हुए सुकुमालको देखकर माताका हृदय उस अकल्पित सुखका अनुभव कर रहा था, जो उसे जीवनमें कभी नहीं मिला था। सुकुमालका शरीर चमकते हुए सोनेकी तरह था। कीमती वस्त्रोंसे सजकर जब वह बाल्य चालसे चलता था, तब दर्शकोंके नेत्र उसकी ओर बरबस खिंच जाते थे। बालकके सरल और अकृत्रिम स्नेह-सुधाको पीकर मां अपने हृदयको तृप्त करने लगी।

शंकित हृदय कहीं विश्राम नहीं पाता। कुछ समयसे यशोभद्राका हृदय अपने पुत्रकी ओरसे किसी अज्ञात भयसे भरा रहता है। बढ़ता हुआ सुकुमाल जबसे अपनी लीलाओंसे उसे प्रसन्न करने लगा तभीसे उसके हृदयकी गुप्त आशंका और भी अधिक बढ़ने

लगी है। पीछे तो वह इतनी भयभीत होने लगी कि अगर घरमें उसे सुकुमाल न दिखता तो घबड़ाकर वह पागलसी हो जाती। अंतमें उसने एक दिन भावी आशंकासे छुटकारा पानेका साधन खोज निकाला। उसने उज्जयिनीके प्रसिद्ध निमित्तज्ञानीको निमंत्रित किया और अपने पुत्रका भविष्य पूछा। ठीक तरहसे विचार करते हुए वह बोला—भद्रे! तेरा बालक संसारका एक बड़ा महात्मा होगा। उच्च कोटिके महात्माओंका सत्संग और उपदेश उसे अत्यंत प्रिय होगा, और किसी दिन यह भी होगा कि वह उन महात्माओंके उपदेश और प्रभावसे उस मार्गपर अग्रसर होगा जो इस संसारसे बहुत दूर और बहुत कठिन है।

यशोभद्राने निमित्तज्ञानीके शब्दोंको सुना और अपने हृदयकी वेदनाको दबाकर उन्हें विदा किया। फिर वह अपने पुत्रके भविष्य संबंधमें विचार करने लगी "मेरी शंकाएं निर्मूल नहीं थी" अच्छा हुआ कि समय रहते मैंने इसका निर्णय कर लिया नहीं तो उस समय जब भविष्य अपने पंजेमें मुझे जकड़ लेता तब उसका प्रतिकार कठिन होता। तब क्या मेरा हृदय-धन नेत्रतारा—सुकुमार सुकुमाल मेरे अविरल स्नेह-सागरको पार कर इस अटूट वैभवके सिंहासनको ठुकरा कर तपस्वी बन जायगा? इतना कोमल शरीर क्या उस कठिन तपश्चरणके लिए समर्थ हो सकेगा? सम्भवतः ऐसा ही हो। किन्तु नहीं! मेरे होते हुए मेरे ही सामने वह तपस्वी नहीं बन सकेगा? नहीं—कभी नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगी। मैं आत्मज्ञानका उसे कभी भान ही न होने दूंगी।

विलासकी तीक्ष्ण मदिरासे विषयकी तीव्र तृष्णासे मैं उसका हृदय तृप्त ही नहीं होने दूंगी। मैं ऐसा करूंगी, मैं ऐसे साधन उपस्थित करूंगी कि उसे जीवनभर वैराग्यका गृह-त्यागका स्वप्न ही न आए। वह प्रलोभनाओंके पथसे आगे बढ़ाकर अपनेको कहीं ले ही न जा सके। अब उसे चारों ओर अनन्त ऐश्वर्यका साम्राज्य ही दिखलाई देगा। वासनाके गीत गानेवाली सुन्दरियोंसे वह अपनेको घिरा पायगा। वैराग्यके अंकुरोंका छेदन करनेवाली बालाएं उसे विलास मदिरा पिलाकर मुग्ध कर देंगी और तरुणी रमणियोंका मधुर आलाप ही वह सुन पाएगा। उसे मृदुल हास विलास और तीक्ष्ण कटाक्षपात ही सब ओर दिखलाई देगा, देखूंगी तब वह इस विस्तृत मोहमंदिरसे अपनेको किस तरह निकालता है? मायाविनियोंके स्नेह बंधनकी लीलासे वह अपनेको कैसे मुक्त करता है?

हां, और मैं यह प्रबंध भी करूँगी कि जो वैरागके प्रतिनिधि हैं, जिनकी आत्मा किसी एक रहस्यमय ध्वनिसे प्रतिध्वनित होती रहती है, जो मोहमंदिरमें तीव्र निरुद्ध मानवोंकी हृदयतंत्रीको ध्वनित करते हैं और आत्म सत्तासे भूले हुए मनुष्यके अंतरंगमें प्रकाशकी किरणें फैलाते हैं, उन महात्माओंका उपदेश उसे दुर्लभ हो जायगा। उनका प्रत्यक्ष दर्शन तो क्या उनका चित्र भी वह न देख सकेगा। तब फिर मैं देखूंगी उसके हृदय मरुस्थलमें वैरागकी आवाज कैसे प्रवेश करती है? हां, तब यही करना होगा।

विचारोंकी उद्दीप्त किरणोंने उसके म्लान मुख मंडलको कुछ समयके लिए चमका दिया। विषादकी रेखाएं विलीन होगईं और वह भविष्यके अभूत पूर्व अमृतपानसे उछल पड़ी।

(४)

सुकुमाल अब युवक था। बाल्य अवस्थाके सरल विनोदोंके स्थानमें अब यौवनका उन्माद नृत्य करने लगा। अपनी स्नेहमयी जननीके अनुपम स्नेह पात्र सुकुमाल रत्नचित्रित सुन्दर प्रासादमें रक्षित रहने लगा। एक नई उमंगने उसके हृदयको लहरा दिया था, सुन्दर शरीर पर यौवनने एक नई ज्योत्सना छिटका दी थी।

अब वह उस स्थितिमें था जहां जीवनके लिए एक नया संदेश प्राप्त होता है और जहांसे उस दिव्य संदेशको लेकर युवक संसारके महान कर्त्तव्य क्षेत्रमें अवतीर्ण होता है। यह उसकी परीक्षाका समय था। कर्त्तव्य और वासनाओंका यह तुमुल युद्ध था। कर्मक्षेत्र और भोगभूमिके दो प्रशस्त मार्ग थे जिन पर चलनेका उसे निर्णय करना था। तरह तरह विलास सामग्रियां उसके सामने मौजूद थीं। यशोभद्राने उसके सुकुमार हृदय पर वासनाका प्रभुत्व जमानेमें किसी प्रकारकी कमी नहीं की थी। उसे बंधनमें मजबूतीसे जकड़ रखनेके लिए उन्मत्त बालाओंका समूह उपस्थित कर दिया गया था। तरुणी सुन्दरियोंसे वह वेष्टित था। उसके चारों ओर विलासकी तरल तरंगे हिलोरे लेने लगीं। जो कुछ मिला उसीमें मग्न हो गया। माता द्वारा निर्मित भोगभूमिमें उसने अपनेको उन्मुक्त छोड़ दिया। वह दिन रात एक आकर्षक स्वप्न-राज्यमें मस्त रहने लगा। उसके जीवनका अमूल्य समय एक मायामय शृङ्खलासे बद्ध हो गया।

(५)

व्यापारीका रत्नकम्बल महामूल्य होनेके कारण कोई ले नहीं

रहा था। असलमें वह एक रत्न-विक्रेता था। मूल्यवान रत्नोंका व्यापार करना ही उसका ध्येय था। उसके पास रत्नोंके अतिरिक्त एक बहुमूल्य रत्न-कंबल था। अनेक स्थानोंपर उस कम्बलके बेचनेका उसने प्रयत्न किया परन्तु दुर्भाग्यसे उसके मूल्यको कोई आंक नहीं सका।

वह निराश होकर उज्जयिनीके महाराजके निकट आया था। उसने निर्णय कर लिया था कि किसी भी मूल्यपर वह उसे बेंच देगा। महाराजको उसने कंबल दिखलाया। वास्तवमें वह बहुमूल्य था। कीमती रत्न और मणिएं उसमें जड़ी थीं। सुंदर कारीगरीका वह एक नमूना था किन्तु वह इतना अधिक कीमती था कि महाराज उसे चौथाई कम मूल्यपर भी नहीं खरीदना चाहते थे। व्यापारी इससे अधिक घाटा उठानेमें असमर्थ था, वह जा रहा था।

यशोभद्राको उसके कंबलका पता लगा। उसने उसे अपने भवन पर बुलाया और उसकी इच्छानुसार मनमाना मूल्य देकर अपने पुत्रके लिये उसे खरीद लिया। व्यापारी यशोभद्राके उदार हृदयकी प्रसंशा करता हुआ चला गया। कंबल सुकुमालके पास भेजा गया किन्तु हाथमें लेते ही उसे वह इतना कठोर लगा कि उसने उसे उसी समय अपने हाथोंसे हटा दिया। यशोभद्राने निराश होकर उसके टुकड़ोंसे अपनी पुत्रवधुओंके पहरनेके लिये सुंदर जूतियां बनवादीं।

एक समय सुकुमालकी द्वितीया पत्नी सुन्दरी ज्येष्ठा अपने पैरोंको धो रही थी। रत्नवर्ण जूतियां उसके पास ही पड़ीं चमक रही थीं। ऊपर उड़ते हुए एक तीक्ष्ण-दृष्टि गृद्धने उसे देखा। उसे

लगा, यह मांस पिंड है। वह उन्हें लेकर उड़ा परन्तु कुछ दूर जाकर ही उसका भ्रम दूर होगया। उसे मालूम होगया कि यह उसके कामकी चीज नहीं है। उसने उसे नीचे छोड़ दिया। नीचे वेश्या वसंतसेनाका भवन था। वह अपनी अट्टालिका पर खड़ी हुई कुछ देख रही थी, अचानक किसी चीजको गिरते देखकर वह चौंक पड़ी। उसने उसे उठाकर देखा—अरे! इतना बहुमूल्य पाद त्राण! राजरानीके अतिरिक्त यह किसका होगा। उसने सोचा, और वह उन्हें लेकर राज भवन गई।

महाराजको मस्तक झुकाकर वह बहु मूल्य पाद-त्राण उसने उनके सम्मुख रख दिया। महाराजने देखा कि प्रकाशकी सुन्दर किरणें उससे निकल रही हैं। देखकर वे आश्चर्यमें पड़ गये। इतने बहु मूल्य पाद त्राण किसके होंगे? मेरे राज्यमें इतना सौभाग्य किस महिलाको प्राप्त है? मैं आज ही उस धनिक शिरोमणिका पता लगा लूंगा। उन्होंने अपने गुप्तचरोंको उस पाद त्राणके स्वामीका पता लगानेकी आज्ञा दी। पता शीघ्र ही लग गया। उन्हें मालूम होगया कि सिठानी यशोभद्राकी पुत्र वधूकी ये पादुकाएं हैं। राजाने सोचा, इतनी गौरव-शालिनी महिलाका परिचय मुझे अवश्य होना चाहिये। उन्होंने अपने प्रधान मंत्री द्वारा यशोभद्राको सूचना भेजी कि मैं आपके पुत्रको देखना चाहता हूं।

यशोभद्राने अपनेको कृत—कृत्य समझा। स्वागतका शानदार प्रबन्ध किया गया। महाराज पधारे, बड़े ठाठसे उनका अभिवादन किया गया। उच्च रत्न—सिंहासन पर बिठलाकर उनकी आरती की गयी। परन्तु यह क्या! राजाने देखा—सुकुमारकी बड़ी आंखोंसे

अश्रुधारा बह रही है । वे बोले—भद्रे ! तेरे पुत्रको यह रोग कबसे लग गया है ? उसकी आंखोंसे ये आंसू क्यों निकल रहे हैं ?

यशोभद्राने देखा कि सचमुच ही लड़केके नेत्रोंसे जलधारा बह रही है । ओह ! मैं समझी ।"

वह बोली—महाराज ! सुकुमालके रात्रि दिन अबतक रत्नद्वीपोंके उज्ज्वल प्रकाशमें ही व्यतीत हुए हैं । इसकी आंखोंने कभी सूर्यके तीक्ष्ण प्रकाश और दीपककी ज्योतिके दर्शन नहीं किये । आज दीपक द्वारा आपकी आरती उतारी गई । उसकी तीव्र ज्योति इसके सुकोमल नेत्र सहन नहीं कर सके । इसीसे यह आंसुओंकी धारा बहा रहे हैं । सुनकर महाराज चकित रह गये ।

भोजनका समय हो गया था । यशोभद्राने आग्रह किया—महाराजका भोजन यहीं हो ।

वे उसके आग्रहको टाल न सके । सुकुमालकी भी थाल वहीं आई । वह भी राजाके पास ही खाने बैठा । थालमें परोसे हुए चावलोंमेंसे वह एक-एक कण निकाल कर खा रहा था । श्रेष्ठिपुत्रकी इस अनभिज्ञतासे राजाको आश्चर्य हुआ । वे फिर बोले—"भद्रे ! यह तेरा सुकुमाल तो बड़ा भोला है । इसे तो अभी तक यह भी नहीं मालूम कि भोजन कैसे किया जाता है ? तूने इसे क्या शिक्षा दी है ? देख यह इन चावलोंमेंसे एक-एक कण निकाल कर खा रहा है ।

अब यशोभद्राको हंसी आए विना नहीं रही । वह किंचित मधुर हास्यसे बोली—"महाराज ! इसमें भी एक रहस्य है । यह बालक खिले हुए कमलोंमें बसाए हुए चांवलोंका भोजन नित्यप्रति करता है ।

आज वह कुछ कम थे। उनमें दूसरे चांवल मिला दिये गये थे। इसलिये वह उनमेंसे कमल पुष्पवासित चांवलोंको चुन चुन कर खा रहा है।

वाह! सुकुमारताकी हद होगई! सुकुमालकी इस सुकुमारतापर राजा मुग्ध हो गये। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे "अवंती सुकुमार" का पद प्रदान किया।

भोजनके पश्चात् राजा यशोभद्राके विशाल भवनका निरीक्षण करते हुए अंधकारसे व्याप्त एक तहखानेके निकट पहुंचे। उसमें नीचे उतरनेके लिये छोटी और सुंदर सीढ़ियां थीं। प्रकाशकी सहायतासे उन्होंने देखा, असंख्य रत्न उसमें बिखरे पड़े थे। इतनी धनराशी देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। यशोभद्राने बहुमूल्य रत्न उन्हें भेंट किये। महाराज यशोभद्राकी उदारता और सुकुमालकी सुकुमारतापर विचार करते हुए अपने प्रासादमें पहुंचे।

(५)

साधु महात्मा देशके प्रत्येक स्थान पर स्वतंत्रतासे विचरण करते हैं। उन्हें कोई बन्धन नहीं—उन्हें किसीसे आशा नहीं। वे अपने लिए किसी प्रकारकी सहायताके इच्छुक नहीं। आत्मरस मस्त, निर्द्वन्द वे महात्मा उन्मुक्तभावसे चाहे जहां अपने शरीरको डाल देते हैं। वे केवल वर्षाके चार मास किसी एक स्थान पर ही व्यतीत करते हैं।

वर्षाका सुहावना समय आगया। रिमझिमका मधुर शब्द अमृत ढालने लगा। पपीहाकी पुकार प्रारम्भ होगयी। अंबर अनेक प्रकारके वेश बदलने लगा और मेघ पृथ्वीको प्लावित करने लगे। तपस्वी गणधराचार्यने अपना चातुर्मास उज्जयिनीमें करना निश्चित किया। यशोभद्राके महलके पास ही एक सुन्दर उद्यान था। योग धारनेके

लिये उन्होंने उसे उपयुक्त समझा । वे वहीं ठहर गये ।

यशोभद्राको मालूम हुआ कि मेरे महलके निकट ही किसी महात्माने आसन जमाया है । वह सब कुछ छोड़कर उनके पास गई । यद्यपि वह समझती थी कि महात्माओंका निश्चय वज्रकी एक सुदृढ़ दीवालकी तरह अचल होता है किन्तु फिर भी उसने प्रयत्न किया । वह बड़ी भक्तिसे करुण स्वरमें बोली—महात्माजी ! मैं रोक तो नहीं सकती पर एक प्रार्थना करती हूं । आप यदि इस दासी पर दया करें तो इस स्थानको बदल लीजिये । इस राज्यमें आपके लिये सुन्दरसे सुन्दर स्थान मौजूद हैं । आप उचित समझें तो उनमेंसे किसी अन्य एक स्थानको चुन लीजिये । महात्मा शान्ति-राज्यको स्थापित करते हुए बोले—"भद्रे ! मेरा स्थान तो निश्चित होगया । यह असंभव है कि मैं स्थान बदलूं । तू कह, तेरा मतलब क्या है ?

हृदयकी समस्त वेदना समेटकर यशोभद्रा बोली—"महात्म जी ! मैं क्या कहूं ! आपने निश्चय ही कर लिया है । खैर, आप तो जानते ही हैं । मेरा एकलौता पुत्र है, मैंने उसे कितने दृढ़ बंधनोंसे जकड़ रखा है । आप ही उन बंधनोंको खोलनेमें समर्थ है, बस मैं अब आपसे यही वरदान चाहती हूं कि आप अपने चातुर्मासके समयमें इस प्रकार उपदेश न दें जो उसके कानों तक पहुंच सके और मेरे बसाए हुए स्वप्न-राज्यको छिन्न भिन्न करदे ।

साधु दयार्द्र होकर बोले—"भद्रे ! मैं तेरा मतलब समझ गया । अपने हृदयसे व्यर्थ चिन्ताएं निकाल दे । मेरे चातुर्मास तक यह न होगा ।" महात्माके वचन मिल जानेपर उसके सिरसे चिन्ताका भार कुछ कम हुआ ।

सुकुमार सुकुमाल मुनि अवस्थामें ।

[स्यालनियां आपका भक्षण कर रही हैं]

(६)

महात्माका चातुर्मास समाप्त हो गया, आज उनके उज्जयिनीसे विहार करनेका दिन था। सवेरे चार बजेका समय था। वे पाठ कर रहे थे। उनका स्वर आज कुछ ऊंचा हो गया था। देवताओंके वैभवका वर्णन था। एक आवाज सुकुमालके कानों तक पहुंची। वह पूर्व स्मृतिके तार झनझना उठे। किसीने उसे जगा दिया। वह बोल उठा—" अरे! मैं आज यह क्या सुन रहा हूं ? " स्वर कुछ और ऊंचा होगया। पूर्वजन्मकी उसकी स्मृति जागृत हो उठी। यह तो मेरे ही पूर्व वैभव वर्णन है। अरे मैं क्या था और आज क्या हूं ! वे विलासके दिन किसतरह चले गये ? वे सुखद स्मृतियां आज मेरे अंतरपट पर कुछ मीठी मीठी थपकियां दे रही हैं ! तब क्या उसी तरह यह भी नष्ट होजायगा। जाऊं उनसे ही मालूम करूं।"

वह उठा—रात्रि कुछ अवशेष थी। शून्यगतिसे ही महलसे नीचे उतरा और सीधे महात्माके पास चला गया। आज उसके लिये कोई प्रतिबंध नहीं था। यदि होता भी तो वह उसे कुचल डालता। उसकी मनोभावना आज अत्यंत प्रबल हो उठी थी। जाकर महात्माको प्रणाम किया। बोला—" महात्मा! हां आगे और कहिये मेरा वह साम्राज्य तो गया—यह साम्राज्य मेरा अब कबतक स्थिर रहेगा ! " महात्मा बोले—" पुत्र तू ठीक समयपर आ गया, बस अब थोड़ा ही समय शेष है।" मुझे हर्ष है। तू आ तो गया। तेरी उम्रके बस अब तीन ही दिन बाकी हैं। तुझे जो कुछ करना हो इतने समयमें ही अपना सब कुछ कर डाल।

सुकुमालने सुना—परदा उलट गया था। अब उसे कुछ दूसरा ही दृश्य दिख रहा था। खुल गये थे उसके हृदय-कपाट। उसे कुछ कुछ अपना बोध होने लगा। साधु फिर बोले—मानवकी महत्ता केवल विश्व वैभव एकत्रित करनेमें नहीं है। अनन्त वैभवका स्वामी बनकर ही वह सब कुछ नहीं बन जाता। वास्तविक महत्ता तो त्यागमें है—निर्मम होकर सर्वस्व दानमें ही जीवनका रहस्य है। स्वामी तो प्रत्येक व्यक्ति बन सकता है। ज्ञान शून्य, हिंसक और व्यसन-व्यस्त व्यक्ति भी वैभवके सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सकते हैं। किन्तु त्यागी विरले ही होते हैं। वे सर्वस्व त्याग कर सब कुछ देकर भी उस अकारनिक सुखका अनुभव करते हैं जिसका अंश भी रागी प्राप्त नहीं कर सकता।

सुकुमाल आगे और अधिक नहीं सुन सका। बोला—महात्मन! अधिक मत कहिये मैं अब सुन न सकूंगा मैं लज्जासे मरा जाता हूं। मैंने आजतक अपनेको नहीं समझा। ओह! कितना जीवन मेरा व्यर्थ गया! अब नहीं खोना चाहता। एक एक पल मैं अपने उस विषयी जीवनके प्रायश्चित्तमें लगाऊंगा। मुझे आप दीक्षा दीजिये। अभी-इसी समय-मुझे आप अपने चरणोंमें डाल लीजिये।

साधुने दीक्षा दी। सुकुमालका सुकुमार हृदय आज कठोर पत्थर बन गया।

लड़ाईके भयंकर मैदानमें शत्रुओंको विजित कर देना वीरता अवश्य कहलायगी। भयंकर गर्जना और चमकते हुए नेत्रोंसे मनुष्योंको

भयभीत कर देने वाले सिंहके पंजोंसे खेलना आश्चर्यजनक अवश्य है। अरुण नेत्रोंवाले काले नागको नचानेमें भी बहादुरी है किन्तु यह सब भोले संसारको बहकानेके साधन हैं। कोई भी व्यक्ति इनसे आत्मसंतोष प्राप्त नहीं कर सकता। यह वीरता और चातुर्य स्थायी विजय प्राप्त नहीं कराता। बड़े बड़े बहादुरोंपर विजय प्राप्त करनेवाले बादशाह भी अंतमें इस दुनियांसे विजित होकर गये हैं, हां! अपने आप पर विजय पाना वास्तविक वीरता है। प्रलोभनोंकी घुड़दौड़में आगे बढ़नेवाले मन पर-वासनाकी रंगभूमिमें नृत्य करनेवाली इन्द्रियों पर-काबू पाने उन्हें अपना गुलाम बनानेमें ही स्वामित्वका रहस्य है।

साधु, तपस्वी, त्यागी शब्द जितने ही महत्वपूर्ण हैं उन्हें प्राप्त करनेके लिये उतनी ही साधना, तपस्या और त्यागकी आवश्यकता है। केवल मात्र नग्न रहने अथवा गेरुए वस्त्र धारण कर लेनेसे ही वह पद प्राप्त नहीं हो जाता है। जब तक वह अपनी कामनाओं और लालसाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, उसकी इच्छाएं मर नहीं जातीं तबतक तो केवल ढोंगमात्र ही है। वे व्यक्ति जो अपने गार्हस्थ जीवनको ही सफल नहीं बना सकें, साधनोंके प्राप्त होते भी जो अपनेको अग्रसर नहीं कर सके और गृहस्थ जीवनकी कक्षामें अनुत्तीर्ण होकर यश, सम्मान और इच्छाओंकी लालसाओंसे आकर्षित होकर अपनी अकर्मण्यताको ढकनेके लिये तपस्वी या महात्माका स्वांग रचते हैं और भोले संसारको ठगनेके लिये तरह तरहके माया जाल रचते हैं वे तपस्वी नहीं आत्म वंचक हैं। वे अपनेको ईश्वरका प्रतिनिधि बतलानेवाले तीव्र प्रतारणाके पात्र हैं, आडंबरकी

छिद्रको ढकनेवाले उन व्यक्तियोंसे शांति और साधना सहस्रों कोस दूर भागती है। उनका अस्तित्व न रहना ही श्रेयस्कर है।

सुकुमाल तपस्वी बना नहीं था। अंतरकी उत्कट आत्म साधनाने उसे तपस्वी बना दिया था। वह संसारका भूखा वैरागी नहीं था वह तो तृप्त तपस्वी था। उसकी आत्मा तपस्वी बननेके प्रथम ही अपने कर्त्तव्यको पहचान चुकी थी। वह जान गया था संसारके नग्न चित्रको।

रत्न दीपकोंके प्रकाशके अतिरिक्त दीप प्रकाशमें अश्रुपूर्ण हो जानेवाले अपने नेत्रोंकी निर्बलताको वह समझता था। कमल वासित सुगंधित चांवलोंके अतिरिक्त साधारण तन्दुलके स्वादको सहन न कर सकनेवाली अपनी जिह्वाकी तीव्रताका उसे अनुभव था। मखमली गद्दोंपर चलनेके अतिरिक्त पृथ्वीपर न चलनेवाले पैरोंकी सुकुमारताका उसे ज्ञान था। उसे अपने शरीरके अणु अणुका पता था। वह एक स्टेज पर उनको ला चुका था, अब उसे उन्हें दूसरी ओर ले जाना था। अब तो उसे इन्हींसे दूसरा दृश्य अंकित कराना था। अभी तो वह इनकी गुलामी कर चुका था। उनके इशारे पर नाच चुका था, अब सुकुमालके इशारे पर उनके नाचनेकी वारी थी। वह मजबूत कठोर उसे बनना था। वह बना। एक क्षणमें ही वह परिवर्तित हो गया। पलक मारते ही उसने अपने स्वामित्वको पहचा लिया, मानो यह कोई जादू था। कड़ाकेकी दोपहरीका समय, पाषा कणमय पृथ्वी, उसके पैरोंसे रक्तकी धारा बहने लगी किन्तु उसे उ

इन्हें आगे बढ़ाना ही था, कठोर परीक्षामें उसे पूरे मार्क प्राप्त करना था। वह बढ़ता ही गया अपने इच्छित पथपर, एक भयंकर गुफामें उसने अपना आसन जमाया।

(७)

हां वह शृंगालनी थी। कितने जन्मोंके वैरका बदला उसे चुकाना था। उसने इन्हें देखा, प्रति हिंसाके तार झनझना उठे। वह हुंकार उठी, सुकुमाल ध्यान-मग्न थे, उसे लगा, वह अपने सभी जन्मोंका बदला आज चुका लेगी, साधु उफ भी नहीं करेगा।

गीदड़ीने अपने कठोर दांतोंको बढ़ाया और निर्भयतासे उनके कोमल अंगका भक्षण करने लगी। कितना मधुर था उनका रुधिर, पीते पीते वह तृप्त नहीं हुई। उसके बच्चे भी उनके रुधिरसे अपनी प्यास बुझाने लगे। किन्तु वाहरे सुकुमाल! वह अडोल थे, मानों पाषाण। शरीरपर सब कुछ होते हुए भी उन्हें कुछ नहीं लग रहा था। उनका मन, उनकी आत्मा तो कहीं दूसरे ही स्थानपर स्थित थी। उनकी शारीरिक ममता मर चुकी थीं, नश्वर तनकी ओरसे मन कहीं चला गया था। अपनी विचारधाराको वे किसी अन्य ओर ही प्रवाहित कर चुके थे।

निर्दय शृगालिनी उनकी जंघाओंको खाकर ही तृप्त नहीं हुई। उसने उनके हाथों और पेटको खाना शुरू किया।

फिर निर्दयतासे उसने उनके शरीरको नोंचकर खाना प्रारम्भ किया था! ओह! वह दृश्य कितना हृदयद्रावक था। कठोरसे कठोर

हृदय भी उसे देखकर मोम बन जाता । किन्तु शृगालीके हृदयमें करुणाको स्थान कहां था—वह इसी तरहसे तीन दिन तक खाती रही किन्तु महात्मा सुकुमालके मुंहसे आह भी नहीं निकली । वह अपने आत्मध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुए । धन्य रे महात्मा ।

तीसरे दिन उनका आत्मा इस नश्वर शरीरका त्यागकर मुक्ति-लोककी ओर प्रस्थान कर गया, ज्योतिमें ज्योति समा गई । वह सुकुमार सुकुमाल संसारका महा विजेता बन गया । संसारने उनके तपश्चरणकी प्रशंसा की, पूजा की और उनके शरीरकी भस्मको अपने मस्तकपर चढ़ाया ।

तृतीय खंड— —युगांत।

[१७]

महावीर वर्द्धमान।

(युगप्रवर्तक जैन तीर्थंकर; अहिंसाके अवतार)

(१)

उस समय जब अशांतिकी घटा चारों ओरसे घिर आई थी, अनाचार और अत्याचारके अंधकारने विश्वको घनीभूत कर लिया था, हिंसाकी बिजलियां चमक कर नेत्रोंको चकाचौंध कर रही थीं तब सारा भूमण्डल वेदनासे कराह उठा था।

युगधर्मप्रचारक ऋषभदेवसे लेकर श्री पार्श्वनाथ तक २३ तीर्थंकरोंका अवतरण हो चुका था। उन्होंने अपने धर्मप्रचारके समयमें जनताको शांति और मुक्ति पथका प्रदर्शन किया था।

पार्श्वनाथजीके तीर्थंकालके बादसे वैदिक धर्मका प्रभाव तीव्रतासे

बढ़ने लगा। क्रमशः उसने अपने आडंबर पूर्ण हिंसा आवरणमें भारतको ढक लेनेका प्रयत्न किया। मिथ्याचरण और क्रियाकांडोंने सत्यका स्थान लेलिया था। पशुबलि और यज्ञोंका प्रचार तीव्रगतिसे होने लगा था, ऐसे समयमें सत्य धर्मके प्रचारक किसी महात्माके अवतरणकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी।

महावीर वर्द्धमानका जन्म ऐसे ही वातावरणमें हुआ था। उनका जन्म क्षत्रियकुल राजा सिद्धार्थके यहां हुआ था।

राजा सिद्धार्थ नाथवंशके भूषण थे। उनकी पत्नीका नाम त्रिशला था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी शुभ तिथि थी वह जब महावीर वर्द्धमानने जन्म लेकर वसुधाको पुण्यमय बनाया था।

महावीरके पुण्य जन्मको जानकर देवता महाराजा सिद्धार्थके घर बधाई देने आए थे। उन्होंने बड़ा भारी उत्सव मनाया था।

महावीर बालकपनसे ही वीर और निर्भय थे। उनके शरीरमें अनंत बल और साहस था। एक दिन उनके साहसकी परीक्षा हुई।

वे अपने बालमित्रोंके साथ वनमें खेल कूद कर रहे थे। इसी समय एक भयंकर हाथी उस ओर दौड़ता आया। उसे देखकर सभी बालक भयसे डरकर भागने लगे लेकिन बालक महावीरके हृदयमें भयने थोड़ा भी प्रवेश नहीं किया; वे निर्भय होकर उसके साम्हने आकर डट गए। बालकके इस साहसने सबको चकित कर दिया। हाथीने अपना रूप बदला, वह एक देव था जो बालक महावीरके साहसकी परीक्षा करने आया था। उसका परीक्षण हो चुका था।

महावीर अब युवक थे, उनके सुन्दर और सुदृढ़ शरीरमें एक

भ० महावीरके जीवको सिंह योनिमें मुनिराज उपदेश दे रहे हैं।

दिव्य प्रभाने प्रवेश किया। उनका स्वर्ण शरीर अपूर्व आभासे चमकने लगा। सुडौल और परिपुष्ट अंगोंपर सुन्दरता झलकने लगी।

लाख प्रयत्न करने पर भी कामदेव उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सका। उनके पवित्र अन्तःकरणमें उसे तिलभर भी स्थान नहीं मिला था। वे गृहस्थाश्रममें रहकर भी जलसे कमलकी तरह उसके प्रलोभनसे विलग थे। भोग विलास और विषय सुखकी लालसा उनके मनमें नहीं लगी थी।

युवक हुआ देख महाराजा सिद्धार्थने किसी योग्य कन्याके साथ उनका विवाह करना चाहा लेकिन महावीर वर्द्धमानने इसे स्वीकार नहीं किया। वे संसारके विषय बंधनमें अपनेको नहीं फंसाना चाहते थे। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर वे अपना पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहते थे। यही हुआ मातापिताने उनके आदर्श विचारों पर प्रतिबंध लगाना उचित नहीं समझा।

युवक महावीरने ३० वर्ष तक गृहस्थाश्रममें रहकर आदर्श जीवन व्यतीत किया। एक दिन उनके हृदयमें लोककल्याणकी भावनाओंने तीव्र आंदोलन मचाना प्रारम्भ किया। उन्होंने दीन और मूक पशुओंकी पुकारको करुण हृदयके साथ सुना था।

इस पुकारको सुनकर आज उनका हृदय द्रवित हो उठा। हृद्तंत्रीके तार आज झंकृत हो उठे थे। संतप्त और विदग्ध हृदयकी दाहने उनके मनको पिघला दिया था।

क्षणभरके लिए उन्होंने अपने जीवन कर्तव्यको सोचा। शीघ्र ही उन्होंने सब कुछ निर्णय कर लिया। मैं अपने जीवनको कल्याण

पथ पर छोड़ दूंगा, अशांत और दुखी जनताका मैं पथ प्रदर्शन करूंगा, उसके लिए मुझे अपना सर्वस्व त्याग करना होगा। लोक-कल्याणके लिए मैं सब कुछ करूंगा, तपस्वी बनकर मैं अपनी आत्माको पूर्ण विकसित करूंगा और पवित्र आत्म-ध्वनिको संसारभरमें फैलाऊंगा। यह विचार आते ही वे बालब्रह्मचारी महावीर तपस्वी बननेके लिए तैयार होगए।

त्रिशला माताको अपने पुत्रके विचार ज्ञात हुए। पुत्र वियोगके अथाह दुखसे उनका हृदय विकल होगया। वह इस दुखको सह न सकी। रोते हृदयसे बोली—"पुत्र! मैं अबतक पुत्रवधूके सुखोंसे वंचित रहकर भी तुम्हारा मुंह देखकर संतोष कर रही थी लेकिन अब तुम भी मुझे त्यागकर जा रहे हो अब मेरे जीवनका क्या सहारा रहेगा?

पुत्र! इतने बड़े राज्य वैभवका त्याग तुम क्यों कर रहे हो? क्या गृहस्थजीवनमें रहकर तुम लोक-कल्याण नहीं कर सकते? महलोंमें रहनेवाला तुम्हारा यह शरीर तपस्याके कठिन कष्टको कैसे सहन कर सकेगा? मैं प्रार्थना करती हूं कि जननीके पवित्र प्रेमको तुम इस-तरह मत ठुकराओ गृहस्थ जीवनमें रहकर ही संसारका कल्याण करो।"

जननीको सान्त्वना देते हुए महावीर बोले—"जननी! इस उत्स-वके समयमें आज यह खेद कैसा? तेरा पुत्र संसारका उद्धार करने जारहा है, आत्मकल्याणके प्रशस्त पथका पथिक बन रहा है, यह जानकर तो तेरा हृदय गौरवसे भर जाना चाहिए।

गौरवमयी जननी! गृहस्थ जीवनके बन्धन अब मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती, अब तो यह संसारमें आत्मस्वातंत्र्य और समताका

साम्राज्य स्थापित करनेके लिये तड़फड़ा उठी है, तुम उसे इस जीर्ण बंधनमें बद्ध रखनेका हठ मत करो, अब उसे स्वछंद विचरनेकी ही अनुमति दो।

वर्द्धमान महावीरने अपने पवित्र उपदेश द्वारा जननी और जनकके मोहजालको छिन्न भिन्न कर दिया। उनसे आज्ञा लेकर वे तपश्चरणके लिए वनकी ओर चल दिए।

× × ×

अपने शरीरको महावीरने तपश्चरणकी ज्वालामें डाल दिया था, तीव्र आंचसे कर्ममल दूर होकर आत्मा पवित्र बनाने लगा था, तपस्याकी आंचमें एक और आंच लगी।

वे अनेक स्थानोंपर भ्रमण करते हुए एक दिन उज्जयिनीके श्मशानमें ध्यानस्थ थे, स्थाणु नामक रुद्रने उन्हें देखा। पूर्व जन्मके संस्कारोंके कारण उसने उनकी शांति भंग करनेका कुत्सित प्रयत्न किया। उन पर अनेक असहनीय उपसर्ग किए लेकिन महावीर किसी तरह भी तपश्चरणसे चलित नहीं हुए। अत्याचारीकी शक्तिका अन्त होगया था, इस उपसर्गने महावीरके तपस्वी हृदयको और भी दृढ़ बना दिया।

महावीरने तेरह वर्ष तक कठिन साधना की। अन्तमें उन्हें इस आत्म साधनाका फल कैवल्यके रूपमें मिला-उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की।

महावीर वर्द्धमान महान् आत्म संदेशवाहक थे। सर्वज्ञता प्राप्त करते ही विश्वकल्याणके लिए उनका उपदेश प्रारम्भ हुआ। विशाल सभास्थल निर्माण किया गया था। उनका उपदेश सुननेके लिए जनसमूह एकत्रित होने लगा।

भारतमें विरोधकी जड़ जमानेवाली विषमताकी बेलिपर उन्होंने प्रथम प्रहार किया। क्रियाकांडके पालनेमें पली हुई अंध परम्परा और अहंमन्यताको उन्होंने समूल नष्ट कर दिया। केवल जाति अधिकारोंके बलपर स्वयंको उच्च और अन्यको नीच समझनेवाली कुत्सित भावनाके भयंकर तूफानको शांत करनेमें उन्होंने अपनी पूर्ण शक्तिका प्रयोग किया। मानव हृदयमें कुंठित पड़ी आत्मोत्थानकी भावनाको बल दिया और गिरे हुए मनोबलको जागृत, विकसित और प्रोत्साहित किया।

अपनेको तुच्छ और हीन समझनेवाले, सामाजिक और धार्मिक साधनोंसे ठुकराए हुए मानवोंके मनमें उन्होंने तीक्ष्ण आत्म-सम्मानकी प्रकाश किरणोंको प्रविष्ट कराया।

ठुकराए हुए दीन हीन मानवोंकी आत्म-शक्ति इतनी कुंठित हो चुकी थी कि वे समझ नहीं सकते थे कि हम मानव हैं, हमें भी कोई अधिकार प्राप्त हैं।

मदांध धार्मिक ठेकेदारोंने मानव शक्तिको बेकार कर दिया था। वे सोच ही नहीं सकते थे कि हमें भी इस गाढ़ अंधकारमें कभी प्रकाशकी किरणोंका प्रदर्शन प्राप्त हो सकता है। हम इस भयंकर जड़त्वकी काल कोठरीसे कभी निकल भी सकते हैं।

महावीरको जड़त्व और हीनत्वकी चिरकालसे जड़ जमानेवाली उस भावनाको नष्ट करनेमें काफी शक्ति और आत्मबलका प्रयोग करना पड़ा। विषमताकी लहरें प्रचंड थीं। हिंसा और दंभका अकांड तांडव था, किन्तु महावीरके हृदयमें एक चोट थी, वे इस विषमतासे तिलमिला उठे थे। मानव मात्रके कल्याणकी तीव्र भावनाने उन्हें दृढ़

निश्चयी बना दिया था। मदांध धर्माधिकारियोंका उन्हें कड़ा मुकाबला करना पड़ा किन्तु वे अपनी मनोभावनाओंके प्रचारमें उत्तीर्ण हुए। मानवताके संदेशको मानवोंके हृदय तक पहुंचानेमें वह सफल हुए। उनकी यह सफलता साम्यवादका शंखनाद था, मनुष्यकी विजय थी और विशेष महत्ताका दर्शन करानेवाली स्वर्ण किरण थी।

मानवोंने उस स्वर्ण प्रकाशमें अपनी शक्तिको विकसित करनेवाले स्वर्ण पथको देखा। किन्तु उनके पद उसपर चलनेमें शंकित थे. उन्हें उसपर चलनेके लिए उन्होने प्रेरित किया, परिचालित किया और इच्छित स्थानपर चलनेकी शक्ति प्रदान की। वे उन पथके पथिक बने जिसपर चलनेकी उन्हें चिरकालसे लालसा थी। समानताकी सरिताके वेगमें वैषम्यके किनारे दह गए और एक विशाल तट बन गया, उन्हें साम्यवादके दर्शन हुए।

साम्यवादका रहस्य उन्होंने जनताको समझाया।

धर्म और सामाजिक क्रियाओंमें किसी भी जातिके मानवको समानाधिकार है। निर्धनता, शूद्रता अथवा स्त्रीत्वकी शृंखलाएं धार्मिक तथा आत्मसाधनमें किसी प्रकार बाधक नहीं होसकती। जातिगत अथवा व्यक्तिगत अधिकारोंका धार्मिक व्यवस्थामें कोई अधिकार नहीं। धर्म प्राणीमात्रके कल्याणके लिए है। जितनी आवश्यकता धर्मकी एक धनिकके लिए है उतनी ही निर्धनके लिए है। धर्मको लेकर प्रत्येक प्राणी अपना आत्म कल्याण करनेके लिए स्वतंत्र है। यह उनका दिव्य संदेश था।

महावीरके समवसरणमें प्रत्येक जातिके स्त्री-पुरुषको धर्मोपदेश

सुननेकी सुंदर व्यवस्था थी। किसीके लिए कोई भेदभाव नहीं था। पतितसे पतित व्यक्तिको उनकी शिक्षाऐं लेकर आत्म कल्याण करनेका पूर्ण अधिकार था। मानव मात्र ही नहीं पशु भी अपनी धार्मिक प्रवृत्तियोंको उनका प्रवचन सुनकर जागृत कर सकता था। धर्मव्यवस्थामें विचरण करनेके लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र और निर्मुक्त था। उसे कोई बंधन नहीं था। साम्यवादका सुंदर झरना झरता था। प्रत्येकको उसमें स्नान करनेका समान अधिकार था।

समन्वयकी सुन्दर विवेचना उन्होंने की—

प्रत्येक व्यक्तिमें स्वतंत्र विचारक शक्ति है। प्रत्येक अपूर्ण मानवमें विचार वैचित्र्य है। एक यह ऐसा प्राकृतिक बंधन है जिसका तोड़ना मानव सामर्थ्यके परे है। किन्तु दूसरे व्यक्तिके विचारोंमें विभिन्नता होते हुए भी प्रत्येकको किसी एक दृष्टिकोण पर स्थिर रहना ही होगा। तभी विश्वशांति स्थिर रह सकेगी। तभी भयंकर विद्वेष और हिंसाकी ज्वाला शांत हो सकेगी।

अपने विचारोंकी स्वतंत्रताके साथ साथ दूसरोंके विचार स्वातंत्र्यको महत्त्व देना होगा। अपनी स्वातंत्र्य रक्षाके लिए दूसरोंकी स्वातंत्र्य रक्षा करना होगा। अपने विचारोंके राज्यमें दूसरोंके विचारोंको स्थान देना ही होगा। भले ही वे हमसे विपरीत ही क्यों न हों, यह आवश्यक नहीं होगा कि उन विपरीत विचारोंको रखकर हमें उनका उपयोग करना पड़े।

दूसरोंके कुछ विचार हमारे लिए अनुपयोगी कष्टकर और हानिप्रद भी हो सकते हैं, लेकिन इसीलिए हम उनके विरोधी हों

और उन विचारोंके कारण हम मानव समुदायके शत्रु बन जांय और विद्वेषकी भावनाएं जगाएं यह हमारे लिए आवश्यक नहीं पर उन्हें अपनेमें खपा लेना, अपने महान अस्तित्वमें उन्हें विलीन कर लेना, उन्हें विराट विश्व विचारके साम्राज्यमें मिला लेना, यह भी तो साधारण सामर्थ्यकी बात नहीं और इस तरहके समन्वयके सिद्धान्तको विश्व-पूज्य बना देना एक अचिन्त्य सामर्थ्यका कार्य था। भगवान् महावीरने उसी अचिन्त्य शक्तिका परिचय दिया। उन्होंने संसारमें फैले हुए परस्पर विरोधी विचारोंको एक विराट् परिषदका रूप दिया और प्रत्येक विचारको स्वतंत्र स्थान देकर महान् समन्वयकी सृष्टि की।

एकत्व, अनेकत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व आदि विभिन्न विचारवालोंका एक क्षेत्रीकरण किया और इस तरह धर्मके नामपर चलनेवाले विरोध, हिंसा और अनैक्यको विजित किया। इस समन्वयको उन्होंने 'अनेकान्त' का नाम दिया और इसकी जांचके लिये स्याद्वादको स्थापित किया।

"सत्य मेरा ही है" इस कठोरताको नष्ट कर उसके स्थान पर 'मेरा भी है' इस विशालताके द्वारको उन्होंने उद्घाटित किया।

'यह भी किसी दृष्टिसे सत्य है' उनके इस मंत्रने सब धर्मोंको एक स्थान पर ला दिया।

विश्वमें समन्वयकी धारा बह चली और उसमें विचारोंकी विभिन्न धाराएं एकमेक होगईं।

भयंकर हिंसाकांड और विद्वेषकी भावनाएं समन्वयकी इस धारामें बह गईं।

आत्म-स्वातंत्र्यकी शिक्षा अत्यंत महत्वशाली थी।
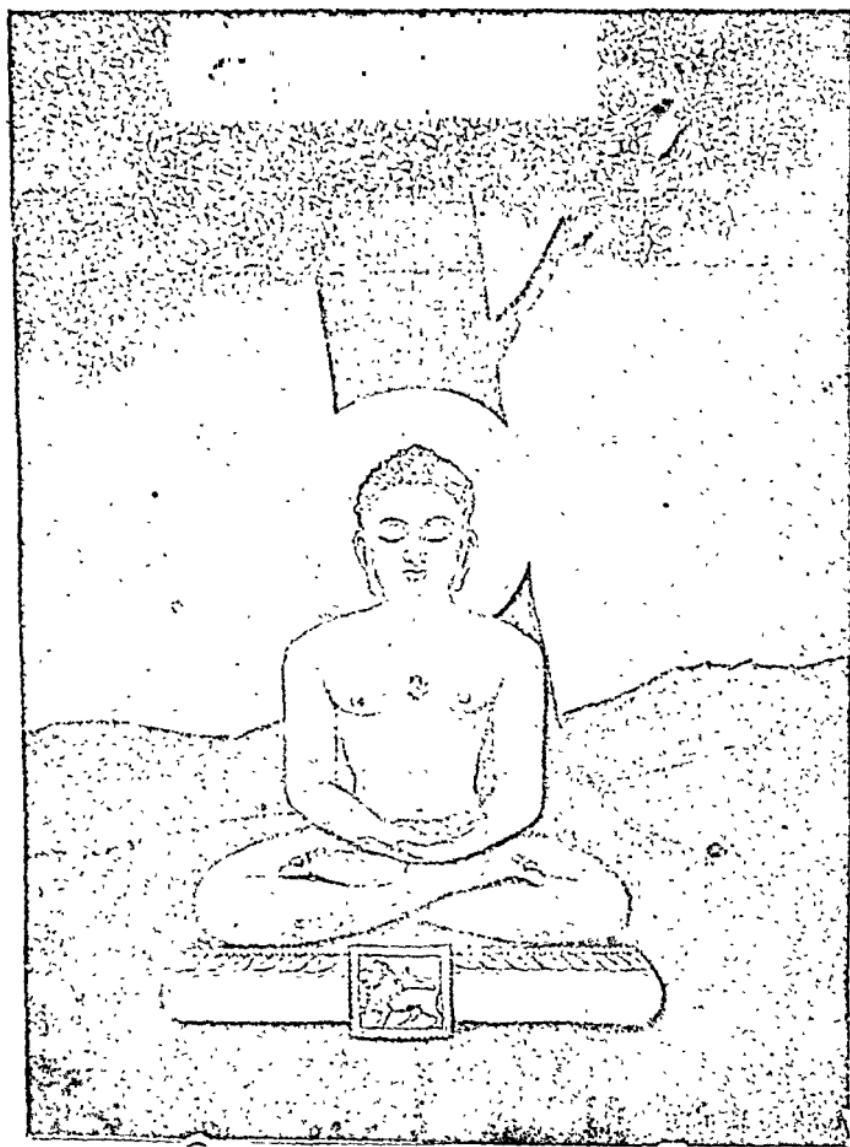
महावीर वर्द्धमान आत्मस्वातंत्र्यकी स्थापनाके एक मात्र प्रतीक थे, वे एक ऐसे प्रकाश-पुञ्ज थे जो अनंत शक्तियोंका महत्व प्रदर्शित करता है। उनका उपदेश था—

प्रत्येक आत्माके अन्दर मेरे जैसा अनंत प्रकाश-पुंज छुपा हुआ है और अनंत सामर्थ्यका स्रोत अबाधित गतिसे बह रहा है। जिस-तरह मैं आत्मशक्तिपर विश्वास करके उसके अचिंत्य आनंदका उपयोग कर रहा हूं, उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति आत्म ज्ञानके पथपर चलकर अनंत मुक्तात्माओंकी तरह पूर्ण आत्म स्वातंत्र्य प्राप्त कर सकता है।

उनका संदेश था—तुम अनंत शक्ति और सामर्थ्य रखनेवाले मानव इन वासनाओं और विकृतियोंके दास क्यों बने हुए हो? अनेक देवी देवताओंकी दासता करने और अपनेको तुच्छ समझनेकी तुम्हें आवश्यकता नहीं है। आत्मस्वातंत्र्यके लिए तुम्हें दंभ और पाखंडको मस्तक झुकानेकी आवश्यकता नहीं है।

आत्माएं स्वतंत्र हैं, वे पूर्ण विकसित होकर स्वातंत्र्य-सुखका उपभोग करनेकी शक्ति रखती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ण आत्मविकासके लिए मानवको किसीकी आधीनता, किसीके शासन और उपासनामें निरत रहना ही पड़े। शक्तिशाली आत्माएं आदर्श प्राप्तिके लिए किसी हद तक केवल साधन और सहयोगी होसकती हैं किन्तु आत्म स्वातंत्र्यके लिए वे पूर्ण स्वामित्व अथवा पूजकका स्थान नहीं ग्रहण कर सकतीं।

महावीर वर्द्धमान स्वयं यह शिक्षण नहीं देते थे। वे स्वयं

श्री १००८ भ० महावीर-वर्द्धमान ।

अपनेको यह प्रमाणित नहीं करते थे और न वे यह प्रेरणा करते थे कि मेरी अथवा किसी व्यक्ति मात्रकी उपासना, सेवा अथवा पूजा पूर्ण आत्म-स्वातंत्र्यके लिए आवश्यक है प्रत्येक आत्म-स्वातंत्र्यकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिके लिए आत्मनिर्भरता आत्मविश्वास और आत्मज्ञान पर पूर्ण स्थिर रहनेकी आवश्यकता है प्रत्येक आत्मामें अनंत शक्तियां समाभूत हैं और वे त्याग तपश्चरण और आत्मध्यानके द्वारा पूर्ण विकसित हो सकती हैं। वे उसके अन्तर्गत ही सन्निहित हैं।

उनका उद्देश्य इतना महान था उनके स्वातंत्र्यका सोपान इतना ऊंचा था जिसमें समाज, देश और राष्ट्रकी स्वातंत्र्यकी सीढ़ियां प्राथमिक सीढ़ियोंके रूपमें रह जाती हैं वे ऐसा विश्वस्वातंत्र्य चाहते थे जो तलवार और सैनिकोंके बलपर नहीं स्थापित होता, जो किलों और कोटोंके साधनों पर अवलंबित नहीं, जो आतंक और भयसे नहीं प्राप्त होता। उनका कथन था कि ये सब आत्म-स्वातंत्र्यके साधन नहीं, यह तो मानवको पराधीनताके बंधनमें डालनेवाले हैं।

वह विजय विजय नहीं जो मानवोंका खून बहाकर प्राप्त की जाती है, जिसके लिए निर्बलोंका बलिदान किया जाता है। आतंक, हिंसा, क्रूरता और नृशंसता द्वारा वह विजय नहीं मिलती है। आत्मविजयीके लिए अपने आप पर विजय प्राप्त करना होता है। उसे अपने अंदरके शत्रु—काम, क्रोध, छल, घृणा, लोभ, मोह आदिको जीतना होता है। इसके लिए उसे त्याग, तपस्या और सहनशीलताकी आवश्यकता होती है। इसी बलसे वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है तब पूर्ण स्वातंत्र्यका अधिकारी बनकर सुखका उपभोग करता है।

उनके इन सिद्धांतोंने विश्वमें अमरत्वका साम्राज्य स्थापित किया।

भगवान महावीरने साम्यभाव और विश्वप्रेमका शांतिपूर्ण साम्राज्य लानेके लिए महान् त्यागका अनुष्ठान किया। उन्होंने अपने जीवनके ३० वर्ष इस महान उपदेशमें लगा दिए।

× × ×

अपनी आयुके अन्त समयमें वे विहार करते हुए पावापुरके उद्यानमें आए। वह कार्तिक कृष्णा अमावस्याका प्रभातकाल था। रात्रिकी कालिमा क्षीण होनेको थी। इसी पवित्र समयमें उन्होंने इस नश्वर संसारका त्याग कर निर्वाण प्राप्त किया। देवताओं और मनुष्योंके समूहने एकत्रित होकर उनका निर्वाणोत्सव मनाया, उनके गुणोंका कीर्तन किया और उनकी चरणरजको अपने मस्तकपर चढ़ाया।

[१८]

श्रद्धालु श्रेणिक (बिंबसार)

(अनन्य श्रद्धालु महापुरुष)

(१)

राजा बिंबसार शिकार खेलकर वनसे लौटे थे। उनका मन आज अत्यन्त खिन्न हो रहा था। अनेक प्रयत्न करने पर भी आज उनके हाथ कोई शिकार नहीं लगा था। लौटते समय उन्होंने जैन साधुको खड़े देखा। अब वे अपने क्रोधको काबूमें नहीं रख सके। आज सवेरे शिकारको जाते समय भी उन्होंने इन्हीं साधुको देखा था। उन्होंने सोचा—इस नंगे साधुके दिखाई दे जानेके कारण ही आज मुझे शिकार नहीं मिला। वे बहुत झुंझलाए हुए थे। जंगलसे लौटते समय उसी स्थान पर साधुको निश्चल खड़े देखकर उनके हृदयमें बदला लेनेकी तीव्र इच्छा जाग्रत हो उठी।

राजा बिंबसारके अधिक क्रोधित होनेकी एक बात और थी। कल ही उनकी रानी चेलनाने बौद्ध भिक्षुओंका परीक्षण किया था। परीक्षणमें वे बुरी तरहसे पराजित और लज्जित हुए थे। उस परीक्षणसे राजा बिंबसारका जैन-द्वेषी हृदय और भी भड़क उठा था। वे जैन साधु-मात्रसे अत्यंत रुष्ट होगए थे और बौद्ध साधुओंके पराभवका बदला वह किसी तरह लेना चाहते थे।

प्रसंग यह था-राजगृहमें बौद्ध भिक्षुकोंका एक विशाल संघ आया था। संघ आगमनका समाचार बिंबसारने सुना। वे अत्यंत प्रसन्न होकर रानी चेलनासे बौद्ध भिक्षुकोंकी प्रशंसा करने लगे। वे बोले-"प्रिये! तू नहीं जानती कि बौद्ध भिक्षु ज्ञानकी किस उत्कृष्टताको प्राप्त कर लेते हैं। संसारका प्रत्येक पदार्थ उनके ज्ञानमें झलकता है। वे परम पवित्र हैं। वे ध्यानमें इतने निमग्न रहते हैं कि यदि उनसे कोई कुछ प्रश्न करना चाहता है तो उसका उत्तर भी उसे बड़ी कठिनतासे मिलता है। ध्यानसे वे अपनी आत्माको साक्षात् मोक्षमें लेजाते हैं। वे वास्तविक तत्वोंके उपदेशक होते हैं।

चेलनाने बौद्ध भिक्षुकोंकी यह प्रशंसा सुनी। उन्होंने नम्रतासे उत्तर दिया-"आर्य! यदि आपके गुरु इस तरह पवित्र और ध्यानी हैं तब उनका दर्शन मुझे अवश्य कराइए। ऐसे पवित्र महात्माओंका दर्शन करके मैं अपनेको कृतार्थ समझूंगी। इतना ही नहीं, यदि मेरे परीक्षणकी कसौटी पर उनका सत्य ज्ञान और चारित्र खरा निकला तो मैं आपसे कहती हूं, मैं भी उनकी उपासिका बन जाऊंगी। मैं पवित्रताकी उपासिका हूं, मुझे वह कहीं भी मिले। यह हठ मुझे नहीं है कि वह जैन साधु ही हों, सत्य और पवित्र आत्माके दर्शन जहां भी मिलें वहां मैं अपना मस्तक झुकानेको तैयार हूं, लेकिन बिना परीक्षणके यह कुछ नहीं होसकेगा। मैं आशा करती हूं कि आप मुझे परीक्षणका अवसर अवश्य देंगे।"

रानीके सरल हृदयसे निकली बातोंका राजा बिंबसारके हृदयपर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बौद्ध साधुओंके ध्यानके लिए एक विशाल

मंडप तैयार कराया। बौद्ध साधु उस मंडपमें ध्यानस्थ होगए। उनकी दृष्टि बंद थी, सांसको रोककर काष्टके पुतलेकी तरह समाधिमें मग्न थे।

राजा बिंबसार रानीके साथ वहां पहुंचे। रानी चेलनाने उनके परीक्षणके लिए उनसे अनेक प्रश्न किये लेकिन भिक्षुओंने उन्हें सुनकर भी उनका कोई उत्तर नहीं दिया। पासमें बैठा हुआ एक ब्रह्मचारी यह सब देख रहा था। वह रानीसे बोला-माताजी! यह सभी भिक्षुक इस समय समाधिमें मग्न हैं। सभी साधुओंकी आत्म शिवालयमें विराजमान हैं। देह सहित भी इस समय वे सिद्ध हैं इसलिए आपको इनसे कोई भी उत्तर नहीं मिलेगा।"

ब्रह्मचारीके इस उत्तरसे चेलनाको कोई संतोष नहीं हुआ। लेकिन वह तो पूर्ण परीक्षण चाहती थी। वह जानना चाहती थी कि भिक्षुकोंकी आत्मा वास्तवमें सिद्धालयमें है, या यह सब ढोंग है। इस परीक्षणका उसके पास एक ही उपाय था, उसने मंडपके चारों ओर अग्नि लगवा दी और उनका दृश्य देखनेके लिए कुछ समयतक तो वहां खड़ी रही, फिर कुछ सोच समझ कर अपने राजमहलको चलदी।

अग्नि चारों ओर सुलग उठी। जब तक अग्निकी ज्वाला प्रचंड नहीं हुई वे बौद्ध भिक्षुक ध्यानस्थ बैठे रहे, लेकिन अग्निने अपना प्रचंड रूप धारण किया, तो वे अपनेको एक क्षणके लिए ध्यानमें स्थिर नहीं रख सके। जिस ओर उन्हें भागनेको दिशा मिली वे उसी ओर भागे। कुछ क्षणको वहांका वातावरण बहुत ही अशांत होगया, अब वह स्थान साधुओंसे बिलकुल रिक्त था।

एक कोपित भिक्षुने जाकर यह सब बात राजा बिंबसारको सुनाई तो राजाके क्रोधका कोई ठिकाना नहीं था, उन्होंने रानीको

उसी समय बुलाया। कांपते हुए हृदयसे वे बोले—"रानी! तुम्हारा यह कृत्य सहन करनेयोग्य नहीं, मैं नहीं समझता था कि गरद्वेषमें तुम इतनी अंधी हो जाओगी। यदि तुम्हें बौद्ध भिक्षुकों पर श्रद्धा नहीं थी तो तुम उनकी भक्ति भले ही न करतीं, लेकिन उनके ऊपर ऐसा प्राणान्तक उपसर्ग तो तुम्हें नहीं करना चाहिए था। क्या तेरा जैन धर्म इसी तरह भिक्षुओंके निर्दयतासे प्राण घातकी शिक्षा देता है? तेरे परीक्षणकी अंतिम कसौटी क्या बेकसूर प्राणियोंका प्राणघात ही है?

कुपित नरेशको शांत करती हुई चेलना बोली—"नरेश्वर! मेरा लक्ष्य उन्हें जराभी तकलीफ देनेका नहीं था और न मेरे द्वारा उन बौद्ध भिक्षुकोंको थोड़ा सा भी कष्ट पहुंचा है। मैं तो ब्रह्मचारीके उत्तासे ही यह समझ चुकी थी कि ये बौद्ध भिक्षुक निरे दंभी हैं, ये अग्निकी ज्वालाको सह नहीं सकेंगे और भाग खड़े होंगे। मैं तो आपको इनके मौन नाटकका एक दृश्य ही दिखलाना चाहती थी, इसे आप स्वयं देख लीजिए।"

वे साधु समाधिस्थ नहीं थे, यदि उनकी आत्मा समाधिस्थ होती तो वे शरीरको जल जाने देते। शरीरके जलनेसे उनकी सिद्धालयमें विराजमान आत्माको कुछ भी कष्ट नहीं होना चाहिए था। वह समाधि ही कैसी जिसमें शरीरके नष्ट होनेका भय रहे, समाधिस्थ तो अपने शरीरके मोहको पहले ही जला बैठता है, फिर उसके जलने और मरनेसे उसे क्या भय हो सकता है?

महाराज! वास्तवमें आपके वे भिक्षु समाधिस्थ नहीं थे। उन्होंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर न दे सकनेके कारण मौनका दंभ रचा था,

उनका दंभ अब प्रकट होगया, आप अपने बौद्ध भिक्षुओंके इस दंभको स्पष्ट देखिए, क्या यह सब देखते हुए भी आपकी उनपर श्रद्धा रहेगी?

रानीके युक्तियुक्त वचन सुनकर महाराज निरुत्तर थे। लेकिन अपने गुरुओंके इस पराभवसे उनके हृदयको गहरी चोट लगी। ध्यानस्थ जैन साधुओंको देखकर आज उनकी वह चोट गहरी हो गई थी, उन्होंने साधुके ध्यानका परीक्षण चाहा। उन्होंने किसी तरहका विचार किए विना ही अपने शिकारी कुत्ते उन पर छोड़ दिए।

साधु परम ध्यानी थे। उनके ऊपर क्या उपसर्ग किया जारहा है, इसका उन्हें ध्यान भी नहीं था। उनकी मुद्रा उसी तरह शांत और निर्विकार थी। उनका हृदय उसी तरह आत्मध्यानमें गोते खा रहा था। उनकी मौन शांतिका उन शिकारी कुत्तों पर भी प्रभाव पड़े विना नहीं रहा। हिंसकसे हिंसक पशु भी आज उनकी इस शांतिसे प्रभावित हो सकता था। कुत्ते उनके सामने आकर मंत्र कीलित सर्पकी तरह शान्त खड़े रह गए।

बिंबसारकी आज्ञाके विपरीत कार्य हुआ। वे कुत्ते दौड़ा कर साधुकी समाधि भंग करना चाहते थे, लेकिन साधुकी समाधिने कुत्तोंको भी समाधिस्थ बना दिया। वे यह दृश्य देखकर दंग रह गए, साथ ही उन्हें साधुके इस प्रभाव पर ईर्षा भी हुई। वे सोचने लगे— यह साधु अवश्य ही कोई मंत्र जानता है जिसके बलसे इसने मेरे बलवान हिंसक कुत्तोंको अपने वशमें कर लिया है, लेकिन मैं इसके मंत्र बलको अभी मिट्टीमें मिलाये देता हूं। मैं अभी इस दुष्ट जादूगरका सर धड़से उड़ाए देता हूं फिर देखूंगा कि इसका जादू कहां रहता

है; वे ईर्षाके सामने कर्तव्यको भूल गए थे। विवेकको उन्होंने ठुकरा दिया था। एक न्यायशील राजा होकर भी उन्होंने अन्याय और अत्याचारके सामने सिर झुका लिया था। कृपाण लेकर वे आगे बढ़े, इसी समय एक भयंकर काला सर्प उनके सामने फुंफकारता हुआ दौड़ा। मुनिके मस्तक पर पड़नेवाली कृपाण सर्पके गलेपर पड़ी इस अचानक आक्रमणने उनके हृदयको बदल दिया था, बदलेकी भावना नष्ट नहीं हुई थी। लेकिन उसमें कुछ कमी अवश्य आगई थी, साधुके गलेमें मरा हुआ सर्प डालकर ही उन्होंने अपने बदलेकी भावना शांत कर ली।

साधु यशोधरके गलेमें सर्प डालकर वे प्रसन्न थे। सोच रहे थे, साधु अपने गलेमे सांपको निकाल कर फेंक देगा, लेकिन अब इस समय इतना बदला ही काफी है, संध्याका समय भी हो चुका था, वे संतोषकी सांस लेते हुए अपने महलको चल दिए।

(२)

बिंबसार जो कुछ कर आये थे उसे वे गुप्त रखना चाहते थे, लेकिन हृदय उनके कृत्यको अपने अंदर रखनेको तैयार नहीं था। वह उसे निकाल बाहर फेंकना चाहता था, तीन दिन तक तो उन्होंने अपने इस कृत्यको रानीसे अप्रकट रक्खा। लेकिन चौथे दिन जब रात्रिको वे राज्य महलमें अपनी शय्या पर लेटे हुए थे उनका साधुके साथ किया हुआ दुष्कृत्य उबल पड़ा। वह रानी पर प्रकट होकर ही रहना चाहता था। राजा लाचार थे, उन्होंने साधुके ऊपर सर्प डालनेकी कहानी कह सुनाई।

मुनिराज, श्रेणिक महाराज व चेलना रानी।

बुद्धधर्मी श्रेणिक राजाको, किया सुसम्यग्ज्ञानी।
दूर किया उपसर्ग मुनिका, थे मनःपर्यय ज्ञानी॥
सम आशीष दिया श्रीगुरुने, भाव भूपति जानी।
थी विदुषी धर्मज्ञ शिरोमणि, सती चेलनारानी॥

रानी चेलिनी इस कृत्यकी कल्पना करनेके लिए भी तैयार नहीं थी, सुनकर उसका हृदय कांप उठा।

वह पश्चात्तापके स्वरमें बोली—"आर्य ! आपसे मैं क्या कहूं ! लेकिन कहना ही पड़ता है। आपने भारी अनर्थ किया है। इस कृत्यसे आपने मेरे हृदयके टुकड़े टुकड़े कर दिये हैं। आप जैन साधुकी सहनशीलता, उनके त्याग और तपश्चरणसे परिचित नहीं हैं अन्यथा आप ऐसा कार्य कभी नहीं करते।"

रानीको संतोषकी धारामें बहाते हुए वे बोले—"रानी ! इसमें मेरा कुछ अधिक अपराध तो है नहीं जो तुम इतना अधिक खेद प्रकट करती हो। गलेमें सर्प डाल देनेसे कोई बड़ा अनर्थ तो हो ही नहीं गया है। वह मायावी उस सर्पको गलेसे निकालकर न मालूम कहीं चल दिया होगा फिर उसके लिए इतना पश्चात्ताप क्यों ?"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए रानीने कहा—"आर्य ! आपका यह विश्वास गलत है। जैन साधु ऐसा कभी नहीं कर सकते। यदि वे सच्चे जैन साधु होंगे तो उनके गलेमें वह सर्प उसी तरह पड़ा होगा, उनके लिए तो वह उपसर्ग होगा। जैन साधु इससे अधिक प्राणान्तिक उपसर्गोंकी भी परवाह नहीं करते। जीवनसे उन्हें मोह तो होता ही नहीं है। मोहको तो वह साधु दीक्षा लेनेके समय ही त्याग देते हैं। इसका प्रमाण आपको अभी मिल जायेगा। आप इसी समय मेरे साथ चलकर देखिए, आपको मेरा कथन सत्य प्रतीत होगा।

राजा बिंबसारने यह सब बड़े आश्चर्यके साथ सुना। प्रमाण वे चाहते ही थे। रानीके साथ उसी समय उस स्थानको चल दिए।

साधु यशोधर अपने स्थानपर उसी तरह निश्चल खड़े थे। उनके मुंहपर बड़ी शांति झलक रही थी। आत्मसंतोषकी रेखाएं उनके मुंहपर स्पष्ट दिख रही थीं। उनके हृदयमें द्वेष और दुर्भावनाके लिए तनिक भी स्थान नहीं था। गलेमें पड़ा हुआ सांप उसी तरह लटक रहा था। चींटे और चिउटियोंने मिलकर वहां अपने बिल बना लिए थे। लेकिन साधुको इससे कुछ मतलब नहीं था।

बिंबसारने साधुकी इस अद्भुत क्षमताको देखा। रानी चेलिनीने भी देखा। उसका करुण हृदय अंदर ही अंदर रोरहा था। उसने बड़ी सावधानीसे गलेमें पड़े सांपको निकाला। फिर नीचे चीनी फैलाकर चिउटियोंको दूर हटाया। चिउटियोंने उनके शरीरको खोखला कर दिया था। रानीने गर्मजलमें भिगोकर नर्म कपड़ेसे उसे साफ किया, फिर उसपर शीतल चन्दनका लेप कर एक गहरी संतोषकी सांस ली। जैन साधु रात्रिको मौन रहते हैं इसलिए उनका उपदेश सुननेकी इच्छासे उन दोनोंने रात्रिका शेष समय वहीं व्यतीत किया।

अंधकार नष्ट हुआ। दिनमणिकी किरणें फूट पड़ीं। साधुकी शांति और धैर्यसे राजा बिंबसार बहुत प्रभावित हुए थे। उनके हृदयका ताप शीतल होचुका था। उन्होंने साधुको भक्तिसे प्रणाम किया और अपने दुष्कृत्यके लिए क्षमा चाही।

साधुका हृदय तो क्षमाका लहराता हुआ महासागर था। उसमें तो द्वेष, ईर्ष्या और क्रोध तापके लिए स्थान ही नहीं था। वे शांति-चन्द्रकी किरणें बिखेरते हुए बोले—राजन्! आपके किस कृत्यके लिए मैं क्षमा दूं? आपने जो कुछ किया था वह सब द्वेष विकारके वशमें होकर किया था। अब वह आपके अन्दरसे निकल गया है। अप-

शत्रीका जब पता ही नहीं है तब दंड किसे देना और क्षमा किसे करना ? फिर मेरा आपने बिगाड़ ही क्या किया ? यह तो आपका तुच्छ परीक्षण था। मैं इस परीक्षणमें उत्तीर्ण हो सका इसका मुझे हर्ष है। यदि आप मुझे परीक्षणके इस फंदेमें नहीं डालते तो मुझे अपनी आत्मशक्तिका भान ही क्या होता ? आप अपने हृदयको अधिक खिन्न मत कीजिए, पश्चात्तापके आंसुओंको रोकिए और शांति सुखका अनुभव कीजिए। आपका अपराध तो कुछ था ही नहीं और यदि आप उसे मानते ही हैं तो वह तो आपके पश्चात्तापके आंसुओंके साथ ही धुल गया। अब तो आप पाक साफ हैं।

साधुकी इस समता पर बिंबसार मुग्ध होगए। उन्होंने उनके द्वारा धर्म व्याख्या सुनना चाही। यशोधरने उन्हें कल्याणकारी आत्म-धर्मका उपदेश दिया—जीव, अजीव तत्वोंकी विशद व्याख्या की और गृहस्थ जीवनके कर्तव्योंको समझाया। साधु यशोधरके धर्मोपदेशसे उन्होंने उस शांतिका अनुभव किया जिसे अब तक वे नहीं पा सके थे। उन्हें जैनधर्मके सिद्धांतोंपर अटूट श्रद्धा हुई और वे उसी समय जैन शासनके अनन्य भक्त बन गए।

महावीर वर्द्धमानको कैवल्य प्राप्त होनेपर राजा बिंबसारने उनसे धर्मके प्रत्येक पहलूको विशद रूपसे समझा था। वे अपनी श्रद्धाके बलसे वे महावीरके अनन्य भक्त बन गए। उनकी श्रद्धा निष्कंप थी। उसे कोई भय अथवा चमत्कार डिगा नहीं सकता था।

जिसे किसी एक पदार्थका निश्चय नहीं होता वह अन्य प्रकार अनेक विषयोंमें कुशल होनेपर भी सिद्धिका वरण नहीं कर सकता। तूफानमें फंसी हुई नाव जिस तरह आघात और प्रत्याघात सहती हुई

अंतमें धरातलमें जाकर विराम लेती है उसी प्रकार निश्चय अथवा श्रद्धा रहित मनुष्य संसारकी अनेक प्रकारकी विडम्बनाओंका अनुभव करता बार बार मार्ग परिवर्तन करता, अंतमें निराश बनकर अधःपातकी शरण लेता है। श्रद्धा यह एक सुमेरु पर्वत सदृश अडिग निश्चय है। देवता भी जिसे चलित नहीं कर सकें ऐसी दृढ़ता और अनुभवकी पक्की सड़कपर बनी हुई वीरवृत्ति है। ऐसी श्रद्धा बहुत श्रेष्ठ पुरुषोंमें होती है। श्रेणिक राजा ऐसी अनुपम श्रद्धा रखनेवाले थे और इसी श्रद्धाके कारण इतिहासमें उनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित है।

श्रेणिक राजाको जिनदेव जिनगुरु और जैनधर्म पर असाधारण श्रद्धा थी। एकबार दर्दुरक नामक देवने उनकी परीक्षा करनेका निश्चय किया।

श्रेणिक जैन साधुओंको परम विरागी, तपस्वी और निस्पृह मानते थे। जैन साधुओंमें जैसी विरागवृत्ति, उन जैसी निःस्पृहता अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं, ऐसी उनकी दृढ़ श्रद्धा थी। एक समय मार्गमें जाते हुए उन्होंने एक जैन मुनिका दर्शन किया।

उसका भेष जैन साधुसे बिल्कुल मिलता था, ऐसा होते हुए भी उसके एक हाथमें मछली पकड़नेका जाल था और दूसरा हाथ मांस भक्षण करनेको तैयार हो इस प्रकार रक्तसे सना हुआ था। एक जैन साधुकी ऐसी दशा देखकर राजा श्रेणिकका हृदय कांप उठा।

राजाको अपने समीप आते देख मुनिने जाल पानीमें डाला, मानो जलकी मछली पकड़नेका उसका नित्यका अभ्यास हो। यह आचारभ्रष्टता राजाको असह्य प्रतीत हुई।

"अरे महाराज! एक जैन साधु होकर इतनी निर्दयता दिखलाते हुए तुम्हें कुछ लज्जा नहीं आती? मुनिके भेषमें यह दुष्कर्म अत्यंत अनुचित है" श्रेणिकने तड़पते हुए अन्तःकरणसे यह शब्द कहा।

"तू हमारे जैसे कितनोंको इस प्रकार रोक सकेगा! संघमें मेरे जैसे एक नहीं किन्तु असंख्य मुनि पड़े हैं जो इसी प्रकार मत्स्य-मांस द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं।" मुनिने उत्तर दिया।

राजाका आत्मा मानो कुचल गया। उसकी आंखोंके आगे अंधकार छा गया। महावीरस्वामीके संघके मुनि ऐसा निर्बल मार्ग ग्रहण करें यह उसे बड़ा आपदायक प्रतीत हुआ।

वह आगे चला। उस आचार भ्रष्टताका दृश्य वह भूल नहीं सका। मुनिकी दुर्दशाका विचार कर वह क्षणभर मनमें दुखित होने लगा।

थोड़ी दूर पर उसे एक साध्वी मिली, उसके हाथ पैर महावरसे रंगे हुए थे। उसकी कजरारी आँखें कृत्रिम तेजसे चमकती थीं, वह पान चाबती हुई राजाके सामने आकर खड़ी हो गई।

"तुम साध्वी हो कि वेश्या! साध्वीके क्या ऐसे शृङ्गार और अलंकार होते हैं?" ग्लानिपूर्वक राजाने पूछा।

साध्वी खिल खिलाकर हंस पड़ी—"तुम तो केवल अलंकार और शृंगार ही देखते हो। किन्तु यह मेरे उदरमें छह सात मासका गर्भ है, यह तुम क्या नहीं देखते?"

भ्रष्टाचारकी साक्षात् मूर्ति! उसकी खिलखिलाहटने, निठुर हास्यने राजा श्रेणिकको दिग्मूढ़ बना दिया। यह स्वप्न है अथवा सत्य, इसके निर्णयके प्रथम ही साध्वी जैसी स्त्री बोली—

"तुम मुझ एकको आज इस वेषमें देखकर सम्भवतः आश्चर्यसे स्तब्ध हुए हो, किन्तु राजन्! तुमने जो तनिक गहरी खोज की होती तो तुम समस्त साध्वी संघको मेरी जैसी स्त्रियोंसे भरा हुआ देखते। जो आंखोंसे अंधा और कानोंसे बधिर रहा हो उसे अन्य कौन समझा सकता है?

जैन साधु और साध्वियोंमें रक्खी हुई श्रद्धा कितनी निश्चल है यह तुम जान गये होंगे।

उपरोक्त शब्द श्रेणिक श्रवण नहीं कर सका, उसने कानोंपर हाथ रखते हुए कहा:—

दुराचारियों! तुम संसारको भले ही अपने जैसा मान लो, किन्तु महावीर प्रभूका साधु साध्वियोंका संघ इतना भ्रष्ट, पतित अथवा शिथिलाचारी नहीं हो सकता है। तुम्हारे जैसे एक इसप्रकार भ्रष्ट-चरित्रके ऊपरसे अन्य पवित्र साधु साध्वियोंके संबंधमें निश्चय करना आत्मघात है। मैं तो अब तक ऐसा मानता हूं कि जैन साधु और साध्वियोंका संघ तुम्हारी अपेक्षा असंख्य गुणा उन्नत, पवित्र और सदाचार परायण है।"

अन्तमें श्रेणिक राजाकी परीक्षा करने आया हुआ दर्दुरक देव राजाके पैरों पर गिर पड़ा और उसने उनकी अचल निःशंक श्रद्धाकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की।

प्रबल भ्रान्तियोंके सामने श्रेणिकका श्रद्धा-दीप न बुझ सका।

अचल श्रद्धाके कारण राजा श्रेणिक, अविरति होने पर भी अगली चौबीसीके प्रथम तीर्थंकर होंगे!

(१९)

महापुरुष जम्बूकुमार।

(वीरता और त्यागके आदर्श)

(१)

विक्रम संवत्से ५१० वर्ष पहिलेकी बात है यह। उस समय मगध देशमें राजा बिंबसारका राज्य था। राजगृह उनकी राजधानी थी। इसी राजगृहीमें अर्हद्दत्तजी राज्यके सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी थे। उनकी धर्मपत्नी जिनमती थी। वीर जम्बूकुमार इन्हींके पुत्र थे।

प्रसिद्ध विद्वान् 'विमलराज' के निकट उन्होंने विद्याध्ययन किया था। पूर्वजन्मके संस्कारके कारण वे अत्यंत प्रतिभाशाली थे। विमल राजने अपने सुयोग्य शिष्यको थोड़े ही समयमें शास्त्र संचालनमें निपुण बना दिया था। उच्च कोटिके साहित्यका अध्ययन भी उन्हें कराया था। वे अपने विद्वान् गुरुके विद्वान् शिष्य थे।

बालकपनसे ही वे बड़े साहसी और वीर थे। उनका सुगठित शरीर दर्शनीय था। एक समय उनके साहसकी अच्छी परीक्षा हुई।

वे राजमार्गसे जा रहे थे, इसी समय उन्होंने देखा कि राजाका प्रधान हाथी बिगड़ पड़ा है। महावतको जमीन पर गिराकर वह अपनी सूंडको घुमाता दौड़ा आ रहा है। यमराजकी तरह जिसे वह सामने पाता उसे ही चीरकर दो टुकड़े कर देता था। उसकी भयंकर गर्जना सुनकर नगरकी जनता भयसे व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगी। मदोन्मत्त हाथी जम्बूकुमारके निकट पहुंच गया था। वह उन्हें अपनी सूंड़में फंसानेका प्रयत्न कर ही रहा था कि उन्होंने उसकी सूंड़ पर एक भयानक मुष्टिका प्रहार किया। वज्रकी तरह मुष्टिके प्रहारसे हाथी बड़े जोरसे चिंघाड़ उठा। फिर उन्होंने अपने हाथके सुदृढ़ दंडको घुमाकर उसके मस्तक पर मारा। मस्तक पर दंड पड़ते ही उसका सारा मद चूर चूर हो गया। वह नम्र होकर उनके सामने खड़ा हो गया। मदोन्मत्त हाथी अब बिलकुल शान्त था।

नगरकी संपूर्ण जनता भयभीत दृष्टिसे यह सब दृश्य देख रही थी। हाथीको निर्मद हुआ देख सभीके हृदय हर्षसे खिल गए। उनके सिरसे एक भयानक संकट टल गया।

जनताने जम्बूकुमारके इस साहसकी प्रशंसा की और राजा बिंबसारके राज्य दरबारसे इस वीरताके उपलक्ष्यमें उन्हें योग्य सम्मान मिला।

जम्बूकुमारकी वीरता पर नगरका धनिक श्रेष्ठी समाज मुग्ध था। प्रत्येक धनिक उनके साथ अपना संबंध स्थापित करनेको इच्छुक था। सुन्दरी कन्याएं उनका स्नेह पानेको लालयित थी।

जंबूकुमार वैवाहिक बंधनमें नहीं पड़ना चाहते थे। उनका

हृदय आजीवन अविवाहित रहकर विश्वकल्याण करनेका था। उनकी भावनाएं महान थीं। वे अपनी शक्तिका वास्तविक उपयोग करना चाहते थे। वे चाहते थे जीवनका प्रत्येक क्षण संसारका मार्गप्रदर्शक बने। जगतको सद्धर्मका संदेश सुनानेकी उनकी उत्कट अभिलाषी थी। माता पिता उनके विचारोंसे परिचित थे, लेकिन वे शीघ्रसे शीघ्र उन्हें वैवाहिक बंधनोंमें बंधा हुआ देखना चाहते थे। उनके विचारोंको सहयोग मिला। श्रेष्ठी सागरदत्त, कुबेरदत्त, वैश्रवणदत्त और श्रीदत्तने उनपर अपना प्रभाव डाला। चारोंने उन्हें चारों ओरसे बांधना चाहा अंतमें वे सफल हुए। जम्बुकुमारकी हार्दिक मनोभावनाओंको जानते हुए भी ऋषभदत्तने उन्हें विवाहका वचन दे डाला। उनका विवाह शीघ्र ही होनेवाला था किन्तु इसी समय इसके बीचमें एक घटनाने रंगमें भंग कर दिया।

(२)

केरलपुरके राजा मृगाङ्क थे। उनकी सुन्दरी कन्या विलासवतीका वाग्दान राजा बिंबसारसे हो चुका था। राजा मृगाङ्क उन्हें अपनी कन्या देनेको तैयार थे। कन्या भी उन्हें हृदयमें अपना पति स्वीकार कर चुकी थी। यह विवाह सम्बन्ध शीघ्र ही होनेवाला था। इसी समय एक और घटना घटी।

रत्नचूल एक अभिमानी युवक था। राजा मृगांक पर उसकी शक्तिका प्रभाव था। वह था भी शक्तिशाली, उसने अपनी शक्तिसे विलासवतीको अपनी पत्नी बनाना चाहा। उन्होंने राजा मृगांकके पास अपना संदेश भेजकर विलासवतीको अपने लिए मांगा। मृगांक

अपनी कन्या राजा बिंबसारको दे चुके थे। रत्नचूलकी शक्तिका उन्हें परिचय था, लेकिन किसी हालतमें उन्हें यह बात पसंद न थी। उसने अपनी कन्या देनेसे इनकार कर दिया।

रत्नचूलको मृगांककी यह बात असह्य हो उठी। उसने अपनी संपूर्ण सेना लेकर केरलपुर पर चढ़ाई कर दी।

मृगांक इस युद्धके लिए तैयार नहीं था। उसकी शक्ति नहीं थी कि वह रत्नचूलका मुकाबला कर सके। इसलिए इस संकटके समय अपनी आत्मरक्षाके लिए राजा बिंबसारसे उसने सहायता मांगी। बिंबसारने सहायता देना तो स्वीकार कर लिया लेकिन वे चिंतामें पड़ गए कि रत्नचूल जैसे वीरके मुकाबलेमें किस बहादुरको भेजा जाय। लेकिन उनके पास अधिक सोचनेके लिए समय नहीं था, उन्हें शीघ्र ही सहायता भेजनी थी। अपने वीर सैनिकोंको बुलाकर उनसे इस कार्यका बीड़ा उठानेके लिए उन्होंने कहा। सभी वीर सैनिक मौन थे, जंबुकुमार भी इस सभामें निमंत्रित थे। वीरोंकी कायरता पर उन्हें रोष आगया वे अपने स्थानसे उठे और बीड़ा उठाकर उसे चबा लिया।

राजा बिंबसारने उनके इस साहसकी प्रशंसा की और उनके सिर पर वीर पट्ट बांधकर मृगांककी सहायताके लिए वीर सैनिकोंको साथ ले जानेकी आज्ञा दी। जंबुकुमारको अपनी भुजाओं पर विश्वास था। वे अपनी वीरताके आवेशमें बोले। महाराज! मुझे आपके सैनिकोंकी आवश्यकता नहीं, मेरी भुजाएं ही मेरी सेना है। मैं अकेला हूं सहस्र सैनिकोंके बराबर हूं। मैं अकेला ही जाता हूं। आप निश्चित रहिए, देखिए आपके आशीर्वादसे वह अभिमानी रत्नचूल अभी आपके चरणों पर लौटता है।

जंबुकुमार अकेले ही रत्नचूलके शिविरकी ओर चल दिए। अपनी सेनाके बीचमें बैठा हुआ रत्नचूल पोदनपुरके किले पर आक्रमण करनेकी आज्ञा दे रहा था। इसी समय जंबुकुमार उनके सामने बेधड़क पहुंचा। उसने न तो उन्हें प्रणाम ही किया और न आदर सूचक कोई शब्द ही कहा। अकड़कर उनके सामने खड़ा हो गया।

एक अपरिचित युवकको इस तरह बेधड़क अपने सामने खड़ा देखकर रत्नचूलको बहुत क्रोध आया। उसने तेजस्वरमें कहा—"अभिमानी युवक, तू कौन है? अपनी मृत्युको साथ लेकर यहां किस उद्देश्यसे आया है?" जंबुकुमारने कहा—"मैं राजा मृगाङ्कका दूत हूं। मैं आपको उनका यह संदेश सुनाने आया हूं। आप वीर हैं वीरोंका कार्य किसीकी वाग्दत्ता कन्याका अपहरण करना नहीं है। आपको अपने इस गलत शब्दोंको छोड़ देना चाहिए और इस अपराधके लिए क्षमा मांगना चाहिए।

रत्नचूल इन शब्दोंको सुनकर भड़क उठा। वह बोला—"दूत तुम बेशक वाक्यसूर हो। मेरे साम्हने इसतरह निःशंक बोलना अवश्य ही साहसका कार्य है। तुम्हारा मूर्ख राजा मेरी वीरतासे अपरिचित नहीं है। लेकिन दुर्भाग्य उसका साथ देरहा है। इसीलिये उसने तुम्हें मेरे पास ऐसा कहनेको भेजा है। दूत तुम अवध्य हो, जाओ और उस कायर मृगांकको युद्धके लिए भेजो।"

"राजा मृगांक आप जैसे व्यक्तिके साम्हने युद्ध करनेको आयेगे ऐसी आशा छोड़ देना चाहिए। आपसे युद्ध करनेके लिए तो मैं ही काफी हूं, यदि आपको युद्धकी बढ़ी हुई अपनी प्यास

बुझाना है तो आइए हम और आप निपट लें ।" यह कहकर वीर जम्बुकुमार ताल ठोककर रत्नचूलके सामने खड़ा होगया ।

रत्नचूलने अपने सैनिकोंको जम्बुकुमार पर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी । सैनिक आज्ञा पालन करनेवाले ही थे कि पलक मारते ही जंबुकुमार रत्नचूलसे भिड़ गए । सैनिक देखते ही रह गए और दोनोंमें भयंकर युद्ध होने लगा, यह युद्ध इतना शीघ्र हुआ जिसकी किसीको संभावना नहीं थी । जंबुकुमारने अपने तीव्र शस्त्रके प्रहारसे ही रत्नचूलको धराशायी कर दिया । सैनिकोंने देखा, रत्नचूल अब जंबुकुमारके बंधनमें आ चुका है ।

रत्नचूलके बंधन युक्त होते ही सैनिकोंने शस्त्र डाल दिए । जंबुकुमार विजयके साथ साथ राजा मृगांक और विलासवतीको भी अपने साथ राजगृह ले गए । वहां बड़े उत्सवके साथ राजा बिंबसारका विलासवतीसे, पाणिग्रहण हुआ । इस विजयसे वीर जंबुकुमारका गौरव चौगुना बढ़ गया ।

(३)

सुधर्माचार्य उस दिन राजगृहके उद्यानमें आए थे । उनका कल्याणकारी उपदेश चल रहा था । जंबुकुमारके विरक्त हृदयको उनका उपदेश चुभा । धर्मके दृढ़ प्रचारक बननेकी उनकी भावना जागृत हो उठी । युद्ध क्षेत्रका विजयी वीर, आत्म विजयी बननेको तड़प उठा । आचार्यसे उसने साधु दीक्षा चाही ।

साधु जानते थे जंबुकुमारके अन्तस्तलको, लेकिन अभी थोड़ा समय उसे, वे और देना चाहते थे अंदर सोई हुई गुप्त लालसाको

जगा कर वे उसे निकाल देना चाहते थे। उन्होंने अवसर दिया। वे बोले—"जम्बुकुमार! तुम्हारा अभी एक कर्त्तव्य शेष है वह तुम्हें करना होगा उसके बाद तुम दीक्षा लेनेके अधिकारी हो सकेंगे। तुम्हारे मातृपिताके अन्दर तुम्हारे लिए जो मोह है उसे मारना होगा। जिन कन्याओंका तुम्हारे साथ वाग्दान हो चुका है जिनका ममत्व तुम्हारे जीवनके साथ बन्धा हुआ है, उसे तोड़ना होगा। तुम्हें उनके मनको जीतना होगा। मानता हूं तुमने अपने मनको मार लिया है लेकिन तुम्हें दूसरेके मनको जीतना होगा तब तुम संयमके पथपर चल सकोगे। यह तुम्हारी कठोर परीक्षाका समय है। तुम जाओ, अपने माता पिता और वाग्दत्ता कन्याओंसे आज्ञा लेकर आओ तब मैं तुम्हें साधुदीक्षा दूंगा—"

आचार्यका आदेश था। उसे तो पालन करना ही होगा। जम्बुकुमारको इस परीक्षणमें उत्तीर्ण होना ही होगा। परीक्षण कठोर था लेकिन उसमें तो पूरे नंबर प्राप्त करना होंगे। वे उसी समय अपने घर पहुंचे।

(४)

इस ओर जंबुकुमारका विवाह समारंभ चल रहा था। सेठ अर्हद्दत्त विवाहके हर्षमें तन्मय होरहे थे। विषम समस्या थी। हर्षके महासागरमें तूफान उठनेको था। तरंगें उठीं। जम्बुकुमारने अपने मनोगत विचारोंको पिताजी पर प्रकट किया। इस हर्षोत्सवमें वे किसी तरहका आघात नहीं चाहते थे। बोले—"पुत्र इस उत्सवको समाप्त होने दो, जो कन्याएं अपने जीवनकी बागडोर तुम्हारे सांम्हने

फेंक चुकी हैं उसे तुम्हें अब उठाना ही होगा, विवाह बाद तुम्हारा जो कर्तव्य हो उसे निश्चित करना।"

पिताके हर्षोन्मत्त हृदयको जम्बुकुमार एकदम तोडना नहीं चाहते थे। लेकिन वे अपना कर्तव्य भी निश्चित करना चाहते थे।

बोले—पिताजी! आप विवाहकी बात करते हैं; मुझे बंधनमें डालना चाहते हैं, लेकिन यह बंधन इतना कमजोर है कि मेरे छूते ही टूट जायगा। फिर टूटे हुए बंधनका क्या होगा, यह भी जानते हैं?"

अर्हद्दत्त कोई तर्क नहीं सुनना चाहते थे। वे तो बंधन कस देना चाहते थे, फिर वे देखना चाहते थे, बंधन मजबूत है या कमजोर। उनका विश्वास था, बंधन कसते ही इतना मजबूत हो जायगा कि उसे तोड़ सकना कठिन होगा। वे बोले—यही तो मैं देखना चाहता हूं कि तुम बंधनमें बंधकर फिर उसे तोड़ो मैं उसी शक्तिका परीक्षण चाहता हूं और तुम्हें यह परीक्षण देना होगा।

उनका हृदय एक ही बारमें सारे बंधन तोड़ देना चाहता था लेकिन वे रुके। सोचा एक कदम रुककर ही देखूं फिर आगे तो बढ़ना ही है। इस रुकनेसे यदि किसीको संतोष हो तो उसे भी हो लेने दूं। वे विवाह बंधनमें आबद्ध हो गए।

(५)

आज कन्याओंके सौभाग्यकी रात्रि थी, उन्हें अपने भाग्यका पांसा फेंककर आज देखना था। सजा हुआ कमरा, अगुरुकी गंधसे महंकता हुआ, मादक चित्र चारों ओर टंगे थे। वीणाकी झंकारके स्वर एक साथ झंकरित हो उठे। चारों बालाओंने उन्हें चारों ओरसे

घेर लिया आज वे मानवके मनको जीतना चाहती थी। कामदेवकी शरण लेकर विजयी कामदेवको अपने अमोघ शस्त्रों पर विश्वास था, रूप यौवन उनका साथी था। झलकता हुआ मादक प्याला साम्हने था, गलेसे उतारने भरकी कसर थी।

मौन जंबुकुमारने इस वातावरणको देखा, देखकर वह क्षुब्ध नहीं हुआ। इस समय एक मृदु झंकार उठी, उसने देखा, दो पतले लाल होंठ हिल रहे थे, प्रियतम! एकवार अनंत जन्मोंके इस सुकृत पुण्यको देखिए। कितने वर्षोंकी तपस्याका फल यह आपको मिल रहा है, फिर आप आगेके लिए और संचयका लोभ क्यों कर रहे हैं। उपलब्धको न भोगना और संचय पर ही दृष्टि रखना यह तो महा कृपण कार्य है। आप जैसे बुद्धिमान वैश्यकुमारको यह बात हम क्या सिखलाएं। यह तो आपको स्वयं जानना चाहिए, प्राप्तको भोगना और आगे संचयके लिए कर्तव्य शील होना ही लाभका उद्देश्य है। प्राप्त त्याग कर अप्राप्तकी आशा करना उसी तरह है जिस तरह घड़ेके पानीको फेंककर उमड़ने वाले घनसे जलकी आशा करना। अप्राप्त तो गया हुआ है, उसके लिए प्राप्तको भी जाने देना कहांकी बुद्धिमत्ता है?

जम्बुकुमारने गंभीर होकर कहना शुरू किया—

जिसे तुम प्राप्त कहती हो वह तो कुछ अपना है ही नहीं। दूसरोंके धनको अपना मानकर उसे भोगना यह तो अमानतमें ख्यानत करना है। हमने अपना अभी प्राप्त ही क्या किया है? उसीकी प्राप्तिके लिए ही तो मैं यह पराया छोड रहा हूं। मैं पुण्यकी अमानत

स्वीकार नहीं करना चाहता । अमानत वही स्वीकार करते हैं जो कुछ अपना नहीं कमा सकते । मैंने उस अपने धनकी कुछ झांकी देखी है, उसकी चमकके आगे यह पुण्यके द्वारा दीपित क्षणिक प्रभा ठहरती ही नहीं है । तुमने उस प्रभाके दर्शन ही नहीं किये हैं । यदि तुम उस वास्तविक प्रकाशके दर्शन करना चाहती हो, तो मेरे साथ उस प्रकाश मार्गकी ओर चलो । फिर तुम उस प्रकाशको देख सकोगी जिससे सारा विश्व प्रकाशित होता है । इस क्षीण विलासकी चमक मेरे नेत्रोंको चकाचौंध नहीं कर सकती । इसमें विलासी पुरुष ही आकर्षित हो सकते हैं—केवल वही पुरुष जिन्होंने आत्म दर्शन नहीं किया है ।

तुम्हारा यह मादक यौवन और यह विलास किसी कामी पुरुषको ही तृप्ति दे सकता है मुझे नहीं । मेरी वासना तो मर चुकी है, उसे जीवित करनेकी शक्ति अब तुममें नहीं है । निष्फल प्रयत्न करके मेरा कुछ समय ही ले सकती हो इसके अतिरिक्त तुम्हें मुझसे कुछ नहीं मिलेगा ।

बालाओ ! तुम्हें मेरे द्वारा निराश होना पड़ रहा है, इसमें मेरा अपराध कुछ नहीं है । मेरा पथ पहले ही निश्चित था । मैं अपने निश्चित पथपर चलनेके लिए ही अग्रसर होरहा हूं । तुम्हें यदि मेरे जीवनसे स्नेह है यदि तुम मेरे जीवनको प्रकाशमय देखना चाहती हो यदि तुम चाहती हो कि मेरा जीवन तुम्हारी विलास लीला तक ही सीमित रहकर सारे संसारका बने तो तुम मेरी अवरोधक न बनकर मुझे अपने बंधनोंको मुक्त करनेमें मदद करो ।

एक दिनके लिए बनी हुई बालापत्नियोंने अपने पतिके अन्त-स्तलकी पुकार सुनी। वह पुकार केवल शाब्दिक नहीं थी। यह किसी निर्बल आत्माका दंभ नहीं था। वह एक बलवान आत्माकी दिव्य-वाणी थी। बालाओंके हृदयको उसने बदल दिया। वे आगे कुछ कहनेको असमर्थ थीं। अपने इस जीवनके स्वामीके चरणोंपर उन्होंने मस्तक डाल दिया। करुण स्वरसे बोली—"स्वामी यह जीवन तो अब आपके चरणोंपर अर्पित होचुका है, इसे अब हम किसकी शरणमें ले जांय आप हमारे मार्गके दीपक हैं आप ही हमें मार्ग दिखलाइए। हमारा कर्तव्य क्या है यह हमें समझाइए।"

जम्बुकुमारका हृदय एक भारसे हलका होचुका था। अबतक जो उनके लिए बोझ था वही उनका सार्थक ही बन रहा था। उनके साम्हने एक ही पथ था। उसी पथपर चलनेका उन्होंने आदेश दिया।

मार्ग साफ होचुका था। उसपर चलने भरका विलंब था। माता पिता अब उनके अवरोधक नहीं रह गए थे।

विपुलाचल पर 'गौतमस्वामी केवली' की शरणमें सब पहुंचे माता, पिता, पत्नियां, विद्युत चोर और उसके साथी सब एक ही पथके पथिक थे।

चौवीस वर्षके तरुण युवकने गणाधीश गौतमके चरणोंमें अपने जीवनको डाल दिया। गौतमने उनके विचारोंकी प्रशंसा की और लोककल्याणका उपदेश दिया। गणाधीशका आशीर्वाद लेकर वे अपने गुरु सुधर्माचार्यके निकट पहुंचकर बोले—"गुरुदेव! क्या मेरी परीक्षा समाप्त हो चुकी है या अभी कुछ और मंजिलें तय करनी हैं?"

गुरुदेव उन पर प्रसन्न थे। बोले—"जंबुकुमार! तुम तेजस्वी त्यागी हो। तुम्हारा सांसारिक कर्तव्य समाप्त हो चुका है। अब मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा।" सुधर्माचार्यने उन्हें साधु दीक्षा दी। उनके साथ पिता अर्हद्दत्त, विद्युत चोर और उसके ५०० साथियोंने भी साधु दीक्षा ली।

जंबुकुमारने उग्र तपश्चरण किया। तपश्चर्याके प्रभावसे उन्हें पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त हुआ। जिस दिन उन्हें यह अद्भुत शास्त्र ज्ञान उपलब्ध हुआ था उसी दिन उनके गुरु सुधर्माचार्यको कैवल्य प्राप्त हुआ।

जंबुकुमार तपश्चर्यके क्षेत्रमें अब बहुत आगे बढ़ गए थे। उन्होंने अपने बढ़े हुए तपके प्रभावसे कर्म बंधनको कमजोर कर लिया था। पैंतालीस वर्षकी आयुमें जंबुकुमारको कैवल्य लाभ हुआ। कैवल्यके प्रभावसे आत्मदर्शन हुआ।

चालीस वर्षका जीवन धर्मोपदेश और संसारको शांति सुखके पथ प्रदर्शनमें व्यतीत हुआ।

कार्तिकी कृष्णा प्रतिपदाको वे मथुरापुरीके उद्यानमें अपने योगोंका निरोध कर बैठे, इसीसमय उनका आत्मा नश्वर शरीरसे निकल कर मुक्ति स्थानको पहुंचा। जनताने एकत्रित होकर उनका गुणगान किया और उनकी पुण्य स्मृतिको अपने हृदयमें धारण किया।

[२०]

तपस्वी-वारिषेण।

(आत्मदृढ़ताके आदर्श)

(१)

मगधसुन्दरी राजगृहकी कुशल और प्रवीण वेश्या थी। वह अत्यन्त सुन्दरी तो थी ही लेकिन उसकी कामकला चातुर्यता और हावभाव विलासोंकी निपुणताने उसे और भी विमुग्ध कर दिया था-उसके भावपूर्ण गायन, मृदु मुस्कान और तिरछी चितवन पर अनेक युवक विवेकशून्य होजाते थे अपना हृदय और सर्वस्व समर्पित कर देते थे।

धनिक और विलासप्रिय मानवोंको अपने विलाससे भरे कृत्रिम लावण्यके ऊपर आकर्षित करनेमें वह अत्यंत निपुण थी। वह किसीको मधुर वाक्य विलाससे, किसीको आशापूर्ण कटाक्षोंसे, किसीको नयनाभि-

रंजित नृत्यसे और किसीको स्निग्ध आलिंगन द्वारा अपने रूप जालमें फंसा लेती थी और उनका धर्म और वैभव समाप्त कर देती थी।

राजगृहमें उसके अनेक प्रेमी थे, लेकिन उसका वास्तविक प्रेम किसी पर नहीं था। उसके अनेक सौन्दर्योपासक थे, लेकिन वह किसीकी उपासिका नहीं थी, उसकी उपासना केवल द्रव्यके लिए थी। उसके अनेक चाहनेवाले थे, लेकिन वह केवल अपनी चाहकी विक्रेता थी।

अपनी रूपकी रस्सीमें बांधकर उसने अनेक युवकोंको दुर्व्यसनके गहरे गड्ढेमें पटक दिया था। उस गर्तमेंसे कोई मानव अपने स्वास्थका स्वाहा कर अनेक रोगोंका उपहार लेकर निकलता था, और कोई अपना संपूर्ण वैभव फूंककर पथ २ का भिखारी बनकर निकल पाता था। कोई न कोई उपहार पास किए विना उसके द्वारसे निकल जाना कठिन था।

उसकी सीधी. सरल किन्तु कपटपूर्ण बातों और उद्दीप्त विलास मदिराके पानसे उन्मत्त, विवेकशून्य मानव, विषय सुख शांतिकी इच्छा रखते थे। उसके तीव्र, दाहक और प्रबल वेगसे बहनेवाले कृत्रिम प्रेमकी भिक्षा चाहते थे और सौन्दर्यकी उपासनामें तन्मय रहकर प्रसन्न होना चाहते थे। किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था कि यह मायावीपनका जीवित प्रतिबिंब, दुर्गतिका जागृत दृश्य, अधःपतन सर्वनाश और अनेक आपत्तियोंका विधाता केवल धन वैभव खींचनेका जाल है।

आज सवेरे मगध सुन्दरी विलास वस्तुओंसे पूर्ण अपनी उच्च अट्टालिका पर बैठी थी। इसी समय कोकिलकी मनोमोहककी कूकने

उसके सामने वसंतको मुग्ध कर सौन्दर्यको उपस्थित कर दिया, उसके हृदयमें रागरंग और विलासकी उदीप्त भावना भर दी। वह हृदयहारी वसंतकी शोभा निरीक्षणके लोभको संवरण नहीं कर सकी। मादक शृङ्गारसे सजकर वसंत उत्सव मनानेके लिए वह राजगृहके विशाल उपवनकी ओर चल पड़ी। उपवनके नवीन वृक्षोंपर विकसित हुए मधुर कुसुमोंको देखकर उस विनोदिनीका हृदय खिल उठा। मधुरससे भरे हुए पुष्प समूहपर गुंजार करते हुए मधुपोंके मधुर नादने उसके हृदयको मुग्ध कर दिया। उपवनकी प्रत्येक शोभासे उसका हृदय तन्मय हो उठा था। कोकिलका कलित कूजन पक्षियोंका मधुर कलरव और प्रेमका संदेश सुनाते हुए एक डालीसे दूसरी डालीपर कुदकना, चहचहाना हृदयको बरबस छीन रहा था।

उपवनके सजीव सौन्दर्यको देखते हुए उसकी दृष्टि एक दूसरी ओर जा पड़ी यह एक चमकता हुआ हार था जो श्रीकीर्ति श्रेष्ठीके गलेमें पड़ा हुआ था। मगधसुन्दरीका मन उसकी मोहक प्रभा पर मुग्ध होगया। वह आश्चर्य चकित होकर विचार करने लगी। मैंने अबतक कितने ही धनिकोंको अपने रूप जालमें फंसाया और उनसे अनेक अमूल्य उपहार प्राप्त किए, लेकिन इसतरहके सुन्दर हारसे मेरा कंठ अबतक शोभित नहीं होसका, यह मेरे सौन्दर्यके लिए अत्यन्त लज्जाकी बात है। अब इस हारसे कंठ सुशोभित होना चाहिए नहीं तो मेरा सारा आकर्षण और चातुर्य निष्फल होगा।

नारियोंको अपनी स्वाभाविक प्रकृतिके अनुसार बहुमूल्य वस्त्रों और भूषणोंसे प्राकृतिक प्रेम हुआ करता है। अधिकांश महिलाएं

चमकीले भूषण और भड़कीले वस्त्रोंको पहन कर ही अपनेको सौभाग्य शालिनी समझती हैं। बेशक उनमें सद्गुणोंके लिए कोई प्रतिष्ठा न हो, विद्या और कलाओंका कोई प्रभाव न हो, शील और सदाचारका कोई गौरव न हो, लेकिन वह केवल नयनाभिरंजित वस्त्र और भूषणोंसे ही आपनेको अलंकृत कर लेनेपर ही कृत कृत्य समझ लेती हैं। अपनेको सम्पूर्ण गुण सम्पन्न और महत्वशालिनी समझ लेनेमें फिर उन्हें संकोच नहीं होता। इसलिए ही नारी गौरवके सच्चे भूषण और अनमोल रत्न विद्या, कला, सेवा, संयम, सदाचार आदि सद्गुणोंका उनकी दृष्टिमें कोई महत्व नहीं रहता। संसारमें यश और योग्यता प्राप्त करनेवाले बहुमूल्य गुणोंका वे कुछ भी मूल्य नहीं समझतीं, और न उनके पानेका उचित प्रयत्न करती हैं। वे हरएक हालतमें अपनेको कृत्रिमतासे सजानेका ही प्रयत्न करती हैं। गहनोंके इस बढ़े हुए प्रेमके कारण वे अपनी आर्थिक परिस्थितिको नहीं देखतीं वे नहीं देखतीं जेवरोंसे सजकर स्वर्ण परी बननेकी इच्छा पूर्तिके लिए उनके पतिको कितना परिश्रम करना पड़ता है, कितना छल और कपट करके अर्थ संग्रह करना पड़ता है। और वे किस निर्दयतासे उनके उस उपार्जित द्रव्यको जेवरोंकी बलिवेदी पर बलिदान कर देती हैं। कितनी ही भूषणप्रिय महिलाएं अपनी स्थितिको भी नहीं देखती और दूसरी धनिक बहनोंके सुन्दर गहनोंको देखकर ही उनके पानेके लिए अपने पति और पुत्रोंको सदैव पीड़ित किया करती हैं, और सुन्दर गृहस्थ जीवनको अपनी भूषण प्रियताके कारण कलह और झगड़ेका स्थान बना देती हैं।

आजकल विलास प्रियता और दिखावटका साम्राज्य है, चारों ओर आंखोंमें चकाचौंध कर देनेवाली सभ्यताका बोलबाला है। आज संतानरक्षा, कलासंपादन, पाकशिक्षा आदि महिलोचित गुणोंकी ओर महिला समाजका थोड़ासा भी ध्यान नहीं है। समाज देश और राष्ट्र सेवाका तो वह नाम तक भी नहीं जानती। जो महिलाएं अशिक्षित हैं वे कलह लड़ाई झगडा और आपसके विरोधमें ही अपना जीवन बरबाद करदेती हैं, लेकिन वर्तमान शिक्षाके पालनेमें पली हुई शिक्षित महिलाओंके जीवनका भी कोई ध्येय नहीं है। उन्हें रात्रि दिनकी बढी हुई विलास प्रियतासे ही छुटकारा नहीं मिलता। कृत्रिमता पराधीनता और फैशनके इतने जबर्दस्त बंधनमें वे पड़ी हैं कि एक क्षणको भी अपनेको वे उससे मुक्त नहीं कर सकतीं। अपने कृत्रिम सौंदर्यको चमकाने और बढ़ानेमें वे अपने द्रव्य और स्वाथ्यका बड़ी निर्दयतासे बलिदान करनेमें नहीं हिचकतीं। उनके सौन्दर्य साधनके लिए करोड़ो रुप्योंका विदेशी सामान खरीदना पड़ता है, लेकिन इतने पर भी उनकी सौन्दर्य लिप्सा समाप्त नहीं होती। हमेशाकी बढ़ती हुई मांगसे उनके संरक्षकोंकी नाकमें दम आजाता है। विलास प्रियताके अतिरिक्त उन्हें अपना कोई कर्तव्य नहीं दिखता उनकी इस मूर्खताके कारण बच्चोंका पालन पोषण भी उचित रीतिसे नहीं होपाता। वे शक्तिशाली और चारित्रवान नहीं बन पाते। धर्म भक्ति, और आत्म सुधारकी बातें तो उनसे सैकडों कोस दूर रहती हैं। इस तरह आजकी नारी रोगिणी, आलसी, निर्बल और कर्तव्य हीना बनकर अपने जीव-नको नष्ट कर रही है।

मगधसुन्दरी विलास प्रिय वेश्या थी उसका हारके सौन्दर्य पर मुग्ध होना कोई महत्वकी बात नहीं थी । हारके आकर्षणने उसके मनपर विचित्र प्रभाव डाला । अब उस जगह वह एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकी । हारके पानेकी इच्छा उसके हृदयमें बलवती हो उठी और अपने घर आकर वह उदासीन होकर अपनी शैय्यापर लेट गई ।

(२)

विद्युत राजगृहका प्रसिद्ध चोर था, अपने हस्त कौशल और चौर्य कलामें वह अत्यंत दक्ष था । जिस वस्तुके पानेकी इच्छा वह करता था उसे वह प्राप्त करके ही छोड़ता था । अपनी कुशलताके कारण उसे अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता था और न कभी अपने कार्यमें वह असफल होता था । वह अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहता था उद्देश्य पूर्तिके लिए उसके पास आसुरी शक्ति साहस और दृढ़ता थी । उसे अपनी बुद्धि और साहस पर विश्वास था । अनेक धनिकोंकी बहुमूल्य वस्तुओंका उसने अपहरण किया था लेकिन आजतक किसीके पकड़नेमें नहीं आया ।

यह बात अवश्य थी कि नगरकी असंख्य बहुमूल्य संपत्तिका हरण करनेपर भी उसके पास कुछ नहीं था, वह अब तक निर्धनताका आगार ही बना था । खुले दिलसे वह उन वस्तुओंका उपभोग भी नहीं कर सकता था । उसकी अतृप्त लालसा सदैव जागृत रहा करती थी । सच है अन्याय और छलसे पैदा किया हुआ धन शारीरिक और मानसिक तृप्ति भी नहीं दे सकता और न उसका उचित उपयोग और उपभोग ही हो सकता है । संतोष, तृप्ति और आत्म सुखकी कल्पना

करना तो उससे व्यर्थ ही है। वह पाप, अशांति और असन्तोषकी भीषण ज्वाला जलाता है और अन्तमें स्वयं खाक हो जाता है।

विद्युतका मगध सुन्दरी पर हार्दिक स्नेह था व उसके जीवन मरणकी समस्या थी। उसकी इच्छा पर वह नाचता था, उसकी इच्छा-पूर्तिके लिए वह अपनेको मृत्युके मुखमें डालनेको भी तैयार रहता था। अपने जीवनकी बाजी लगाकर वह उसके लिए बहुमूल्य उपहार लाकर संतुष्ट किया करता था। मगधसुन्दरी भी उस पर प्रसन्न थी। अपनी कृत्रिम रूपराशि पर लुभाकर वह उससे इच्छित कार्य करा लेती थी।

रात्रिने अपने पूर्ण अंधकारका साम्राज्य स्थापित कर लिया था। मंद प्रकाशके साथ तारागण ही उसके प्रभावको कुछ कम कर रहे थे। दिनभरके परिश्रमसे संतप्तमान व निद्राकी शांतिदायिनी गोदकी शरण लेनेको उत्सुक हो रहे थे। इसी समय दीपकोंकी तीक्ष्ण ज्योतिसे चमकती हुई मगधसुंदरीकी अट्टालिका पर विद्युतने धड़कते हुए हृदयसे प्रवेश किया। वह सोच रहा था—"मैं अभी जाकर उस सुन्दरीके सुखकर कटाक्षपातसे अपने नेत्रोंको तृप्त करूंगा। उसका हर्षित हुआ मुखमंडल मुझे देखकर कितनी प्रसन्नतासे चमक उठेगा। मेरे पहुंचते ही उसके विलासकी सीमा चरम हो उठेगी। अहा! मुझपर वह कितना प्यार करती है। अनेक वैभवशाली व्यक्तियोंसे भरे हुए नगरमें उसके इतने अधिक स्नेहका वरदान मुझे ही प्राप्त है। उसकी बातोंमें कितना माधुर्य है, उसका मृदुहास्य कितना सुखकर है, उसका सौन्दर्य कितना आकर्षक है।

आज वह अन्य दिनकी अपेक्षा मुझपर अधिक प्रसन्न होगी।

आज मैं कितना बहुमूल्य रत्न लाया हूं। इसकी चकाचौंध पर उसके नेत्र मुग्ध हो जायेंगे। उसका प्रत्येक अङ्ग हर्षके वेगसे पागल हो उठेगा। विचारकी मधुर तरङ्गें उमड़ाते हुए वह उसके विलासागारमें पहुंचा।

उसने बहुमूल्य रत्न मगधसुन्दरीके सामने रख दिया और उसकी प्रसन्न मुखमुद्रा देखनेके लिए उत्कंठित हो उठा। लेकिन उसके आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहा, उसने देखा—अपनी शैय्यापर पड़ी हुई मगधसुन्दरीने उस बहुमूल्य लालकी ओर मुंह उठाकर भी नहीं देखा, और निराशभावसे उसी तरह पड़ी रही। विद्युतका हृदय उसकी इस अवहेलनासे धड़कने लगा। वह सोचने लगा—क्या कारण है जिससे इसके मनपर उदासीनताका इतना गहरा प्रभाव पड़ रहा है। क्या मुझसे इसके प्रतिकूल कोई कार्य बन पड़ा है जो मेरी ओर यह आंख उठाकर भी नहीं देखती, वह अत्यन्त मधुर स्वरसे बोला—प्रिये! प्रभासे चमकते हुए तुम्हारे मुखमण्डलपर आज विषादकी यह कालिमा क्यों झलक रही है। मुझसे कहो, किस चिंता-राहुने तुम्हारे चन्द्रमुखका ग्रास किया है। इस विषाद भरे तेरे मुखमण्डलको देखनेके लिए मैं एक क्षण भी समर्थ नहीं। तेरी यह निराशा मेरे हृदयके टुकड़े २ कर रही है। अपने हृदयकी चिंता मुझपर शीघ्र प्रकट कर, मैं उसे शीघ्र नष्ट करनेका प्रयत्न करूंगा।

अपने ऊपर अत्यंत अनुरक्त हुए विद्युतके सहानुभूति सूचक इन शब्दोंको सुनकर मगधसुन्दरीका उदास मुख कुछ समयको चमक उठा, उसके नेत्रोंपर एक मधुर मुस्कान डालती हुई मगधसुन्दरी बोली—

प्राणवल्लभ ! तुम मुझपर जितना प्यार करते हो वह तुम्हारा केवल दंभ मात्र ही प्रतीत होता है। मुझे तुम अपने प्राणसे प्रिय कहनेका दावा पेश करते हो लेकिन मैं तो तुम्हारे इस दावेको कोरा शब्द-जाल ही समझती हूं। मैं समझती हूं तुम मुझपर हृदयसे प्यार नहीं करते, यदि तुम मुझे चाहते होते तो इतनी गहरी निराशाकी खाईमें मुझे क्यों गिरना पड़ता ?

विद्युतके सिरपर अचानक बिजली गिर पड़ी। उसने घड़कते हुए हृदयसे कहा—प्रियतमे ! तू यह क्या कर रही है ? मैंने आजतक तेरी किसी भी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया। तेरी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करनेके लिए मैंने अपने जीवनका कुछ भी मूल्य नहीं समझा फिर मेरे प्रेम पर तुझे इतना अविश्वास क्यों होरहा है ? प्रियतमे ! सचमुच ही मैं तेरी कृपादृष्टि पर इस दुनियामें जी रहा हूं। मुझे अपने प्राणोंसे भी इतना स्नेह नहीं है जितना तुझसे है। फिर तुझे इतनी निर्दय बनकर मुझपर इस तरहके वाक्य बाणोंकी वर्षा नहीं करना चाहिए। मैं तेरी इच्छाओंका दास हूं बोल! तेरी ऐसी कौनसी इच्छा है जिसने तुझे इतना निराश और हताश बना डाला है। विद्युतके रहते तेरी इच्छाएं पूर्ण न हो सकें यह मेरे लिए कलंककी बात है।

मगधसुन्दरी विद्युत पर अपना प्रभाव पड़ते देखकर और भी अधिक मृदु मुस्कानसे बोली—प्रियतम ! मैं तुम्हारे ऊपर अविश्वास नहीं करती हूं। मैं यह जानती हूं तुम मेरे लिए अपना सर्वस्व अर्पण करनेको तैयार रहते हो, और अनेक बहुमूल्य वस्तुएं उपहारमें देते रहते हो, लेकिन इतना सब कुछ होने पर मेरा कंठ श्रीषेण श्रेष्ठीके

बहुमूल्य हारसे अब तक सूना ही है । ओह ! उस चमकदार हारकी प्रभा अब तक मेरी आंखोंके साम्हने नृत्य कर रही है । यदि उसे पहनकर मैं तुम्हारे साम्हने आती तो तुम मेरे सौन्दर्यको देखते ही रह जाते । यदि तुम्हारे जैसे कुशल प्रियतमके होते हुए भी मैं वह हार नहीं पा सकी तो मेरा जीना बेकार है । प्रियतम ! बोलो क्या वह हार तुम मेरे लिए ला सकते हो ? आह ! यदि वह सुन्दर हार मैं पा सकती— यह कहते हुए उसके मुंह पर फिर एक विषादकी रेखा नृत्य करने लगी ।

विद्युतने उसे सान्त्वना देते हुए दृढ़ताके स्वरमें कहा—ओह प्रियतमे ! इस साधारणसे कार्यके लिए इतनी अधिक चिंता तूने क्यों की ? मैं समझता था इतनी लम्बी भूमिकाके अन्दर कोई बड़ा रहस्य होगा । लेकिन यह तो मेरे बाएं हाथका खेल है । उस तुच्छ हारके लिए तुझे इतनी बेचैनी हो रही है ! तू उसे अब दूर कर । विद्युतके हस्त कौशलको और साथ ही श्रीषेण श्रेष्ठीके उस चमकते हुए हारको अपने गलेमें पड़ा अभी ही देखेगी ।

मगधसुन्दरी हर्षसे खिल उठी थी, उसने पूर्णेन्दुकी हंसी बिखेरते हुए कहा—प्रियतम ! अहा ! आप वह हार मुझे ला देंगे ? आप अवश्य ही ला देंगे । आप जैसे प्रियतमके होते मैं उस हारसे कैसे वंचित रह सकती हूं ? हार देकर आप मेरे हृदयके सच्चे स्वामी बनेंगे । प्रियतम ! आज आपके सच्चे प्रेमकी परीक्षा होगी । मैं देखती हूं कितनी शीघ्र मेरा हृदय हारसे विभूषित होता है ।

विद्युत अब एक क्षण भी वहां नहीं ठहर सका । हार हरणके लिए वह उसी समय श्रीषेण श्रेष्ठीके महलकी ओर चल पड़ा । उसने

अपनी कलाका परिचय देते हुए श्रेष्ठीके शयनागारमें प्रवेश किया। श्रीषेणके गलेका चमकता हुआ हार उसके हाथमें था। हार लेकर वह महलके नीचे उतरा। उसका दुर्भाग्य आज उसके पास ही था। नीचे उतरते हुए राज्य-सैनिकोंने उसे देख लिया। विद्युतने भी उन्हें देखा था। उसका हृदय किसी अज्ञात भयसे धड़क उठा। लेकिन साहस और निर्भयताने उसका साथ दिया, नीचे उतरकर अब वह राज पथपर था।

विद्युतने हार चुरा तो लिया लेकिन वह उसकी चमकती हुई प्रभाको नहीं छिपा सका। उसके हाथमें चमकते हुए हारको देखकर सैनिक उसे पकड़नेके लिए उसके पीछे दौड़े। सैनिकोंको अपने पीछे दौड़ता देख विद्युत भी अपनी रक्षाके लिए तीव्रगतिसे दौड़ा। भागनेमें वह सिद्धहस्त था। प्रत्येक मार्ग उसका देखा हुआ था। वह इधर उधरसे चक्कर काटता सैनिकोंको धोखा देता हुआ जन शून्य श्मशानके पास पहुंचा। उसने अपनेको बचानेका भरसक प्रयत्न किया था। लेकिन आज उसका सारा कौशल बेकार था, वह अपनेको बचा नहीं सका। सैनिक उसके पीछे तीव्रगतिसे दौड़े हुए आ रहे थे। उसने साहस करके पीछेकी ओर देखा, सैनिक उसके बिलकुल निकट आ चुके थे। अब वह सैनिकोंके हाथ पड़नेको ही था—उसका जीवन अब सुरक्षित नहीं था, इसी समय दैवने उसकी रक्षा की। एक उपाय उसके हाथ लग गया, उसे अपनेको बचानेके प्रयत्नमें सफलता मिली। पास ही एक वृक्षके नीचे राजकुमार वारिषेण योग साधन कर रहे थे, उसने उस बहुमूल्य हारको उनके सामने फेंक दिया और स्वयं वे पासके पेड़ोंकी झुरमटमें जा छिपा।

(४)

राजकुमार वारिषेण राजगृहके प्रसिद्ध नरेश बिंबसारके प्रतापशाली पुत्र थे। माता चेलिनी द्वारा उन्हें बाल्यावस्थासे ही धर्म और सदाचार संबंधी उच्चकोटिकी शिक्षा उन्हें मिली थी। रानी चेलिनी उच्चकोटिकी धार्मिक प्रतिभाशाली महिला थी, पथभ्रष्ट हुए राजा बिंबसारको उन्होंने धर्मके श्रेष्ठ मार्गपर लगाया था। विदुषी और धर्मशीला माताके जीवनका प्रभाव वारिषेणके कोमल हृदय पर पड़ा था।

बालकोंके जीवनकी सच्ची संरक्षिका और उसे सुयोग्य बनानेवाली सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका उसकी जननी ही है। पुत्रको जो शिक्षा जननी बाल्यावस्थासे ही सरलतापूर्वक हंसते और खेलते हुए देखकर उसके जीवनको मधुर और सुखमय बना सकती है उसकी पूर्ति सैकड़ों शिक्षिकाओं द्वारा भी नहीं हो सक्ती। माता पिताके आचरणोंको बालक बाल्यावस्थासे ही ग्रहण करता है। पिताकी अपेक्षा बालकको माताके संरक्षणमें अपना अधिक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। बालकका हृदय मोमके सांचेकी तरह होता है, माता जिस तरहके चित्र उसके मानस पटल पर उतारना चाहे उस समय आसानीसे उतार सकती है। बालक माताके प्रत्येक संस्कार उसके आचरण, विचार और संकल्पोंका अपने अन्दर एक सुन्दर चित्र बनाता रहता है, वह जो उस समय उसका दायरा केवल माताकी गोद तक सीमित रहता है उसके चारों ओर वह जिन विचारोंके रंगोंको पाता है उन्हींसे अपने विचारोंके धुंधले चित्रोंको चित्रित करता है। समय पाकर उसके वही धुंधले चित्र-वही अपरिपक्व विचार एक दृढ़ संकल्पका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। वही

संकल्प उसके जीवनसाथी होते हैं। समयकी गति और अनुकूल वायु उन्हीं विचारोंको जीवन देकर पुष्ट करती है।

विदुषी चेलिनी इस मनोविज्ञानको जानती थी। उसने वारिषेणके जीवनको पवित्रताके सांचेमें ढालनेका महान प्रयत्न किया था। उसने उस वातावरणसे अपने पुत्रको बचानेका प्रयत्न किया था जिसमें पड़कर बच्चोंका जीवन नष्ट होजाता है।

अधिकांश महिलाएं अपने बालकोंको आडम्बरमें मग्न रखकर उनके जीवनको विलासमय बना देती हैं। शृंगार और बनावट द्वारा उन्हें हाथका खिलौना ही बनाए रहती हैं। जरा जरासी बातोंमें उन्हें डरा धमकाकर और भूतका भय दिखाकर उनका हृदय भयसे भर देती हैं। विद्या, कला, नीति और सदाचारके स्थान पर असभ्यतापूर्ण विदेशी शृङ्गार और बनावटसे उनका मन और शरीर सजाती रहती है। उनके खानेके लिए शुद्ध और पवित्र वस्तुएं न देकर बाजारकी सडी गली मिठाइयों और नमकीनोंकी चाट लगाकर उन्हें इन्द्रिय लोलुप बनाती हैं। भृष्ट, दुराचारी, व्यसनी तथा विवेकहीन सेवकोंकी संरक्षतामें देकर उनकी उन्नति और विकास मार्ग बन्द कर देती हैं। उन दुर्व्यसनी सेवकोंसे वह गंदी गालियां सीखते हैं। अपवित्र आचरणोंसे अपने हृदयको भरते हैं और अपने जीवनको निम्नतर बनाते हैं। उनके हाथमें जीवन विकसित करनेवाली पवित्र पुस्तकें न देकर उन्हें जेवरोंसे सजाती हैं, विद्या और ज्ञानसंपादनकी अपेक्षा वे खेलको ही अधिक पसंद करती हैं। विदेशी खिलौनों और भड़कदार भूषणोंके खरीदनेमें जितना द्रव्य वे बरबाद

करती हैं उसका शतांश भी उसके ज्ञान संपादनमें नहीं करतीं। वे यह भी नहीं देखतीं कि बालक दुर्व्यसनपूर्ण खेल और असभ्य क्रीडाओंमें मग्न रहकर अपना जीवन नष्ट कर रहा है। वे अपने अनुचित प्यारके सामने बालकोंके वास्तविक जीवन चित्रका दर्शन ही नहीं कर पातीं।

विदुषी चेलिनीने अपने पुत्रको बालपनसे ही सदाचारी और ज्ञान श्रेष्ठ महात्माओंके नियंत्रणमें रक्खा था। उच्च कोटिके साहित्यक और धार्मिक ग्रन्थोंका उसे अध्ययन कराया था। सुयोग्य माताकी संरक्षकतामें राजकुमार वारिषेणका पालन हुआ था। सद्गुण और सदाचारकी छायामें वे बढ़े थे। पवित्रता और विवेक उनके साथी थे।

अमित वैभवके आगार राजप्रासादमें वे रहते थे। तरुणी बालाएं उन्हें प्राप्त थीं। विलासकी उन्हें कमी न थी, इतना सब कुछ होनेपर भी वे उसमें रमे नहीं थे। वैभवकी खुमारी और यौवनके उन्मादका उनपर असर नहीं था। वे अपनी परिस्थितिको पहचानते थे। साधनाके पथको वे भूले नही थे। इन्द्रियदमन और मनोनिग्रहका उन्होंने अभ्यास किया था। आत्मसंयमके लिए वे प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास किया करते थे। उपवास दिन उनका सारा कार्यक्रम आत्ममनन और ज्ञान उपार्जनके लिए ही होता था। विषयवासनासे विरक्त रहकर मनके काम-क्रोध आदि विकारोंके जीतनेका वे अभ्यास करते थे। सारे दिन मनको आत्ममननमें व्यस्त रखकर रात्रिके समय वे श्मशानभूमिमें जाकर योगाभ्यास किया करते थे। इस समय वे मन और शरीरकी सभी क्रियाओंसे विरक्त रहकर आत्मचिंतनमें ही निरत रहते थे।

आज चतुर्दशीकी रात्रिको अपने कार्यक्रमके अनुसार वे स्मशानमें योगाभ्यास कर रहे थे। दुर्भाग्यके हाथोंमें पड़ा हुआ अपनी रक्षाके लिए भागता विद्युत वहां पहुंचा था, उसने अपने हाथका चमकता हुआ हार ध्यान निमग्न वारिषेणके साम्हने फेंक दिया और स्वयं कहीं जाकर अलोप होगया था।

वारिश्रेणके साम्हने पड़े हुए हारको सैनिकोंने उठा लिया, हार उठा कर उसके चुरानेवालेकी उन्होंने खोज की। इस खोजके लिए उन्हें अधिक परिश्रम नहीं करना पडा। चमकते हुए हारके प्रकाशमें अपने पास ही उन्होंने एक व्यक्तिको समाधि लगाए देखा। बस वह समझ गए कि हारका चुरानेवाला यही व्यक्ति है, चोरीके अपराधसे बचनेके लिए ही इसने समाधि लगानेका स्वांग रचा है। वे उन्हें हारका चुरानेवाला समझकर उसकी ओर बढ़े, लेकिन यह क्या, उनके मुंहकी ओर देख कर वे चौंक पडे। अरे! यह तो राजकुमार वारिषेण हैं। महाराजाके पुत्र वारिश्रेणको वहां देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे सोचने लगे—तब क्या इस बहु मूल्य हारके चुरानवाले राजकुमार वारिषेण हैं? यह होना भी क्या संभव है? क्या हमारे नेत्र हमें धोखा तो नहीं दे रहे हैं? उन्होंने आंखोंको रगड़ फिर देखा, उन्हें निश्चय होगया यह कुमार वारिषेण ही है। तब क्या इस बहु मूल्य हारको इन्हींने चुराया है? लेकिन राजपुत्रने अपने बचनेका ढंग भी खूब बनाया है। हार फेंककर किस तरह ध्यानमग्न होगए, मानो हम इस तरह ध्यानमग्न देखकर इन्हें छोड ही देंगे, हमें इन्होंने निरा मूर्ख ही समझ रखा है। यदि यह राजपुत्र है तो क्या हुआ? क्या राजपुत्र

होनेके नाते ही इस गुरुतर अपराधको करते देखकर भी हम इन्हें छोड देंगे? नहीं, हमसे यह कभी नहीं होगा, हम राज्यके विश्वासपात्र सेवक हैं। अन्याय और अत्याचारसे जनताकी रक्षा करनेका महान कर्तव्य लेकर हम नियुक्त हैं। हमारे रगरगमें कर्तव्यका गर्म खून भरा हुआ है, हमसे यह कभी नहीं होगा। राज्य प्रभाव अथवा वैभवकी सत्ताके डरसे हम अपराधीको कभी नहीं छोड़ सकते। हमारे न्याय-शील महाराजकी ऐसी आज्ञा कदापि नहीं है। उनकी आज्ञा है कि राजा हो या रंक, धनिक हो या निर्धन, सबल हो या निर्बल, अपराधकी तुलापर सब एक हैं। न्यायका कांटा किसीके व्यक्तित्वके आगे नहीं झुक सकता। तब हमें चोरीके अपराधमें इन्हें अवश्य ही गिरफ्तार करना चाहिए। यह सब सोचकर उन्होंने हारके ही साथ राजकुमार वारिषेणको भी गिरफ्तार कर लिया और उन्हें लेकर न्यायालयकी ओर चल दिए।

(५)

प्रातःकालीन समय था। महाराजा बिंबसार राज्य सिंहासन पर आरूढ़ थे। उनका मुखमंडल आज बहुत गंभीर हो रहा था। सभासद और मंत्रीगण सभी नितांत मौनभावसे स्थिर हुए बैठे थे। सारा सभामंडप निस्तब्ध और शून्य हो रहा था। अचानक ही राज कोतवालको संबोधित कर महाराजाने अपना मौन भंग किया। वे बोले—कोतवाल! अपराधीको मेरे साम्हने उपस्थित करो। महाराजकी आज्ञाका उसी समय पालन हुआ—अपराधीके रूपमें राजकुमार वारिषेण उनके साम्हने खड़े थे। उनके अपराधकी चर्चा कुछ समय पहिले ही

सारे नगरमें फैल गई थी, उन्हें अपराधीके रूपमें खड़ा देखकर नगर-निवासियोंके हृदय कुछ समयको कांप गए। इस आश्चर्यजनक घटनाने उनके मनपर विचित्र प्रभाव डाला था। वे स्वप्नमें भी इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि ऐसा दृश्य उन्हें कभी अपनी आंखोंके साम्हने देखनेका अवसर मिलेगा। राजपुत्रकी सच्चारित्रता पर उनका अडोल विश्वास था, वे उन्हें मानव नहीं किन्तु साधुकी श्रेणीमें समझते थे, ऐसे साधुहृदय कुमारको अपराधीके रूपमें देख सकना उनके लिए एक अलौकिक घटना थी।

महाराजा बिंबसारने अपराधीकी ओर तीक्ष्णदृष्टिसे देखा फिर वे अपने अधिकारपूर्ण स्वरमें बोले—राजकुलको कलंकित करने वाले राजपुत्र! आज तू राज्यसेवकों द्वारा चोरीके गुरुतर अपराधमें पकड़ा गया है, तेरा अपराध अक्षम्य है। राज्यकी न्याय सत्ताका उलंघन करके अपनी प्रजाके साम्हने तूने जो घृणित आदर्श उपस्थित किया है उससे आज राज्यकुलका मस्तक नीचा होगया है, तुझे उचित राज्य दंड देकर मैं उसे ऊंचा करूंगा। श्मशानभूमि जाकर ध्यानका ढोंग रचनेवाले और अपनेको महान् धार्मिक प्रकट कर जनताको धोखेमें डालनेवाले तेरे जैसे पापात्माके लिए सैकड़ों धिक्कार हैं। ओह! जिसकी बाह्य सरल और शांत मुखमुद्राको देखकर मैं उसपर मुग्ध था और जिसे अपने विशाल राज्यका स्वामी बनाना चाहता था, जिसके हाथमें प्रजाके न्याय, सदाचार और धर्म रक्षाकी बागडोर होती, जो न्याय सिंहासनपर बैठकर अपनी प्रजाके न्याय करनेका अधिकारी होता, उस राज्यके होनेवाले सम्राटका ऐसा हीनाचार, इतना घोर पतन मुझे आज देखना

पड़ रहा है। इतना कहते २ वह कुछ समयको मौन होगए, उनका हृदय ग्लानि और घृणासे भर गया फिर वे अपनेको संभालकर क्षीण स्वरमें बोले—आह! आज मेरे लिए यह कितने कलंककी बात है कि तेरे जैसा दुराचारी मेरा पुत्र है, मेरा कर्तव्य है कि न्यायको रक्षाके लिए मैं इस दुराचारीको उचित दंड दूं और इसका उचित दंड है प्राण वध। यदि यह दुराचारी जीवित रहेगा तो प्रजामें अवश्य ही इस तरहसे दुराचारोंकी वृद्धि होगी इसलिए उसे प्राणदंड देना ही उपयुक्त होगा। फिर उन्होंने तीव्र स्वरमें कहा—अपराधी! तेरा अपराध स्पष्ट है, तेरे इस गुरुतर अपराधके लिए मैं तुझे प्राणदंडकी आज्ञा देता हूं। वधिको! इसे बध्यभूमिमें लेजाकर मेरी आज्ञाका पालन करो।

प्रिय राजपुत्रके लिए इतने कठोर दंडकी आज्ञा सुनकर सारी जनताका हृदय करुणासे आर्द्र हो गया। लेकिन इस आज्ञाके विरुद्ध किसीको भी कुछ कहनेका साहस नहीं था। वे राजाके कठोर न्यायको जानते थे। वे यह भी जानते थे कि एकबार निर्णय दे देने पर सम्राट् बिंबसार अपने निश्चयसे नहीं हटते. उनके साम्हने दयाकी याचना करना बेकार थी! उन्हें निश्चय था कि वे सत्य न्यायके साम्हने सब तरहके संबंधोंको ताक पर रख देते हैं। वे निष्पक्ष न्यायी हैं, न्याय सिंहासनके साम्हने उनके सभी व्यवहारिक संबंधोंका अंत होजाता है। अस्तु समस्त जनताने वज्र हृदयसे इस भयानक दंडाज्ञाको सुनकर मौन धारण कर लिया।

राजपुत्र वारिषेणने निश्चल मनसे निर्भयताके साथ अपने प्राण-वधका हुक्म सुना, उनके पवित्र हृदय पर इस आज्ञाका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे उसी तरह स्थिर और प्रसन्न थे जिस तरह सदैव रहते थे

मृत्युका उन्हें भय नहीं था। उनके हृदयको यदि किसी तरह भी व्यथा थी तो यही कि वे निर्दोष थे और एक निर्दोषीको दंड मिलना वे अन्याय समझते थे। लेकिन उन्हें आत्मविश्वास था, वे समझते थे यदि मेरी आत्मा बलवान है तो मैं अवश्य ही निर्दोष सिद्ध हूंगा। राजाज्ञा क्या सारा संसार भी मुझे दोषी करार नहीं दे सकता। उन्होंने निर्भय होकर अपनेको वधिकोंके सुपुर्द कर दिया, वधिक उन्हें पकड़ कर वध्य-भूमिकी ओर ले चले।

(६)

पातकी मानवोंके हृदयमें भयका आतंक भरनेवाली और अनेक अपराधियोंका संसारसे अस्तित्व मिटा देनेवाली वधिककी तलवार आज कुमार वारिषेणके सिरपर लटक रही थी। वह तलवार कितने ही सदोष व्यक्तियोंकी जीवन ज्योति नष्ट कर चुकी थी, और कितने ही निर्दोष होनेपर भी सदोष कहलानेवाले पुरुषोंका रक्तपान कर चुकी थी। किन्तु वधिकोंका कठोर हाथ आज न मालूम किस अज्ञातभयसे कांप उठा था। करुणाकी छाया न छू सकनेवाला उनका हृदय आज करुणा कादम्बिनीकी तरंगोंसे उमड़ पड़ा था। उन्होंने एक क्षणको राजपुत्र वारिषेणके सुन्दर और निर्दोष मुखकी ओर देखा और फिर एकबार अपने हाथकी क्रूर तलवारकी ओर देखा, देखकर वे बड़े धर्म-संकटमें पड़ गए। वे सोचने लगे—यह धर्मप्राण राजपुत्र भी क्या वधके योग है? तब क्या अपने राजपुत्रका वध करके मुझे अपनी तलवारको कलंकित करना होगा? आह! मुझे यह सब करना ही होगा। मैं राज्यका सेवक हूं। सेवकका कर्तव्य कठोर होता है, उसे अपने

स्वामीकी आज्ञाके सामने अत्यन्त प्रिय स्नेहबन्धनको भी तोड़ डालना होता है। कितने ही धार्मिक विचार और स्वतंत्र भावनाओंको ठुकरा देना होता है। वास्तवमें सेवकोंका कोई स्वतंत्र मन होता ही नहीं है, उनका तन, मन और उनकी सभी चेष्टाएं स्वामीके हाथ बिक जाती हैं। निश्चयतः सेवा कार्य बड़ा कठिन है और स्वामीको प्रसन्न रख सकना तो हवाको बांधना है। सेवक यह जान नहीं सकता कि स्वामी किस क्रियासे प्रसन्न होता है। यदि वह अपने स्वामीकी प्रत्येक उचित अनुचित आज्ञाका पालन कर उसे संतुष्ट करना चाहता है तो वह खुशामदी और चापलूस कहलाता है। यदि किसी कार्यके लिए अपनी स्पष्ट सम्मति देता है तो उच्छृंखल और धृष्ट समझा जाता है। अल्प बोलने पर मूर्ख और अधिक बोलने पर वाचाल कहलाता है। उसके सद्गुणों और कर्तव्योंका स्वामीकी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं होता।

मानव मनका स्वामी कहलाता है, उसे मनोनुकूल कार्य करनेका प्रकृति प्रदत्त अधिकार होता है। किन्तु क्या सेवकोंके भी मन होता है? उन्हें भी अपने मनोनुकूल कार्य करनेका कभी अधिकार हुआ करता है? नहीं, उन बेचारोंको तो अपने स्वामीके हाथकी उंगलीके इशारे पर ही नाचना पड़ता है। सैकड़ों भर्त्सनाएं, अपमान भरी क्रूर दृष्टिएं और कोप पूर्ण दुर्वचनोंको उन्हें नित्य प्रति ही सहन करना पड़ता है। उन्हें केवल अपने स्वामीकी स्नेहभरी दृष्टि देखनेके लिए अपने शरीर, मन और वाणिका बलिदान कर देना होता है। स्वामीको प्रसन्न रखनेके लिए उनके सैकड़ों अप्रत्यक्ष गुणोंका गान करके अपनी रसनाको तृप्त करना होता है, उनके योग्य और अयोग्य कार्योंमें अपने

शरीरको झोंक देना पड़ता है, और धर्म, लज्जा, सत्य आदि सद्गुणोंको तिलांजुलि देकर उनकी सभी उचित अनुचित आज्ञाओंका पालन करना पड़ता है। आह! सेवक सबसे निकृष्ट है। मुझे राजाज्ञाका पालन करना अनिवार्य है। जो कुछ भी हो इस सुन्दर राजपुत्रको प्राणविहीन कर मुझे अपना कर्तव्य पालन करना ही होगा। यह सब सोचकर राजकुमारकी गर्दन पर तलवारका वार करनेको तैयार हुआ।

मानवोंके रक्तकी प्यासी तलवारका वार कुमार वारिषेणकी गर्दन पर ठीक तरहसे पड़ा। उनके मस्तक विहीन शरीरको देखनेकी भयंकरताका अनुभव करनेवाले बधिकोंने अपने नेत्रोंको बंद कर लिया; एक क्षण बाद ही उन्होंने दुःख, ग्लानि और करुणाके साथ उनकी गर्दन पर दृष्टि डाली। वह बेजान तो थे। तलवारका वार ठीक हुआ है, राजकुमार वारिषेणका सुन्दर मस्तक पृथ्वीमंडल पर पड़कर उसे अवश्य ही रक्तरंजित कर देगा किन्तु यह देखकर उसके आश्चर्यका कोई ठिकाना नहीं रहा कि उनका सुन्दर मस्तक कल्पवृक्षोंकी दिव्य मालाओंसे सुशोभित होकर उनके शरीरकी शोभाको बढ़ा रहा है। वह बड़ी सरलतासे निर्भय होकर अपने स्थानपर प्रसन्न वदन खड़े हुए हैं। उनका पवित्र मुखमंडल अखंड दीप्तिसे चमक रहा है। बधिकको शंका हुई कहीं यह स्वप्न तो नहीं है। उसने अपने हाथकी तलवार पर एक दृष्टि डाली। वह पहिले ही जैसी सुन्दर और चमकीली थी, रक्तका एक भी धब्बा उसपर नहीं पड़ा था, आश्चर्यचकित होकर वह राजाके पास दौड़ा गया और इस चमत्कारपूर्ण घटनाकी उन्हें सूचना दी। वह भयसे कांपते हुए बोला—

महाराज ! इतने अचंभेकी बात मैंने आज तक नहीं देखी। राजकुमारके शरीरके अन्दर बड़ा ही चमत्कार है, आप चलकर देखिए, मैंने उनके शरीरपर तलवारका वार किया लेकिन उनके पुण्यमय शरीर पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

वधिकके द्वारा कुमार वारिषेणके सम्बंधमें इस आश्चर्यजनक घटनाका होना सुनकर महाराज अपने मंत्रियों सहित वहां जानेका प्रयत्न करने लगे। इसी समय उन्होंने अपने दरबारमें एक व्यक्तिको आते हुए देखा—वह विद्युत चोर था। विद्युत यद्यपि अत्यंत निष्ठुर प्रकृतिका पुरुष था लेकिन जब उसने प्रजाप्रिय कुमार वारिषेणके निर्दोष प्राण नष्ट होनेका संवाद सुना तब उसका हृदय जो कभी किसी घटनासे नहीं पिघलता था—करुणासे आर्द्र हो उठा। इसी समय उसने वधिकोंके द्वारा कुमार वारिषेणकी विचित्र रीतिसे प्राण रक्षाका समाचार सुना। अब उसे अपने अपराधके प्रकट होनेका भी भय हुआ था इसलिए यह शीघ्रसे शीघ्र महाराजके पास अपना अपराध प्रकट करनेके लिए आया था। आते ही वह महाराजाके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—महाराज ! आप मुझे नहीं जानते होंगे। मैं आपके नगरका प्रसिद्ध चोर विद्युत हूं, मैंने इस नगरमें रहकर बड़े २ अपराध किए हैं। यह अमौलिक हार मैंने ही चुराया था लेकिन अपनेको सैनिकोंके हाथसे बचता हुआ न देखकर ध्यानस्थ हुए कुमारके सामने फेंक दिया था। वास्तवमें कुमार बिलकुल निर्दोष हैं। हारका चुरानेवाला तो मैं हूं, आप मुझे प्राण दण्ड दीजिये। विद्युत-चोरके कथनसे महाराजको कुमार वारिषेणकी निर्दोषतापर पूर्ण विश्वास होगया। वे शीघ्र ही वधस्थलकी ओर पहुंचे।

कल्पवृक्षकी मालाओंसे सुशोभित, पुण्यकी पवित्र आभासे परिपूर्ण राजकुमार वारिषेणकी भव्य मुखमुद्राको उन्होंने दूरसे ही देखा उसे देखकर राजा बिंबसारको अपने द्वारा दी गई अन्यायपूर्ण दंडाज्ञा पर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ, उनका हृदय पश्चातापके वेगसे भर आया। वह अपने पुत्रका दृढ़ आलिंगन कर हृदयके आतापको अश्रुओं द्वारा बहाते हुए बोले—पुत्र! क्रोधकी तीव्र भावनामें बहकर, विचारशून्य होकर, मैंने तेरे लिए जो दंडाज्ञा दी थी उसका मुझे बड़ा खेद है। तेरे जैसे दृढ़ सत्यव्रती और सच्चरित्र पुत्रके लिए संपूर्ण जनताके समक्ष जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया है उसे मैं अपना महान् अपराध समझता हूं। आह! क्रोधके वेगने मुझे बिलकुल अज्ञानी बना दिया था इसलिए मैंने तेरी पवित्रतापर तनिक भी विचार नहीं किया। पुत्र! तू बिलकुल निर्दोष है, तू मेरे इस अन्याय तथा अविचारपूर्ण कार्यके लिए क्षमा प्रदान कर। वास्तवमें तू सच्चा धर्मात्मा और दृढ़ प्रतिज्ञ है। धार्मिक दृढ़ताके इस अपूर्व चमत्कारने तेरी सत्यनिष्ठाको सारे संसारमें अखंड रूपसे विस्तृत कर दिया है। देवों द्वारा किए आश्चर्यजनक कार्यने तेरी सच्चरित्रता पर अपनी दृढ़ छाप लगा दी है, तेरी इस अलौकिक दृढ़ता और क्षमताके लिए तुझे मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

महाराजके पश्चाताप पूर्ण हृदयसे निकले करुण उद्गारोंसे कुमार वारिषेणका हृदय विनय और प्रेमसे आविर्भूत होगया। कहने लगा—पिताजी! आपने मुझे दंड देकर न्यायकी रक्षा और कर्तव्य पालन किया है आपका यह अपराध कैसे कहा जा सकता है? कर्तव्य पालन कभी भी अपराधकी कोटिमें नहीं आ सकता। हां, यदि आप मुझे सदोष

समक्ष कर भी पुत्र प्रेमसे आकर्षित होकर मुझे उचित दंड नहीं देते तो यह अवश्य ही आपका अपराध होता।

जो राजा मनुष्य प्रेम अथवा व्यवहारिक सम्बन्धमें पड़कर न्यायका उल्लंघन करते हैं वह न्यायकी हत्या करनेवाले अवश्य ही अपराधी हैं। मैं जानता हूं मैं अपराधी नहीं था, लेकिन आपके न्यायने तो मुझे अपराधी ही पाया था, फिर आप मुझे दंड न देते तो आपकी जनता इसे क्या समझती? क्या वह यही नहीं समझती कि आपने पुत्र-प्रेममें आकर न्यायकी अवज्ञा की है, ऐसी दशामें आप क्या उस लोकापवादको सहन करते हुए न्यायकी रक्षा कर सकते? कभी नहीं! आपने मुझे दंड देकर न्याय सत्ताकी रक्षा करते हुए प्रजावत्सलताका पूर्ण परिचय दिया है, आपकी इस न्यायपरायणतासे आपका सुयश संसारमें विस्तृत रूपसे प्रख्यात होगा। मुझे आपके न्यायका गौरव है, मेरा हृदय उस समय जितना प्रसन्न था उतना ही अब भी प्रसन्न होरहा है।

यह तो मेरे पूर्व जन्मके कृतकर्मोंका संबंध था जिसके कारण मुझे अपराधीकी श्रेणीमें आना पड़ा। कर्मफल प्रत्येक व्यक्तिके लिए भोगना अनिवार्य है इसके लिए किसी व्यक्तिको दोष देना मूर्खता है।

धर्मभक्त पुरुषोंके साहस, दृढ़ता और धार्मिकताका परीक्षण तो उपसर्ग और आपत्तियें ही हैं। यदि मेरे ऊपर यह उपसर्ग न आया होता, इस तरह मेरा तिरस्कार न हुआ होता तो मेरे सद्‌आचरण और आत्म दृढ़ताका प्रभाव मानवों पर कैसे पड़ता? चंदन जितना घिसा जाता है, पुष्प यंत्रमें जितने पेले जाते हैं उनसे उतना ही अधिक सौरभ विकसित होता है। स्वर्ण जितनी तेज आंच पाता है, उतनी ही अधिक चमक बढ़ जाता है। इस तरह धार्मिक और कर्तव्य निष्ठ

व्यक्ति आपत्ति यंत्रमें जितना अधिक पिसते हैं उनकी यश, कीर्ति और साहस सुरभि उतनी ही अधिक विस्तृत होती है। पिताजी आप इस कार्यसे अपने हृदयको खेदित मत कीजिए इसमें आप रंच भर भी दोषी नहीं हैं।

राजकुमार वारिषेणके हर्ष वर्धक और महत्वपूर्ण शब्द सुनकर महाराजाका हृदय हर्षप्लावित होगया। वे उसे अपने हृदयसे लगाकर बोले–पुत्र! तेरे जैसे विवेकशील राजपुत्रका यह सब कहना उचित है। तू उन्नत विचार है अब तुझे राजधानीमें चलकर वियोग व्यथित माताको दर्शन देकर प्रसन्न कर वह तेरे वियोगमें बैठी आंसु बहा रही है।

अपने अल्प समयके जीवनमें संसार नाटकके अनेक परिवर्तनों-का निरीक्षण कुमारने किया था, इस परिवर्तनने उनके सन्यासी हृदयको सन्याससे भर दिया था, उनका मन संसारसे विरक्त हो उठा था। सांसारिक स्नेह और वैभवके प्रति उन्हें अत्यंत घृणा हो गई थी। उनका मन अब लोक कल्याण-भावनासे परिपूर्ण होगया। वे विरक्तता पूर्ण स्वरमें राजा बिंबसारसे बोले. पिताजी मैं अब इस नश्वर संसारके क्षणिक विषय विलासमें क्षणभंगुर वैभवके प्रलोभनमें अपने आपको एक क्षणके लिए भी लिप्त नहीं रखना चाहता। अब तो मैं मानव हितके लिए अपना आत्मोत्सर्ग करूंगा। यह सब उन्होंने बड़ी दृढ़ताके साथ कहा और फिर उनसे आज्ञा लेकर वे अपनी माता और पत्नीके पास पहुंचे उनके सामने उन्होंने अपने हृदयके विचारोंका प्रकाशन किया और उनके हृदयका मोह शान्तकर वे तपस्वियोंके संघमें जा मिले। वहां उन्होंने दिगंबरत्व धारण किया और वे आत्म चिंतनमें अपने मनको लीन करने लगे।

(७)

राजमंत्री अग्निभूतिका पुत्र पुष्पडाल था वह उन्नतमना धर्म भक्त और सत्कर्म निष्ठ था। देव उपासना, व्रत, संयम और दानादि कृत्योंमें वह सदैव निरत रहता था।

प्रातःकालके १० बजेका समय था, वह अपने द्वार पर खड़ा हुआ किसी अतिथिके लिए भोजनदान देनेकी प्रतीक्षामें था इसी समय उसने तपश्चर्याकी तीव्र आंचमें तपाये हुए तेजस्वी साधु वारिषेणको देखा इसे उसने अपना सौभाग्य समझा, उन्हें आहारदान दिया। साधु भोजन ग्रहण कर वनकी ओर चल दिये। पुष्पडालके हृदयमें बाल्यावस्थाका प्रेम लहराने लगा, उसी प्रेमसे आकर्षित होकर युवक पुष्पडाल उनके पीछे२ चलने लगा। चलते हुए वह ध्यान स्थान तक पहुंचा। वहां वह कुछ क्षणको ठहरा उसने तपस्वी वारिषेणसे अपने लिए कुछ आदेश चाहा। तपस्वी वारिषेणके निकट लोक-कल्याण भावनाके अतिरिक्त और देनेको क्या था! उन्होंने उसे वही उपदेश दिया। पर पुष्पडालका हृदय निर्मल था। उसके हृदय इस उपदेशका प्रभाव पड़ा वह उसी समय संसारसे विरक्त होकर तपस्वी बन गया।

पुष्पडालने उस समय संसारका त्याग तो कर दिया था लेकिन उसके मनकी इच्छाएं अभी मरी नहीं थीं। उसने यह त्याग क्षणिक उत्तेजनामें आकर किया था इसलिए कुछ समय बाद ही उसके हृदयमें विषय लालसाकी क्षुद्र तरंगें लहराने लगीं। अपने हृदयको जीतनेके लिए वह आध्यात्मिक ग्रंथोंका अधिक समय तक अध्ययन करता था, विषय विरक्तके भाषणोंको सुनता था, और अपने मनको वशमें करनेका प्रयत्न करता था। लेकिन उसके हृदयकी वासना नष्ट नहीं होती थी।

एक दिन वह कामविकारोंसे अत्यंत अधीर हो उठा। पत्नी संयोगकी इच्छाने उसके हृदयको वेकल कर दिया वह महाव्रतके क्षेत्रसे उठकर अपनी पत्नीसे मिलनेके लिए नगरकी ओर चल दिया।

तपस्वी वारिषेणने युवक साधु पुष्पडालके हृदयका अध्ययन किया था। वे उसके हृदयकी कमजोरीको जानते थे और उसे निकाल देना चाहते थे। उन्होंने पुष्पडालके ही साथ नगरको प्रस्थान किया और वे कहीं न जाकर सीधे अपने राजमहलमें पहुंचे।

महाव्रती वारिषेणको राज्यमहलमें इस तरह प्रवेश करते हुए देखकर माता चेलिनीका हृदय किसी आशंकासे भर गया, लेकिन वे कुछ नहीं बोलीं।

साधु वारिषेणने महलमें प्रवेश कर माताके संदेहको नष्ट करते हुए कहा—माताजी! आप मेरी पूर्व पत्नीको मेरे निकट उपस्थित कीजिए। देव बालाके सौंदर्यको लज्जित करनेवाली तरुणिएं उनके साम्हने उपस्थित थीं उन्होंने भक्तिके आवेगसे भरकर साधुको प्रणाम किया फिर वह उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें नतमस्तक होकर उनके साम्हने कुछ क्षणको खड़ी रहीं।

तपस्वी वारिषेणने पुष्पडालकी ओर देखते हुए कहा, साधु पुष्पडाल! तुम जानते हो सौन्दर्य और यौवनसे पूर्ण ये मेरी पत्नियें हैं यह विलास पूर्ण मेरा यह राज्य भवन है। यह समस्त वैभवका साम्राज्य किसी समयमें था, मैंने इन सबका त्याग कर दिया है मेरे त्यागसे यह सब वैभव आज शून्य होगया है, क्या तुम्हारे हृदयमें इस तरहके वैभवकी प्राप्ति और उसके उपभोगकी इच्छा होती है?

पुष्पडाल अपने हृदयकी कमजोरी समझ गया। तपस्वी वारिषे-

णकी त्याग भावनाका उसके मनपर आज विलक्षण प्रभाव पड़ा। विषयकी ओर जाग्रत होनेवाले उसके मनका विषदन्त टूट गया था वह उनके चरणोंमें नत होकर पश्चातापके स्वरमें बोला—साधु श्रेष्ठ! रहने दीजिए अब आगे कुछ कहकर मुझे लज्जित न कीजिए। तपस्विन्! मैं बड़ा अज्ञानी था। तृप्तिके क्षेत्रमें पहुंच कर भी मेरा मन अतृप्त बना था। अब मेरा वह स्वप्न भंग होगया। आपने मेरे मनका कांटा निकाल दिया। अब मेरा मन बिलकुल शान्त है, उस परसे विषय वासनाका तूफान निकल गया है। अब मैं वह निर्बल हृदय तपस्वी नहीं रहा। अब पुष्पडालने अपने कर्तव्य मार्गको दृढ़तासे ग्रहण किया है, और उसके पिछले मनके पापोंको धोनेके लिए जो चाहे सो प्रायश्चित्त दीजिए।

ऋषिश्रेष्ठ वारिषेणको उसके दृढ़ संकल्पसे प्रसन्नता हुई वह बोले—साधुवर! तुम अब उस मार्गपर आचुके हो जिसपर चलना तुम्हारा कर्तव्य था। तुम्हें अपनी पिछली कमजोरीके लिए दुखी नहीं होना चाहिए। मदनदेव और मोहराजका प्रताप ही ऐसा है जो महान् व्यक्तियोंके मस्तकको झुका देता है मुझे हर्ष है तुम्हारे मन परसे उसका प्रभाव चला गया है। अब तुम्हारा आत्मोत्थानका मार्ग निष्कंटक है। उन्होंने पुष्पडालको वनमें ले जाकर उसे प्रायश्चित्त दिया। युवक साधु पुष्पडालने निश्चल मनसे अपने आपको कठिन तपस्यामें निमग्न कर लिया।

तपस्वी वारिषेण और साधु रत्न पुष्पडाल एक साथ रह कर आत्म उपासना करते थे, आत्मोत्थानका उपदेश देते थे और जनताके आत्म कल्याणकी उत्कट भावना रखते थे। बहुत समय तक तपश्चर्यामें निरत रहकर दोनोंने अपना पूर्ण आत्मोत्थान किया।

[२१]

गणराज गौतम ।

(सत्यके महान् उपासक !)

(१)

भारतवर्षके प्रदेशोंकी सुन्दरताको जीतनेवाले मगध देशमें ब्रह्मण नामक प्रसिद्ध नगर था। वेद पाठियोंकी उच्च और ललित ध्वनिसे वह सदा ही पूरित रहता था।

ब्राह्मणोचित कर्त्तव्यमें निरत श्रुतविज्ञ शांडिल्य उस नगरके प्रधान पुरोहित थे। उनकी पत्नी स्थंडिला थी, समीपके अनेक ग्रामोंमें उनका यथेच्छ आदर और सम्मान था।

श्रुतविज्ञ शांडिल्यके तीन पुत्र थे उनका नाम गौतम, गार्ग्य और भार्गव था विद्वान् पुत्रोंके समूहसे वेष्टित विप्रराज शांडिल्य सचमुच ही बृहस्पतिकी तरह सुशोभित होते थे। उनके तीनों पुत्र

ज्योतिष, वैद्यक, अलंकार, न्याय, काव्य, सामुद्रिक आदि सभी विद्याओंके पारगामी थे। गौतम अपने सब बंधुओंकी अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली और विद्वान थे। उनके वेदज्ञान और क्रियाकांडकी जानकारी अत्यंत उत्कृष्ट थी। उनकी तर्क शैली भाषण और व्याकरण संबंधी योग्यता उस समयके सभी वैदिक विद्वानोंमें श्रेष्ठ थी। उनका गंभीर और युक्ति पूर्ण तेजस्वी भाषण और वाद विवादकी अपूर्व शैली देखकर बड़े २ वैदिक ज्ञानी आश्चर्यमें पड़ जाते थे।

विप्रराज गौतमकी विलक्षण बुद्धिके प्रभावसे उनके पास शिष्योंका बड़ा भारी समूह एकत्रित होगया था, उन सबकी गणना ५०० थी गौतम बड़े अहंमन्य ब्राह्मण थे। उन्हें अपनी बुद्धि, तर्क और ज्ञानका बड़ा अभिमान था, अपनी विद्या और ज्ञानकी तुलना करने-वाला वे सारे संसारमें किसीको भी नहीं समझते थे वे अपने ज्ञानके अहंकारमें सदैव मस्त रहा करते थे। उनके अहंकारको उनके शिष्यगण अपनी सेवा और नम्रता द्वारा और भी अधिक बढ़ाया करते थे, उन्हें वे बृहस्पतिसे भी अधिक विज्ञ समझते थे। विप्रराज गौतमको अपनी शिष्य मंडली पर गौरव था। इतना शिष्य समुदाय किसीका नहीं था इसलिये वे अपनी शिष्य मंडलीके बीचमें अभिमानके शिखर पर बैठे हुए अपने अक्षर ज्ञानकी प्रशंसामें मग्न रहा करते थे।

(२)

प्रातःकालका समय था, प्रकृतिदेवी प्रशान्त और गंभीर थी, सूर्यने स्वर्णमयी किरणोंके आलोकसे लोकको स्वर्ण चित्रित बना दिया था।

वर्द्धमान महावीर प्रभातके इस सौंदर्यका निरीक्षण कर रहे थे, वे उषाके चित्रित वदन पर आकर्षित थे। उन्होंने देखा, उषाकी वह लालिमा धीरे धीरे नष्ट होगई और उसके स्थानपर नभ मंडलका शुभ्र स्थान दिखने लगा। उन्होंने इस परिवर्तनको देखा, इस परिवर्तनसे उनके हृदयमें एक विचित्र विचार धारा वह उठी। वे सोचने लगे—यह संसार कितना परिवर्तनशील है।

इसकी सभी वस्तुएं नाशवान और क्षणिक हैं। वस्तुकी अवस्था एक क्षणको भी स्थिर नहीं रहती वह क्षण प्रतिक्षण बदलती रहती है। इस क्षणिक विश्वका दृश्य कितना नश्वर है, और इस क्षणिक लीलाका दिग्दर्शन करते २ मानव अपने जीवनको समाप्त कर देता है। इस नष्ट होनेवाले संसार नाटककी रङ्ग भूमिमें अपने आत्म गौरवको मानव किस तरह भुला देता है। ओह! यह विवेकसे च्युत मानव मोह सम्राट्के वशमें हुए संसारकी विलास वासना और विषय प्रलोभनमें अनुरक्त होकर अपनी संपूर्ण शक्तिको खो बैठता है। उसे अपनी आत्मसत्ता, कर्त्तव्य और वास्तविक सुख साम्राज्यका बोध ही नहीं होता।

स्वार्थ मग्न मानव, केवल धन, वैभव और इन्द्रिय सुख साम्राज्यकी ही कल्पना करनेवाला मानव अपने चारों ओर स्वार्थका ही साम्राज्य देख रहा है! और अपनी स्वार्थ पूर्तिके लिए अन्याय और अत्याचार करनेसे नहीं हिचकता। शक्ति और वैभवके मदमें अंधा होकर, निर्बल, अनाथ और असहाय जंतुओंके जीवनका वह कुछ भी मूल्य नहीं समझता। कितने मूक पशुओंका बलिदान होता हुआ मैं देख रहा

हूं, बधिककी तलवारके नीचे पड़े हुए कितने दीन पशुओंका हृदय विदारक चीत्कार सुन रहा हूं, ओह ! थोड़ीसी लालसाके लिए इतना हिंसाकांड यह हो रहा है। यह अज्ञानी मानव धर्मके वास्तविक रहस्यको बिलकुल ही नहीं समझते । इन्होंने केवल क्रियाकांड और ज्ञान शुन्य कायक्लेशमें ही अपने कर्त्तव्योंकी इतिश्री समझ ली है। ओह ! कितने अज्ञ हैं यह मानव, तब ऐसी दयनीय दशाको देखते हुए क्या मेरा यह कर्त्तव्य नहीं है कि मैं इनका मार्ग प्रदर्शन करूं, गहन वनमें भटकते हुए भोले भक्तोंको भक्तिका असली रहस्य समझाऊं, और विलासिताकी नींदमें गहरे डूबे हुए मानवोंको जागृत करूं । क्या मैं इन्हें इस अन्याय अत्याचार और आत्मपतनके गहरे गड्ढेमें गिरने दूं ? नहीं मैं यह सब नहीं देख सकूंगा । बहुत देखा अब मैं एक क्षणके लिए भी इसे देखनेको तैयार नहीं हूं ।

मैं इन अज्ञ मानवोंको सत्कर्तव्यके दिव्य प्रकाशमय सरल पथका प्रदर्शन करूंगा, इनके हृदयमें सत्य ज्ञानकी दिव्य प्रभाको भरूंगा और आत्म सुखके उच्चतम शिखर पर ले जाऊंगा । यह सब कैसे होगा ? मैं स्वयं सत्य उपदेशक बनूंगा, सन्मार्गका प्रदर्शक बनूंगा, उसके लिए मुझे राज्य प्रलोभनके किलेको चकनाचूर करना होगा, विलास बंधनके टुकड़े टुकड़े करना होंगे और इस गृहस्थ श्रमके आत्मोन्नतिनिरोधक संकीर्ण क्षेत्रसे निकल कर महाव्रतके विस्तृत मैदानमें उतरना होगा । तब यही होगा, मैं तपस्वी बनूंगा । एक क्षणमें उनका हृदय वैराग्यसे भूषित हो गया । वह बाल-ब्रह्मचारी, वह अद्वितीय आत्मविजयी, वह प्रबल बलशाली, मदनविजयी महावीर उसी समय सांसारिक जाल त्यागका संकल्प करने लगे ।

मानवोंने उनके विचारका अनुमोदन किया वे स्वयं उन्हें रत्न-जटित पालकीमें बिठलाकर काननकी ओर ले चले। वनमें जाकर महावीर वर्धमान पालकीसे उतरे उन्होंने अपने आभूषणोंको, सिरपरसे मुकुटको और बहुमूल्य वस्त्रोंको जीर्ण तृण सदृश अकिंचन समझ कर त्याग दिया और अपने सुकुमारकरोंसे सिरके केशोंको उपाड़ कर डाल दिया फिर "ऊँनमः सिद्धेभ्यः" कहते हुए निर्मल शिलापर बैठकर ध्यानस्थ होगये।

भगवान महावीर तीव्र तपश्चरणमें तन्मय थे। सुमेरु शिखा समान निश्चल, निश्चेष्ट और निर्भय, उनका शरीर तपश्चरणकी प्रभासे चमक उठा था। प्रलय, तूफान, वर्षा, शीत, उष्णकी अनेक बाधाओंका उनकी अविनश्वर आत्मापर कुछ प्रभाव नहीं था—पाषाण स्तंभकी तरह वे अडिग अडोल, और अचल थे।

भ्रमण करते हुए रुद्रने उन्हें देखा—उनकी इस शांति छविको देखकर उसे विद्वेष हुआ। पूर्व संस्कारके प्रबल प्रकोपके कारण वर्द्धमान महावीरको देखते ही उसके मनमें द्वेषकी दाह दहकने लगी वह उन्हें निश्चल ध्यानसे विमुख करनेका प्रयत्न करने लगा। उसने अपनी संपूर्ण दानवी शक्तिका प्रयोग किया, लेकिन वह असमर्थ रहा—भयानक उपसर्गों और परीषहोंके सामने महावीर—महावीर ही बने रहे। अंतमें रुद्र पराजित हुआ उसे अपने दुष्कृत्य पर बड़ी लज्जा और ग्लानि हुई। अपने पापका प्रायश्चित करनेके लिए उसने महावीरके चरणोंमें पड़कर अपने अपराधोंकी क्षमा मांगी और वह अपने स्थानको चल गया।

दृढ़व्रती वर्द्धमान अनंतशक्ति महात्मा महावीरने, कठोर उपसर्गोंके सामने विजय प्राप्तकी। आत्म शक्तिसे बढ़े हुए भगवान् महावीरने ध्यानकी संरक्षतामें अपनी समस्त आत्म शक्तियोंका संगठन किया फिर पद दलित ठुकराए और क्षीण हुए मोह सुभटपर भयंकर प्रहार किया। ध्यानकी तीव्रताके सामने मोह एक क्षणको भी स्थिर नहीं रह सका। उसके साथी क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष आदिके पैर भी उखड़ गए, उसका सम्पूर्णतः पतन हुआ।

महावीरके निर्मल आत्मामें अनंत ज्ञानका प्रकाश स्फुरित हुआ उसके उदित होते ही संपूर्ण आत्म गुण विकसित होगए, केवलज्ञान और अनंतदर्शनकी दिव्य शक्तिसे उन्होंने संसारके सभी पदार्थोंका दिग्दर्शन किया।

(४)

आत्मविजयी महात्मा महावीरके अलौकिक ज्ञान साम्राज्यका महा महोत्सव मनानेके लिए स्वर्गाधिपति इन्द्र देवताओंके समूह सहित आया। उनके अभूतपूर्व केवलज्ञान साम्राज्यकी महिमा प्रदर्शित करनेके लिए कुवेरको उनका सुन्दर सभास्थल बनानेका आदेश दिया। मानवोंके हृदयोंमें आश्चर्य हर्ष और आनंदकी धारा बहानेवाला सभास्थल बन गया। उसमें बारह सभाएं थीं सभाके बीचमें सुन्दर सिंहासन था, सिंहासन पर बैठे हुए भगवान् महावीरके दिव्य शरीरका दर्शन कर देव और मानव अपने नेत्रोंको सफल बनाने लगे।

महावीरके समवशरणमें प्रत्येक जातिके मानवको समान अधिकार था। प्राणी समुदाय उनका भाषण सुननेको उत्सुक था, लेकिन

उनकी दिव्यध्वनि प्रकट नहीं हुई। इन्द्रने इसका कारण जानना चाहा, वे कारण समझ गए। कारण यह था कि उनकी दिव्य ध्वनिसे प्रकट होनेवाले उपदेशोंकी व्याख्या करनेवाला कोई विद्वान उस समय वहां उपस्थित नहीं था। इन्द्र शीघ्र ही इस समस्याको हल करना चाहते थे। मानवोंके चंचल चित्तको वे जानते थे उपस्थित जनता महावीरकी वाणी सुननेको कितनी उत्सुक है उन्होंने इस समस्याके सुलझानेका प्रयत्न किया और वे उसमें सफल भी हुए। समस्याका एक ही हल था—गौतम ब्राह्मणको लाना। परन्तु उसका लाना भी तो कठिन था लेकिन उसे कौन लाए! अंतमें इन्द्रने स्वयं इस कार्यको अपने हाथमें लिया। उन्होंने जनताको संबोधित करते हुए कुछ समयको धैर्य रखनेका आदेश दिया और फिर वे ब्राह्मणका वेष धारण कर विद्वान् गौतमको लानेके लिए चल दिए।

गौतम शिष्य मंडलीके समूहमें बैठे हुए अपनी प्रतिभाके प्रबल तेजको प्रकाशित कर रहे थे। वे दीर्घ शिखाधारी अपने पांडित्यका अनुचित अहंकार रखनेवाले वेद विषय पर गंभीर व्याख्यान दे रहे थे उनका हृदय अत्यंत प्रसन्न और सुख मग्न था। विवेचना करते हुए उन्होंने एकबार अपनी शिष्यमंडलीकी ओर गंभीर दृष्टिसे देखा। शिष्यगण सरल और मौनरूपसे गुरुदेवके मुखसे निकले गंभीर विवेचनको उत्सुकताके साथ सुन रहे थे। इसी समय शिखा सूत्रसे वेष्टित एक-शरीरधारी ब्राह्मणने व्याख्यान सभामें प्रवेश किया ब्राह्मण अत्यंत वृद्ध था उसके चेहरेसे विद्वत्ता स्पष्ट रूपसे झलक रही थी व्याख्यान सुननेकी इच्छासे वह सबसे पीछे एक स्थानपर बैठ गया।

गौतमका विवेचन वास्तवमें विद्वत्तापूर्ण था । वहे झरनेके कल-कलनादकी तरह धाराबाहिक रूपसे बोल रहे थे । गंभीर तर्क और युक्तियोंसे वे अपने सिद्धान्तकी पुष्टि करते जाते थे । शिष्यमंडली मंत्रमुग्धकी तरह उनका व्याख्यान सुन रही थी । ओजस्विनी भाषामें विवेचन करते हुए विद्वान गौतम सचमुच ही सरस्वतीके पुत्रकी तरह मालुम पड़ रहे थे । उनकी उक्तिएं उनकी गवेषणाएं और उनकी वक्तृताका ढंग चमत्कारिक था । विद्वानोंकी दृष्टिमें आजका व्याख्यान उनका अत्यंत महत्वपूर्ण था, व्याख्यान समाप्त हुआ । धन्य धन्यकी उच्च ध्वनिसे सभास्थान गूंज उठा । सम्पूर्ण शिष्यमंडलीने एकस्वरसे इस अभूतपूर्व व्याख्यानका अनुमोदन किया ।

शिष्य समूहमें बैठा हुआ एक वृद्ध पुरुष ही ऐसा था जिसके मुंहसे न तो कोई प्रशंसात्मक शब्द ही निकला और न उसने इस व्याख्यानका कुछ भी समर्थन ही किया । वह केवल निश्चल दृष्टिसे उनके मुंहकी ओर ही देखता रहा । विद्वान् गौतम उसके इस मौनको सहन नहीं कर सके वे कुछ क्षणको सोचने लगे । 'मेरे जिस भाषणको सुन कर कोई भी विद्वान् प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता उसके प्रति इस ब्राह्मणकी इतनी उपेक्षा क्यों है ? इसने अपना कुछ भी महत्व प्रदर्शित नहीं किया । तब क्या इसे मेरा भाषण रुचा नहीं ? अच्छा तब इसे अपने भाषणका और भी चमत्कार दिखलाना चाहिए । देखूं इसका मन कैसे मुग्ध नहीं होता है । मैं देखता हूं यह ब्राह्मण अब मेरी प्रशंसा किए बिना कैसे रह सकता है ? वे अपने प्रखर पांडित्यकी धारा बहाते हुए अपने विशाल ज्ञानका परिचय देने लगे ।

इस अंतिम व्याख्यानमें उन्होंने अपनी संपूर्ण प्रतिभाके चमत्कारको प्रदर्शित कर दिया था। उनकी शिष्य मंडलीने भी उनका इस तरह धारावाहिक और तर्क तथा गवेषणा पूर्ण भाषण कभी नहीं सुना था, वह चित्र लिखित थे। द्विगुणित जयध्वनिसे एक बार सभा मंडप फिर गूंज उठा, व्याख्यान समाप्त हुआ, विद्वान गौतमका सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया था। अन्य दिनकी अपेक्षा आज अपने भाषणमें उन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ा था। उन्होंने देखा वृद्ध ब्राह्मण अब भी मौन था। उसके चहेरे पर इस भाषणका कुछ भी प्रभाव पड़ा नहीं दिखता था।

गौतम अब अपने आश्चर्यको नहीं रोक सके, वृद्ध ब्राह्मणकी ओर एक तीव्र दृष्टि डालते हुए वे बोले। विप्रराज! तुमने मेरे इस पांडित्य भरे हुए चमत्कारिक भाषणका कुछ भी अनुमोदन नहीं किया। क्या तुम्हें मेरा यह व्याख्यान नहीं रुचा? तब क्या मेरा भाषण सर्वोत्कृष्ट नहीं था? क्या मेरे समान कोई महा विद्वान् इस पृथ्वी-मंडलपर तुमने देखा है? मुझसे स्पष्ट कहो तुमने मेरे इस भाषणकी प्रशंसा क्यों नहीं की?

वृद्ध ब्राह्मणने कहा—विद्वान् गौतम! आपको अपनी विद्वताका इतना अभिमान नहीं होना चाहिए, आपसे सहस्रगुणी अधिक प्रतिभा रखनेवाले विद्वान् इस पृथ्वी मंडलपर हैं

आश्चर्यसे अपना मस्तक हिलाते हुए सम्पूर्ण शिष्यमंडलीने एक स्वरसे कहा—कदापि नहीं, गुरुराजके समान प्रतिभा संपन्न पुरुष इस पृथ्वीमंडलपर दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। उनका स्वर क्रोधपूर्ण था।
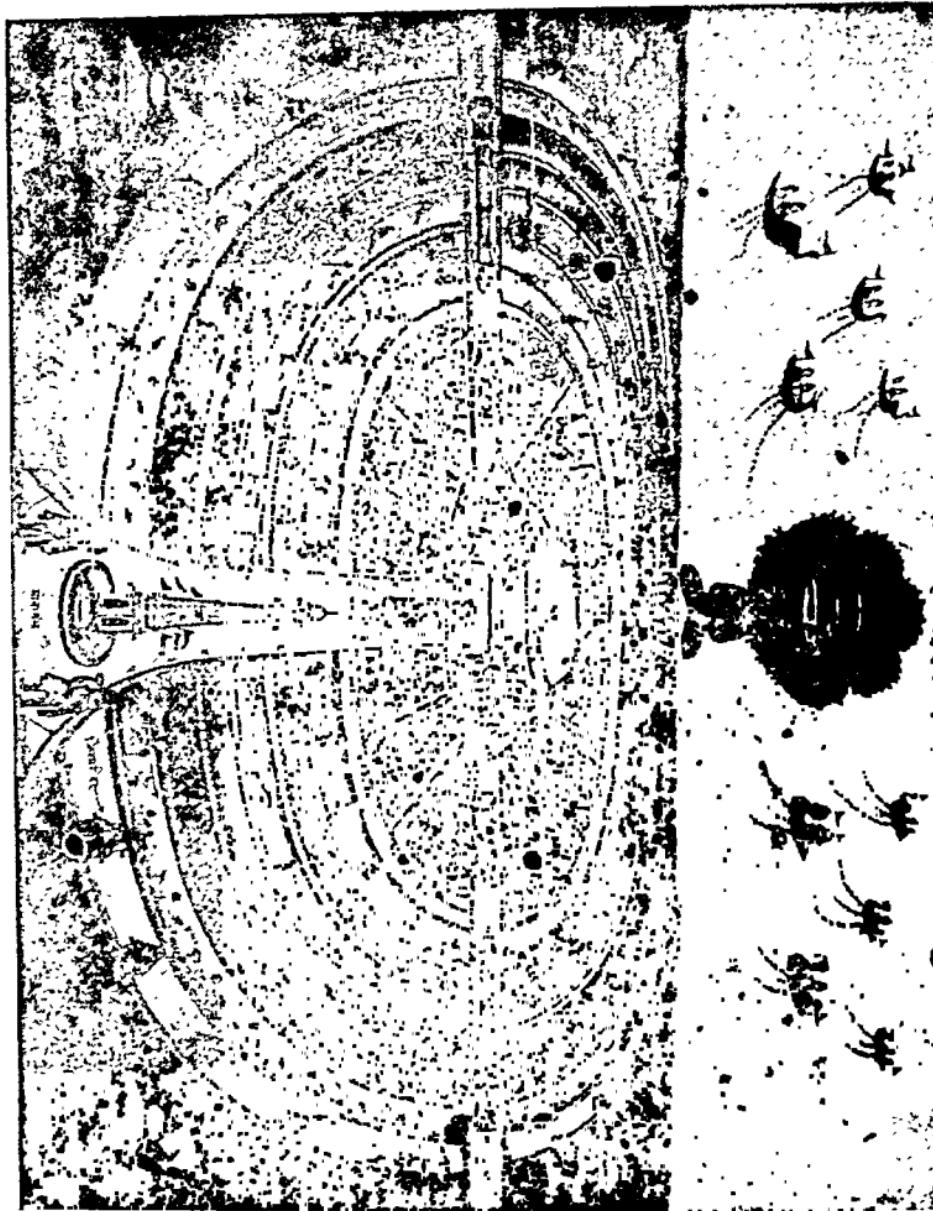
वृद्ध ब्राह्मणने शिष्य समुदायके क्रोधको मधुर शब्दोंके द्वारा शमन करते हुए दृढ़ताके स्वरमें कहा। मैं अपने शब्दोंको इस विद्वत् परिषद्के साम्हने साहसके साथ फिरसे दुहराता हूं, मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं मेरे शब्द अकाट्य हैं विद्वान् गौतम अब अपने धैर्यको स्थिर नहीं रख सके। वे बोले-ब्राह्मण! मुझे परिचय दो वह कौन महा विद्वान् है जो महामना गौतमके पांडित्यके साम्हने अपने पांडि-त्यके अभिमानको सुरक्षित रख सकता है।

वृद्ध ब्राह्मणने गम्भीर स्वरमें कहा-महामना गौतम! अभि-मानकी धारामें इतने अधिक मत वह जाओ। वास्तवमें तुम्हारा ज्ञान है ही कितना? तुम उन महा विद्वानका परिचय यदि जानना ही चाहते हो तो मैं तुम्हें उनका परिचय देता हूं सुनो-अपने अतुलित ज्ञानके प्रभावसे पूर्ण वे मेरे गुरु हैं।

'तुम्हारे गुरु!' ब्राह्मण तुम यह क्या कहते हो? तुम्हारे वे गुरु कौन हैं, कहां रहते हैं, मुझे उनकी विद्वताका कुछ परिचय दो। आश्चर्यचकित गौतमने कहा—

वृद्धने अत्यंत गंभीर होकर कहा-विद्वान् गौतम! घबड़ाओ मत; मैं तुम्हें अपने विद्वान् गुरुका परिचय दूंगा। लेकिन परिचय देनेके पहिले मेरे एक प्रश्नका उत्तर आपको देना होगा इस प्रश्नकी गंभीरतासे ही मेरे विद्वान् गुरुका परिचय तुम जान लोगे।

गौतमने शीघ्रतासे कहा-ब्राह्मण! अपना प्रश्न बोलो। मैं सुनूं।। वह कौनसा प्रश्न है जो गौतमकी तीक्ष्ण प्रतिभाके साम्हने उपस्थित रह सकता है।

भगवान्‌के समवशरणका दृश्य (वारह सभा)।

इन्द्रभूति-गौतमका मानस्तंभ देखते ही मान-भंग।

वृद्ध ब्राह्मणने अब संतोषकी पूर्ण सांस लेकर कहा—विद्वान गौतम! आप प्रश्नका उत्तर अवश्य देंगे? लेकिन प्रश्नके साथ ही मेरी एक प्रतिज्ञा भी है वह भी आपको स्वीकार करना होगी। यदि आप मेरी प्रतिज्ञा स्वीकृत करनेमें समर्थ हों तो अपने प्रश्नको आपके साम्हने उपस्थित करूं।

गौतमने साहसके साथ कहा— ब्राह्मण! मैं सुनना चाहता हूं तुम्हारी वह प्रतिज्ञा कौनसी है? जिसका भय दिखलाकर तुम विद्वान् गौतमको डराना चाहते हो। तुम प्रतिज्ञा निर्भय होकर कहो। गौतमको जिसतरह अपनी अखंड विद्वत्तापर विश्वास है उसी तरह उसे यह भी विश्वास है कि वह तुम्हारी प्रतिज्ञको पूरा कर सकेगा।

वृद्ध ब्राह्मणने कहा—अच्छा! विद्वान् गौतम! तब आप मेरी प्रतिज्ञाको सुनिए। मेरी यही प्रतिज्ञा है 'जो विद्वान् पुरुष मेरे प्रश्नका स्पष्ट उत्तर देकर मेरे हृदयकी शंकाएं नष्ट कर देगा मैं उसका आजीवन शिष्य बनकर उसकी सेवा करूंगा. और यदि वह किसी तरहसे मेरे प्रश्नका उचित उत्तर नहीं देसकेगा. तो उसे मेरे गुरुका शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ेगा।' कहिए, आप इस प्रतिज्ञाको स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं।

गौतमने अपना मस्तक ऊंचा उठाते हुए कहा—ब्राह्मण! गौतम इस प्रतिज्ञाको सहर्ष स्वीकार करता है, तुम अपना प्रश्न उपस्थित करो।

वृद्ध ब्राह्मण तो यह चाहता ही था, उसे मनचाही मुराद मिली। उसने कहा—विद्वान् गौतम! आप मेरी प्रतिज्ञा स्वीकार करते हैं; मैं आपपर विश्वास करता हूं। अच्छा, अब आप मेरे प्रश्नको सुनिए।

वृद्ध ब्राह्मणने अपने प्रश्नको गौतमके सामने एक काव्यके रूपमें रक्खा।

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीव षट्काय लेश्या ।
पञ्चान्येऽचास्तिकाया व्रत, समिति गति ज्ञानचारित्रभेदाः ॥
इत्येतन् मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैर्प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः ।
प्रत्येति श्रद्दधाति सकलगुणगणै मोक्षलक्ष्मी निवासः ॥

काव्य समाप्त हुआ । वृद्ध ब्राह्मणने नम्र होकर कहा—महामना गौतम! कृपया मेरे काव्यके भेदोंको मुझे समझानेका कष्ट कीजिए।

प्रश्न सुनकर विप्रराज गौतमका हृदय कुछ समयको विक्षुब्ध हो गया—जिस तरह प्रबल आंधीके वेगसे पड़ा हुआ शुष्कपात समूह नभमंडलमें इधर उधर उछलता है, समुद्रकी भयानक तरंगोंमें जहाजका जीवन डगमगाने लगता है, उसी तरह गौतमका प्रतिभारूपी महा वृक्ष डगमगाने लगा। वह विचार-सागरमें निमग्न होकर संशयके गोते खाने लगे, वह सोचने लगे—तीन काल क्या? छह द्रव्य कौन। नव पदार्थ कौनसे? छह कायके जीव, छह लेश्या, पंचास्तिकाय आदि यह सब क्या? मैं तो इनके प्रभेदोंको जानता ही नहीं, जानना तो दूर रहा मैंने तो अभी तक इन्हें सुना भी नहीं है? इस वृद्ध ब्राह्मणको इनका मैं क्या उत्तर दूं! बेशक, इस समय तो मुझे यही मालूम होरहा है—ओह! आज मेरे ज्ञानकी यह क्या दुर्दशा हो रही है? क्या मैं वही विजयी गौतम हूं? इस तरह विचार करते हुवे कुछ समयको मौन हो गए।

गौतमको अधिक समय तक विचारमें गोते खाते हुए देख कर वृद्ध ब्राह्मणने उन्हें जागृत करते हुए कहा—महामना गौतम! मुझे

विलंब हो रहा है, कृपया आप मेरे प्रश्नोंका उत्तर शीघ्र दीजिए। यदि आप इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सकते हों तो अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिए, और शीघ्र ही मेरे गुरुके पास चलकर उनकी शिष्यता स्वीकार कीजिए।

वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर गौतम इसी तरह चौंक पड़े जिस-तरह गाढ़ निद्रामें निमग्न कोई व्यक्ति कोई भीषणनाद सुनकर एकदम चौंक पड़ता है। लेकिन उन्होंने अपनेको शीघ्र ही सावधान कर लिया। वे अपने हृदयकी तीव्र गतिको रोकते हुए बोले—ब्राह्मण! इस तुच्छ प्रश्नका तुझे क्या उत्तर दूं। मेरे साम्हने यह प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता। मैं तेरे इस प्रश्नका उत्तर अभी दूंगा, लेकिन मैं तेरे गुरुके समक्ष ही इसे समझाऊंगा, और उन्हें अपनी विद्वत्ताका परिचय दूंगा। तू मुझे बतला, तेरे गुरु कौन हैं?

वृद्ध ब्राह्मण बोला—गौतम! आप मेरे गुरुके सम्बन्धमें जानना चाहते हैं। लेकिन मैं समझता हूं आप उनसे अपरिचित नहीं हैं। उनकी विश्व पदार्थप्रदर्शिनी-ज्ञानशक्तिसे आप परिचित अवश्य हैं। फिर भी यदि आपको उनके नाम जाननेकी इच्छा है तो सुनिए, मैं आपको बतलाता हूं—

जिनके चरणोंपर महामानी विद्वानोंके मस्तक झुक जाते हैं और जो अपने सामने संसारके पदार्थोंको जानते और देखते हैं वे महामान्य वर्द्धमान महावीर मेरे गुरु हैं।

गौतमने सुना, सुनकर वे आश्चर्यपूर्ण स्वरमें बोले—ओह! इंद्रजाल विद्यासे मानवोंको विमोहित करनेवाला और अपनेको सर्व

सर्वज्ञ घोषित करनेवाला दिगम्बर महावीर तेरा गुरु है? अच्छा चल, मैं उससे अवश्य ही विवाद करूंगा और तेरे प्रश्नका भी उत्तर दूंगा।

ब्राह्मण वेषधारी इन्द्रराज जो कुछ चाहते थे वही हुआ। वे किसी तरह ज्ञानमदसे मदोन्मत्त गौतम ब्राह्मणको भगवान् महावीरके सभास्थलमें लेजाना चाहते थे, जिसे गौतमने स्वयं ही स्वीकृत किया। वे प्रसन्न होकर बोले-विद्वन् गौतम! हम आपकी बातसे सहमत हैं, आप शीघ्र ही मेरे गुरुके पास चलिए।

(६)

महावीरके सभास्थलकी महिमा बढ़ानेवाला सभाके बीचमें एक विशाल मानस्तंभ था जिस पर जैनत्वका प्रदर्शक केशरिया झंडा लहरा रहा है। मानस्तंभके चारों ओर शांतिका साम्राज्य स्थापित करनेवाली दिगम्बर मूर्तियां विराजमान थीं। छद्मवेषधारी इन्द्रके साथ २ चलते हुए दूरसे ही मानस्तंभको देखा। उसे देखते ही उसके हृदय पर विलक्षण प्रभाव पड़ा, वह महावीरकी महत्ताका विचार करने लगा—उसके हृदयका मिथ्या अहंकार उस मानस्तंभको देखते ही कुछ कम हो गया, उसका मन अब सरल और शान्त था। सरलताके प्रवाहमें बह कर उसने वर्द्धमान महावीरके सभास्थलमें प्रवेश किया।

अनंत दीप्तिसे सूर्यमंडलकी प्रभाको लज्जित करनेवाले महावीरको उसने देखा, देवता और अगणित मानव समूह शांत नम्र और शांत हुआ उनका उपदेश सुननेको उत्सुक हुआ बैठा है। एक बार पूर्ण दृष्टिसे उन्होंने उनके शांत, सरल और विकार रहित मुख मंडलको देखा, उनकी शांत मुद्राका गौतमके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा,

उनका मन विनय और भक्तिसे नम्र हो गया। कभी किसीके साम्हने न झुकनेवाला उनका मस्तिक भगवान् महावीरके आगे झुका, उनका सारा अभिमान गलित हो गया।

हृदयका अहंकार नष्ट होते ही सद्विचारकी भावनाएं लहराने लगीं, वह बोलने लगे—अहा! जिस महात्माका इतना प्रभाव है, जिसके समवशरणकी इतनी महिमा है, बड़े ऋषि, महात्मा और तत्वज्ञानी जिसकी चरणसेवामें उपस्थित हैं, उस महात्मा महावीरसे वादविवाद करके मैं किसतरह विजय प्राप्त कर सकता हूं? इनके साम्हने मेरा वाद करना हास्य करनेके अतिरिक्त कुछ नहीं होगा। सूर्यमंडलके सामने क्षुद्र जुगनूकी समता करना, केवल अपनी मूर्खताका परिचय देना ही कहा जायगा। खेद है मुझे अपने अज्ञानका इतना अभिमान रहा, लेकिन मुझे हर्ष है कि मैंने उसकी तहको शीघ्र ही पालिया।

यह सच है जबतक कोई साधारण मानव अपने साम्हने किसी असाधारण व्यक्तिको नहीं देखता, तबतक उसे अपनी क्षुद्रताका भान नहीं होता, और उसे बड़ा अभिमान रहता है। ऊंट जबतक पहाड़की उच्च चोटीके साम्हनेसे नहीं निकलता तबतक अपनेको संसारमें सबसे ऊंचा मानता है, लेकिन पहाड़के नीचेसे आते ही उसका अपनी उच्चताका सारा अभिमान गल जाता है। मेरी भी आज वही दशा है। सत्य ज्ञान और विवेकसे रहित मैं अपनेको पूर्ण ज्ञानी मानता हुआ मैं अबतक कूपमंडूक ही बना था, लेकिन महात्माके दर्शनमात्रसे मेरा सारा भ्रमजाल भंग होगया। अब यदि मैं अपनेको वास्तविक मानव बनाना चाहता हूं तो मेरा कर्तव्य है कि मैं इनसे वादविवाद

न करूं, नहीं तो इस विवादमें मुझे सिवाय हास्य और अपमानके कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। मेरा जो कुछ गौरव आज है वह भी नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त मैं इनके उस ब्राह्मण शिष्यके प्रश्नका उत्तर देनेमें भी असमर्थ रहा, इसलिए मुझे अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार इनका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिए, ऐसे सर्व पूज्य महात्माका शिष्य बनना भी मेरे लिए एक महान् गौरवकी बात होगी। इस तरह विचार करते हुए महामना गौतमने अपने संपूर्ण शरीरको पृथ्वी तक झुका कर भगवान् महावीरको साष्टांग प्रणाम किया। मोह कर्मका परदा भंग हो जानेसे उनका हृदय सम्यग् श्रद्धा और ज्ञानसे भर गया था, उन्होंने भक्तिके आवेशमें आकर भगवान् महावीरकी सुन्दर शब्दोंमें स्तुति की, फिर उनका शिष्य बन कर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। भगवान् महावीरने अपनी करुणाकी महान् धारा बहाते हुए उसे अपनी शरणमें लिया और उसे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की। गौतमके साथ उसके दोनों बंधुओं और सभी शिष्योंने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। 'जैन धर्मकी जय' से सारा आसमान गूंज उठा।

सभास्थित सभी व्यक्तियोंने गौतमके इस समयोपयोगी सुकृत्यकी सराहना की। अभिमानके शिखर पर चढ़ा हुआ विवादी गौतम एक समयमें ही भगवान् महावीरका प्रधान शिष्य बन गया। साधुओंके गणने भी उन्हें अपना प्रधान स्वीकार किया, और उन्हें गणधरकी उपाधि प्रदान की। यह सब कार्य पलक मारते हुआ, मानो किसी जादूगरने जादू कर दिया हो, ऐसा यह सब कार्य होगया। भगवान् महावीरके यह अद्भुत आकर्षणका प्रभाव था जो अहिंसा और सत्यके

रहस्यसे विमुख मिथ्याज्ञानमें आसक्त गौतम एक क्षणमें ही मोक्ष-लक्ष्मीका महापात्र बन गया। धन्य महावीरकी सार्वभौमिक साम्यदृष्टि और धन्य महामना गौतमका सौभाग्य।

(७)

पाखंडोंका ध्वंस करनेवाली, मिथ्यावादियोंकी मदविमर्दक और सत्यार्थ धर्मका रहस्य उद्घाटित करनेवाली भगवान् महावीरकी वाणीका प्रकाश हुआ। उनकी दिव्यध्वनि द्वारा सप्ततत्व, पंचास्तिकाय, नव पदार्थ, छह कायके जीव, छह लेश्या, मुनियोंके पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति और गृहस्थोंके बारह व्रत और ग्यारह श्रेणियोंका विवेचन होने लगा। गृहस्थ और साधु जीवनके कर्तव्य समझाए जाने लगे और मानवोंके मनकी सभी शंकाओंका जाल नष्ट होने लगा।

जयतीति जैन शासनम्की पताका विश्वके प्रकाशमय उच्चाकाशमें फहराने लगी, महानवादी अपना मिथ्यामद त्यागकर भगवान्के धर्म-शासनकी शरणमें आए। क्रियाकांडोंका अकांड तांडव समाप्त हुआ। अज्ञानताका अन्धेरा भागा। अत्याचार और अनाचारोंकी आंधी रुकी, हिंसा और बलिदान प्रथाका अस्तित्व नष्ट हुआ और संसारके सभी प्राणी सुख और शांतिकी गहरी सांस लेने लगे।

कार्तिकी कृष्णपक्ष अमावस्याकी रजनी धन्य थी, उस समय कुछ तारे झिलमिल हो रहे थे, सूर्य अपना सुनहला संदेश सुनानेके लिए रात्रिकी क्षीण चादरमें छिपा हुआ मुसकुरा रहा था, अन्धतम कुछ समयमें ही अपने साम्राज्यसे हाथ धोनेको था, प्रभात होनेमें

अभी कुछ विलम्ब था। दिन और रात्रिके इस सुन्दर संगमके समयमें इन्द्रने अपने आसनको कम्पित होते देखा। उन्होंने शीघ्र ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धिको जगाया, उससे उन्हें मालूम हुआ महावीरके निर्वाणका समय आगया है। आज इसी समय रजनीके इसी क्षीण प्रकाशमें महावीरका प्रकाशमान आत्मा, मध्यलोककी स्थितिको त्याग देगा, वह लोकके सर्वोत्कृष्ट अंतिम भागमें प्रविष्ट होगा, मुक्तिलोककी अधिष्ठात्री शिवसुन्दरीका सौभाग्य आज बढ़ेगा, वह वर्द्धमान महावीरको अपना आलिंगन देकर अक्षय सुखका अनुभव करेगी! उनका हृदय हर्ष-विभोर हो गया।

पावापुरका सुरम्य स्थल पवित्र तीर्थ स्थल बन गया। देव मानव जिस जिसने सुना सबका मन प्रसन्नताके वेगसे भर गया। सभीने वहां उपस्थित होकर उनके चरणोंपर अपना मस्तक झुकाया—ललित स्वरसे उनकी स्तुतिकी, यश कीर्तन किया, विनय की और पूजा की। भक्तिका न समानेवाला सागर उनके हृदयमें उमड़ आया था। अग्निकुमार जातिके देवने जब अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना आरंभ किया, सूर्यकांतिकी मणियोंसे चमकते हुए अपने मुकुटको उसने भगवान् महावीरके चरणोंपर झुकाया। उसके कांतिपूर्ण मुकुटसे दीप्तिमान प्रभा प्रकाशित होने लगी, उस प्रचंड प्रभामें एक अद्भुत दैवी शक्ति थी, उससे अग्निकी तीव्र लहरें स्फुरित हुयीं, उन्होंने भगवान् महावीरके दिव्य शरीरको एक क्षणमें ही भस्म कर दिया। उनका आत्मा संपूर्ण कर्मजालसे मुक्त होकर लोकके अंतिम भागमें अचल रूपसे स्थिर हो गया।

उनके शरीरकी भस्मको उपस्थित संपूर्ण जनताने अपने मस्तक पर चढ़ाया और अपनेको कृतकृत्य समझा ।

संध्या समय हुआ । गणराज गौतम अब मौन रहकर अपने आत्मध्यानमें मग्न थे । अपने आत्मप्रकाशको उन्होंने देखा था, उसके ऊपर अपना परदा डालनेवाले कर्मोंकी शक्तिपर उन्होंने विचार किया । उन्होंने देखा, ध्यानकी शक्तिके आगे कर्मशक्ति अब क्षण क्षणमें क्षीण होरही है । कर्मशक्तिका संपूर्ण नाश करनेके लिए उन्होंने ध्यानका अंतिम अनुष्ठान किया । उस अनुष्ठानमें कर्मोंका क्षीण जाल जलकर भस्म होगया । उन्होंने महान् कैवल्यज्ञानको प्राप्त किया ।

मानव और देवताओंने दीपकोंके दिव्य प्रकाशसे उनका कैवल्य उत्सव मनाया, संपूर्ण दिशाएं जगमग जगमग हो उठीं, फिर सबने मिल कर उनकी केवलज्ञान लक्ष्मीका पूजन किया। दिव्य दीपकोंकी दिव्य दीप्तिसे अमावस्याका कृष्ण अंग चमक उठा। दीपमालिका उत्सव समाप्त हुआ। कार्तिकी अमावस्या सफल होगई। अपने तमपूर्ण अंचलमें कैवल्यके दिव्य प्रकाशको लेकर वह सौभाग्यवती बन गई। उसने उसे अपने सुन्दर प्रभात जीवनमें भगवान् महावीरके चिरस्मरणीय निर्वाण गौरवको धारण किया, और संध्याके अवसानमें ज्ञानलक्ष्मीके प्रकाशसे संसारको प्रकाशित किया ।

कैवल्यके प्राप्त होनेके बाद गणराज गौतमने महावीर वर्द्धमानके अहिंसा और सत्यका प्रकाश चमकाया। उसे सारे संसारमें विस्तृत किया आज वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं ।

[२२]

स्वामी समंतभद्र ।

(दृढ और तेजस्वी धर्मप्रचारक ।)

(१)

स्वामी समंतभद्र अचल आत्मश्रद्धा, दृढ़ विश्वास और अपूर्व आत्मत्यागकी जीती जागती मूर्ति थे, मनुष्यकी दृढ़ इच्छा शक्ति,-अनन्य श्रद्धा पत्थरको भी पिघला सकती है, इस बातके वे ज्वलन्त उदाहरण थे। उनके अपूर्व तेज, दृढ़ता और गौरवसे भरे हुए वाक्य हृदयमें विजलीकी झनझनाहट पैदा कर देते हैं, वे उनके शब्द वज्र-निनादसे हृदयको कंपा देते हैं। उनके आत्मविश्वासकी कोई सीमा थी, उनकी दृढ़ प्रतिज्ञाका कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है। उन्हें अपने ऊपर कितना विश्वास था, उन्हें जिनधर्म पर कितनी श्रद्धा थी, शिवलिंग टूट गया और उसके स्थानपर जिनेन्द्र प्रतिमा स्थापित हो गई—धन्य ऋषि तेज, धन्य उपासना !

सब तो भक्ति करते हैं उपासना करते हैं किन्तु वह दृढ़निश्चय—वह पूर्ण तन्मयता क्यों उत्पन्न नहीं होती? क्योंकि वह उपासना कोरी उपासना होती है, केवल मात्र उपासनाकी नकल होती है।

स्वामी समंतभद्रने उपासना द्वारा आत्माके अपूर्व उज्ज्वल, प्रकाशको देखा था, शुद्धात्माकी अलौकिक शक्तियोंकी चमकती हुई विजलीका अनुभव किया था, भक्तिकी शक्ति और उपासनाके प्रत्यक्ष फलको प्रदर्शित किया था, उनकी उपासना, वह एकाग्रचितना, वह सर्वस्व त्याग, वह तन्मयता, वह अर्पणता, वह एकनिष्ठा, अहा! वह अनुपम थी, अपूर्व थी।

यदि आज हममें उस उपासनाका शतांश भी उत्पन्न हो सके, उस सच्ची तन्मयतामें यदि हम अपनेको एक क्षणको भी निमग्न कर सकें तो क्या संसारको फिरसे जैन महिमाके जीते जागते चित्रोंका दर्शन नहीं करा सकते हैं? अवश्य, किन्तु हम तो प्रार्थनाके शब्दोंको ही कण्ठ कर लेते हैं, और उन्हें ज्योंके त्यों मूर्तिके सम्मुख पढ़ देते और मानो जैनत्वके ऋणसे अपनेको मुक्त समझ लेते हैं, किन्तु क्या ऐसी भावना रहित शुष्क प्रार्थनाओंका भी कोई मूल्य हो सकता है?

प्रार्थनाके लिये सुन्दर शब्दोंकी आवश्यकता नहीं, ढोल और मंजीरोंकी झनझनाहटकी दरकार नहीं, और न आकाश पाताल एक करनेकी ही आवश्यकता है, उसके लिए आवश्यकता है हृदयके भावोंको जाग्रत करनेकी, जरूरत है सोती हुई सत्य भक्तिको स्फुरित करनेकी, यही सच्ची प्रार्थनाका रहस्य है और वही सच्ची प्रार्थना है।

ऐसे महात्माके जन्मस्थान, उनके वंश, उनके मातापिता और

उनके अपूर्व कृत्योंका सुनिश्चित और पूर्ण परिचय प्राप्त न हो सकता, हमारी इतिहास शून्यता और अरुचिका ही प्रतिफल है, पता नहीं कितनी महान आत्माएं हमारी इतिहास शून्यताके भूगर्भमें विलीन हो गई होंगी, जिनके अस्तित्वका भी पता लगाना आज दुर्लभ है।

भारतवर्ष धार्मिकताका इतिहास है, जहां अन्य राष्ट्र कर्मके इतिहास रहे हैं, वहां भारतवर्ष कर्म विमुक्तिका इतिहास रहा है, और इस इतिहासकी अधिकांश सामग्री जैनियोंके धार्मिक ग्रंथोंमें भरी पड़ी है, किन्तु हमें अपने प्रमाद और दुर्भाग्यसे आज वह सामग्री अप्राप्त है, और हमें आज अपने इतिहासकी खोज करनेके लिए विदेशीय व्यक्तियों और उनकी खोजोंका अनुकरण और अनुसरण करनेके लिए लाचार होना पड़ रहा है।

इतिहासके विद्वानोंने स्वामीजीको राज्य वंशी घोषित किया है और यह बात बिलकुल विश्वास योग्य है, एक राज्यवंशीके हृदयमें ही इतनी प्रचंड सामर्थ्य इतना तेज प्रस्फुटित हो सकता है।

हां, तो स्वामीजीका जन्म क्षत्रिय राज्यवंशमें हुआ था और उनका नाम था शान्तिवर्मा।

बाल्यावस्थासे ही उन्हें जैन धर्मकी शिक्षा प्राप्त हुई थी, वह जैन धर्मके अनन्य श्रद्धालु और भक्त थे, जैन सिद्धान्त पर उन्हें अटूट विश्वास था। उनका मन जैन शास्त्रोंके अध्ययनमें संलग्न रहता था और सत्यान्वेषणके लिए उनका आत्मा सदैव व्यग्र रहता था। जैनधर्मकी सेवा करनेके लिए वह सदैव तत्पर रहते थे, जैनधर्म और धर्मात्मोंके ऊपर उन्हें सच्चा स्नेह था। वह अंध श्रद्धाके पक्षपाती नहीं थे। सत्य

शून्य अनुकरण उन्हें पसन्द नहीं था। वे वस्तु स्थितकी तहमें प्रवेश करनेका प्रयत्न करते थे, और सत्यकी प्राप्तिमें ही उन्हें आनन्द आता था। यही कारण था कि निकट भविष्यमें वह जैनधर्मके अद्वितीय नैयायिक और महात्मा बन गए।

(२)

यह एकान्त सत्य है कि मनुष्यका भविष्य जीवन बाल्यावस्थाकी शिक्षा और संस्कारोंकी भित्ति पर स्थिर रहता है। बालकोंको जैसी शिक्षा और संस्कार बाल्यावस्थामें प्राप्त हो जाते हैं, युवावस्थामें उसीका विकास होता रहता है, उनका आचरण बाल्यावस्थामें ही प्राप्त हुई शिक्षाके ऊपर अवलंबित रहता है।

जिन बालकोंको बाल्यावस्थासे ही धर्मचरित्र संगठन और संयम सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त हुई, उन्होंने अपनी बढ़ती हुई अवस्थामें अपनेको संसारकी बुरी वासनाओंसे बचा लिया और अन्तमें महानताको प्राप्त किया।

बाल्यावस्थाके धार्मिक संस्कारोंके कारण शांतिवर्माका जीवन वासनासे सर्वथा शून्य था। उन्होंने अपनी युवावस्थाको पवित्रताके रङ्गमें रङ्ग डाला था। लोकोपकारको ही उन्होंने अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया था, सांसारिक कार्योंके संपादनमें उन्हें किंचित् भी स्नेह और उल्लास नहीं था।

चढ़ती हुई जवानीमें जब कि युवक मदोन्मत हो जाते हैं और अपने चारित्रको कलंकित कर डालते हैं, विषय विलासके सम्मुख अपना मस्तक झुका देते हैं, और उनके दास बनते हैं, उसी जवानीकी अवस्थामें उन्होंने अपनेको बिलकुल निष्कलंक, और संयमी बना लिया था।

आप एक आदर्श युवक थे। आपके चेहरेसे पवित्रताकी एक अपूर्व ज्योति झलकती थी। सुगठित शरीर, प्रशस्त ललाट और दिव्यतेज प्रत्येक-व्यक्तिके ऊपर अपना अद्भुत प्रभाव डालता था।

आपमें एक गुण दृढ़ताका अपूर्व था। जिस कार्यको आप करना चाहते थे उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। कोई भी विघ्न बाधा कार्यको पूर्ण करनेके संकल्पसे आपको डिगा नहीं सकती थी। समयके मूल्यको भी आप खूब जानते थे, अपने प्रत्येक समयको लोकोपकार, दिव्य विचार, और ग्रन्थावलोकनमें ही व्यतीत करते थे। आलस्य तो आपको छू भी नहीं पाया था, और व्यर्थाभिमान तो किंचित् भी नहीं भाता था। हां स्वाभिमान आत्मसम्मानकी तो आप साक्षात् मूर्ति थे। किसीके असत् विचार और मिथ्या प्रशंसाको आपका हृदय सहन नहीं कर सकता था।

(३)

जिस महात्माके हृदयमें प्रबल आत्मशक्ति स्फुरित होरही होगी वह साधारण लोकसेवासे कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता, वह तो पराधीनता बंधनको तोड़कर विशाल कर्मक्षेत्रमें उतरनेका प्रयत्न करेगा।

युवक शांतिवर्माका जीवन यद्यपि लोककल्याण कामनामें ही लगा रहता था, किन्तु वह इतनेसे ही संतुष्ट नहीं थे। उनके हृदयमें संसारसे बिलकुल विरक्त होकर कल्याण करनेकी प्रबल भावना जागृत हुई।

संसारजनित किन्हीं कठिनाइयोंसे आक्रमणित होकर वह उसका त्याग नहीं करना चाहते थे, और न किसी प्रकारसे यश और प्रतिष्ठाकी उन्हें आकांक्षा थी। जो मनुष्य यश और प्रतिष्ठाके लिये अथवा

गृहस्थावस्था संबन्धी कठिनाइयोंसे भयभीत होकर संसारका त्याग करते हैं उन्हें वह आत्मवंचक समझते थे।

ऐसे शुष्क त्यागसे कुछ भी आत्मकल्याण नहीं हो सकता ऐसा वह मानते थे। त्यागके इस लक्ष्यको ही वह दूषित समझते थे, ऐसे मनुष्य सत्य और न्याय पर दृढ़ नहीं रह पाते। सिंह वृत्ति उनके चित्तमें प्रवेश नहीं कर पाती, स्वाधीनता उनसे दूर हो जाती है, प्रशंसा और यशके झकोरे उसे तपस्यासे डिगाकर अपनी २ ओर खींचते हैं, और वह त्यागी मनुष्य योग तथा भोग दोनोंकी सीमाका त्याग कर जाता है, ऐसा उनका सिद्धान्त था।

उनके हृदयमें यशकी कुछ कामना नहीं थी। वह तो केवल स्वपर कल्याणके उच्च सोपान पर चढ़नेको उत्सुक थे, इन्द्रिय दमन और मनोनिग्रहकी कठिन कसौटी पर वह अपने आत्माको कसना चाहते थे। विश्वसे "सत्वेषु मैत्रीय" का नाता जोड़ना चाहते थे और अपनेको संसारके कोलाहलसे, लौकिक प्रवृत्तिसे विमुक्त रखकर स्वतंत्रतापूर्वक भ्रमण कर अपने उपदेश द्वारा लोकको सत्यका अनुगामी बनाना चाहते थे।

अन्तमें उन्होंने अपनी दृढ़ भावनाको उपयोगमें लानेका सद्-प्रयत्न कर ही डाला और एक दिन इच्छापूर्वक गृह त्यागकर श्री गुरुके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर दिया।

गुरुने वैराग्य और लोककल्याणसे भरे हुए उनके हृदयको परखा और उन्हें जैनेश्वरी मुनि दीक्षा प्रदान की। क्षणभरमें वह सर्व-त्यागी मुनि बन गए। उनका आत्मा एक अपूर्व हर्षसे प्रभावित होगया। वह अपने जीवनको कृतकृत्य समझने लगे।

(४)

उन्होंने अपना अल्प समय ही ऋषि अवस्थामें व्यतीत कर पाया था कि पूर्वजन्मके असाता कर्मने उनके ऊपर आक्रमण किया। उन्हें महा भयानक भस्मक रोग उत्पन्न हुआ, क्षुधाकी ज्वाला उग्र रूपसे धधकने लगी, मुनि अवस्थामें जो अल्प रूखा सूखा भोजन उन्हें प्राप्त होता था वह अग्निमें सूखे तृणकी तरह भस्म होजाता था और क्षुधाकी ज्वाला उसी भयानक रूपसे जलती रहती थी, इससे उनका शरीर प्रतिदिन क्षीण होने लगा।

इस भयानक वेदनासे स्वामीजी तनिक भी विचलित नहीं हुए और इस दारुण दुःखको सातापूर्वक सहने लगे, किन्तु इस रोगने उनके लोककल्याण और जनसेवा वृत्तिके मार्गको रोक दिया था।

स्वामी समंतभद्र कायरता पूर्वक आलस्यमें पड़े रहकर अपना जीवन व्यतीत नहीं करना चाहते थे। वह अपने जीवनके प्रत्येक क्षणसे जैनधर्मकी प्रभावना और उसके सत्य संदेशसे संसारको पवित्र बनाना चाहते थे इस मार्गमें यह व्याधि कंटकस्वरूप होगई थी, इतना ही नहीं था किन्तु अब तो वह इस भयानक वेदनाके कारण शास्त्रोक्त मुनि-जीवन बितानेमें भी असमर्थ होगये थे।

वह केवल मात्र नग्न रहकर प्रतिष्ठाके इच्छुक नहीं थे उन्हें केवल मुनिवेषसे मोह नहीं था। वह नहीं चाहते थे कि मुनिवेष धारण करते हुए उसके नियमोंकी अवहेलना की जाय। यदि वास्तवमें उन्हें मुनिवेषसे मोह होता, यदि वह अपनी वेदनाकी किंचित् भी चर्चा करते तो गृहस्थों द्वारा उन्हें गरिष्ट मिष्ट स्निग्ध भोजन प्राप्त

श्री समन्तभद्रस्वामीका स्वयंभूस्तोत्र रचते ही महादेवकी पिंडी फटकर चन्द्रप्रभस्वामीकी प्रतिमा प्रकट होना व नमस्कार करना ।

(२)

उन्होंने अपना अल्प समय ही ऋषि अवस्थामें व्यतीत कर पाया था कि पूर्वजन्मके असाता कर्मने उनके ऊपर आक्रमण किया। उन्हें महा भयानक भस्मक रोग उत्पन्न हुआ, क्षुधाकी ज्वाला उग्र रूपसे धधकने लगी, मुनि अवस्थामें जो अल्प रूखा सूखा भोजन उन्हें प्राप्त होता था वह अग्निमें सूखे तृणकी तरह भस्म होजाता था और क्षुधाकी ज्वाला उसी भयानक रूपसे जलती रहती थी, इससे उनका शरीर प्रतिदिन क्षीण होने लगा।

इस भयानक वेदनासे स्वामीजी तनिक भी विचलित नहीं हुए और इस दारुण दुःखको सातापूर्वक सहने लगे, किन्तु इस रोगने उनके लोककल्याण और जनसेवा वृत्तिके मार्गको रोक दिया था।

स्वामी समंतभद्र कायरता पूर्वक आलस्यमें पड़े रहकर अपना जीवन व्यतीत नहीं करना चाहते थे। वह अपने जीवनके प्रत्येक क्षणसे जैनधर्मकी प्रभावना और उसके सत्य संदेशसे संसारको पवित्र बनाना चाहते थे इस मार्गमें यह व्याधि कंटकस्वरूप होगई थी, इतना ही नहीं था किन्तु अब तो वह इस भयानक वेदनाके कारण शास्त्रोक्त मुनि-जीवन बितानेमें भी असमर्थ होगये थे।

वह केवल मात्र नग्न रहकर प्रतिष्ठाके इच्छुक नहीं थे उन्हें केवल मुनिवेषसे मोह नहीं था। वह नहीं चाहते थे कि मुनिवेष धारण करते हुए उसके नियमोंकी अवहेलना की जाय। यदि वास्तवमें उन्हें मुनिवेषसे मोह होता, यदि वह अपनी वेदनाकी किंचित् भी चर्चा करते तो गृहस्थों द्वारा उन्हें गरिष्ट मिष्ट स्निग्ध भोजन प्रायः

श्री समन्तभद्रस्वामीका स्वयंभूस्तोत्र रचते ही
महादेवकी पिंडी फटकर चन्द्रप्रभस्वामीकी
प्रतिमा प्रकट होना व नमस्कार करना ।

हो सकता था, किन्तु इस प्रकारकी क्रियाओंको वे मुनि वेषको कलंकित करना समझते थे, और नियमविरुद्ध जीवन विताना भी वे उचित नहीं समझते थे। उस समयकी परिस्थिति उनके सामने महा भयंकर थी। उन्हें जीवनसे मोह नहीं था, शरीरको तो वह इस आत्मासे कबसे भिन्न मान चुके थे। शरीर परित्यागमें उन्हें कोई खेद नहीं था, उन्हें यदि खेद था, तो यही कि उनके लोककल्याणकी भावनाएं अभी पूर्ण नहीं हो सकी थी। शरीर द्वारा आत्मा और अन्य प्राणि-योंकी उन्नतिकी लालसा अभी उनकी तृप्त नहीं हो पाई थी, किन्तु इस महा भयंकर व्याधिके सामने उनका कुछ वश नहीं था। अन्ततः उन्होंने सन्यास द्वारा नश्वर शरीरसे अपना सम्बन्ध त्याग देनेका निश्चय किया।

सौभाग्यसे उन्हें लोक कल्याणकारी अनुभवी गुरुका संसर्ग प्राप्त हुआ था, उनमें समयोचित विचारशक्ति विद्यमान थी! उन्हें अपने प्रिय शिष्यकी भावना ज्ञात हुई। न्यायशास्त्रकी संसारमें दुन्दुभि बजाने वाले अपने प्रतिभाशाली शिष्यका असमयमें वियोग होजाना उन्हें इच्छित नहीं था। वह समझते थे कि स्वामी समंतभद्रसे लोकका भवि-ष्यमें अधिक कल्याण होगा, इनके द्वारा संसारको न्यायके रूपमें जैन दर्शन प्राप्त होगा। वह उनके जीवनको असमयमें नष्ट हुआ नहीं देखना चाहते थे किन्तु ऐसी अवस्थामें वह मुनिवेष धारण कर, रह भी नहीं सकते थे अतः। एकबार उन्होंने स्वामीजीको समीप बुलाकर कहा:—

"वत्स" तुम जिसप्रकार होसके व्याधिसे निर्मुक्त होनेका उद्योग करो और इसके लिए चाहे जहां जिस वेषमें विचरण करो। स्वस्थ

हो जानेपर तुम फिर मुनि दीक्षा धारण कर सकते हो। यदि शरीर स्थिर रहता है तब धर्म और लोकका कल्याण कर सकते हो, लौकिक और आत्मिक कल्याणके लिए शरीर एक अत्यंत आवश्यक साधन है, इस साधनको पाकर इसके द्वारा संसारकी जितनी अधिक सेवा की जा सके कर लेना चाहिए, किन्तु वह सेवा स्वस्थ शरीर द्वारा ही की जा सकती है। अस्तु, तुम कुछ समयके लिए संघसे स्वतंत्र रहकर अपने शरीरको स्वस्थ बनाओ।

स्वामीजीने अपने गुरु महाराजकी समयोचित आज्ञा स्वीकार की, इस वेष द्वारा आत्मकल्याणकी गतिको उन्होंने रुकते हुए देखा अस्तु, उन्होंने इस वेषका त्याग करना उचित समझा और दिगंबर मुद्राका त्याग कर दिया।

अब वे अपने स्वास्थ्य सुधारके लिए स्वतंत्र थे। मुनिवेषकी बाधा उन्होंने अपने ऊपरसे हटा दी थी, और यह कार्य उनका उचित ही था। पदके आदर्श अनुसार कार्य न कर सकनेपर यही कहीं अत्यंत उचित है कि उससे नीचे पदको ग्रहण कर लिया जाय किन्तु आदर्शमें दोष लगाना यह अत्यन्त घृणित और हानिप्रद है।

किन्तु इसके प्रथम तो वह दिगम्बर थे, उनके पास कोई वस्त्रादि था ही नहीं, और इस दिगंबर वेष द्वारा किसी प्रकारके वस्त्रादिकी याचना नहीं कर सकते थे, अस्तु। उन्होंने भस्मसे अपने सारे शरीरको अलंकृत कर लिया और इसप्रकार जीवनके अत्यन्त प्रिय वेषका उन्होंने परित्याग कर दिया इस वेषका परित्याग करते समय उनका हृदय कितना रोया था, मानसिक वेदनासे वह कितने संतापित हो उठे

थे मानो कोई अपना सर्वस्व खोरहा हो किन्तु वह निरुपाय थे, धर्म-रक्षाके लिए वह ऐसा करनेके लिए लाचार थे। आंसुओंसे अपने ज्वलित हृदयको सींचते हुए उन्होंने अपने हाथोंसे ही वह सब कुछ किया।

उन्होंने यह सोचकर अपने हृदयमें संतोष किया कि धर्मका पालन तो हृदयसे होता है, मेरा हृदय धर्माचरणसे परिप्लुत है, मेरा श्रद्धान खड्गके पानीकी तरह अचल है। यदि दैव विपाकसे मुझे यह वेष धारण करना पड़ रहा है किन्तु " भस्ममें छिपे हुए अंगारेकी तरह मेरा जैनत्व तो मेरे अंदर धधक रहा है।"

(५)

भिक्षुकका वेष धारण कर स्वास्थ्यलाभकी इच्छासे गुरुको प्रणाम कर उन्होंने वहांसे प्रयाण करते हुए मार्गमें उन्हें पौंड्रपुर नामक नगर मिला। उक्त नगरमें बौद्ध भिक्षुओंके लिए एक विशाल दानशाला थी जहांपर प्रतिदिन गरिष्ट और सुस्वादु भोजन भिक्षुओंको प्राप्त होता था। बस अब क्या था, स्वामीजीने शीघ्र ही बौद्ध साधुका वेष धारण कर बौद्धशालामें प्रवेश किया, और वहां कुछ दिनों तक उन्होंने निवास किया। किन्तु वहां भी उन्हें पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं हो सका और उनके रोगमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अस्तु, कुछ दिन ठहरकर ही वहांसे वह आगे चल दिए। चलते चलते दशपुर नामक नगरमें पहुंचे, वहां वैदिक धर्मकी प्रभावना थी। अतः बौद्ध वेष त्यागकर स्वामीजी भागवतधर्मीय साधु बन गए, परन्तु वहां जो सदावर्त भोजन मिलता था उससे उनके रोगमें किंचित शान्ति नहीं हुई। अस्तु, वहांसे चल कर वह वाराणसी पहुंचे।

वाणारसी उस समय शैव भक्तोंका प्रधान केन्द्रस्थान था। वहांका राजा शिवकोटि भी बड़ा भारी शिवभक्त था। उसने शिवजीका एक विशाल मंदिर निर्माण करवाया था और उसकी पूजा वह शैव ब्राह्मणोंसे षड्रस पक्वान्न और विपुल नैवेद्य द्वारा नित्य प्रति करवाता था। इस नैवेद्यकी ठाटबाट देखकर स्वामीजी तत्काल शैव ऋषि बन गए मस्तक पर जटा बढ़ा लिए कमंडलु, रुद्राक्षकी माला आदि उपकरण ले लिए और एक लंबा चौड़ा त्रिपुंड लगा कर शिवजीके मंदिरमें पहुंचे।

अनेक वेष परिवर्तन करने पर भी स्वामीजीके श्रद्धानमें किसी प्रकार भी कमजोरी उत्पन्न नहीं हुई थी। प्रबल रोगके कारण यद्यपि उनका चरित्र शिथिल हो गया था। परन्तु उनके सम्यक्त्व वा श्रद्धानमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा था। वे अत्यंत सम्यग्दृष्टि थे। उनके अन्तरंगमें सम्यक्त्वकी प्रचंड ज्वाला जगमगा रही थी। अन्तरंगके स्फुरायमान सम्यक्त्वसे और बाहरके कुलिंग वेषसे स्वामीजी उस समय ऐसे शोभित होते थे जैसे कीचड़से लिपटा हुआ अत्यंत चमकदार मणि।

मध्याह्नका समय हुआ। बड़े भारी आयोजनके साथ२ शिवजीके लिए विपुल नैवेद्य अर्पण होने लगा, शैव साधुका वेष धारण किए हुए स्वामीजी भी उस समय वहां उपस्थित थे। उन्होंने कहा—"यदि महाराजकी आज्ञा मुझे मिल जाय तो मैं यह सारा नैवेद्य भोलानाथको स्वयं भक्षण करा सकता हूं।" स्वामीजीकी बात सुनकर आश्चर्यसे शिवभक्त चौंके. उन्होंने शैव साधुके मस्तिष्कको विकृत समझा। किसी चंचल प्रकृति पुरुषने इस आश्चर्यजनक वार्ताको महाराजके कानों-तक पहुंचाया। राजाके हर्षका कुछ पारावार नहीं रहा, वह शीघ्र ही

स्वामीजीके दर्शनके लिए वहां उपस्थित हुए। उन्होंने बड़ी श्रद्धासे स्वामीजीको प्रणाम किया, और आज्ञा दी कि यह प्रसाद नवागत ऋषि महाराजके हाथोंसे शिवजीको अर्पण किया जाय। स्वामीजी तो इसके लिए तैयार ही थे। उन्होंने मंदिरके किवाड़ बन्द किए और नैवेद्य जिससे सैकड़ों ब्राह्मणोंका पेट भरता था, उदरदेवकी भेंट कर गए। यह दृश्य देख कर राजाको शैव साधु पर बड़ी श्रद्धा होगई। फिर क्या था नित्य प्रतिके लिए यही नियम होगया। लोक समझते थे कि प्रसादको शिवजी भक्षण कर जाते हैं किन्तु यह स्वामीजी ही सब सटाक जाते थे। इस प्रकार तीन चार मास तक स्वच्छन्दता-पूर्वक उन्होंने अपने उदरदेवकी पूजा की, इतने समयमें उनका भस्मक रोग बहुत कुछ उपशांत हो चुका था, अब प्रतिदिन थोड़ा २ प्रसाद शेष रहने लगा। यह देख कर शिव—भक्तोंके हृदयमें शंका उत्पन्न होने लगी।

(६)

अनेक भक्तोंका शिवजीके प्रसादसे उदर पालन होता था। स्वामीजीके कारण उनकी आजीविकामें अन्तराय आगया। इसलिए यह नवीन शिवभक्त उन्हें कांटेके समान खटकता था, किन्तु राजाकी आज्ञाके कारण वेचारोंका कुछ भी वश नहीं चलता था। शिवजीका प्रसाद बचनेसे शिवभक्तोंको यह अवसर हाथ लगा। उन्होंने अपना बदला चुकानेकी इच्छासे राजासे जाकर भोजनके बचनेका समाचार सुनाया। राजाने आकर स्वामीजीसे पूछा—"महाराज, यह भोजन क्यों बचने लगा?" स्वामीजीने कहा—"शिवजीकी क्षुधा इतने समय तक

भोजन करते करते तृप्ति होगई है, अब वह कम आहार करते हैं और इसीसे वे नैवेद्य छोड़ देते हैं।" किन्तु स्वामीजीके इस उत्तरने महाराजाके हृदयको सन्तोष नहीं पहुंचाया। अस्तु, उन्होंने वास्तविक घटनाका रहस्य समझनेके लिए शिवभक्तोंको संकेत किया, शिवभक्त तो यह चाहते ही थे, वे इस बातका पता लगानेका प्रयत्न करने लगे।

महादेवजीको बिल्वपत्र चढ़ाए जाते थे। एक ओर उनका बड़ा ढेर लगा हुआ था, शिवभक्तोंने स्वामीजीकी परीक्षाके लिए मनुष्यको उस ढेरमें छिपा दिया। उसने चुपचाप स्वामीजीकी सारी करतूतें देखीं और तत्काल ही राजासे जाकर कहा—"महाराज! यह तपस्वी तो बड़ा ढोंगी और शिवद्रोही है, इसने अबतक महाराजको भारी धोखा दिया, यह सारे नैवेद्यका तो स्वयं भक्षण कर जाता है और शिवजीको एक कण भी नहीं देता।"

पुजारीकी बातोंको सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुए, उन्होंने उसी समय स्वामीको बुलाकर उनसे कहा—तू बड़ा मायावी है, तूने मुझे इतने दिन तक बड़ा धोखा दिया। अब मैंने तेरी सारी चालाकी देखली है। अरे! तू तो कहता था कि मैं शिवजीको भोजन कराता हूँ किन्तु तू तो खुद ही सारा भोजन हड़प कर जाता है, और हां तू शिवजीको नमस्कार क्यों नहीं करता, अच्छा तू इसी समय मेरे सामने शिवजीको नमस्कार कर।

राजाकी बात सुनकर स्वामीजी तड़प उठे, उनका मस्तक गर्वसे ऊंचा हो उठा, सम्यक्त्वका तेज उनकी नसोंमें भर आया। उन्होंने गर्व-पूर्वक तेजस्वी स्वरमें कहा—"आपके शिवजी राग द्वेष युक्त हैं और

मैं राग द्वेषसे रहित श्री जिनेन्द्र देवका उपासक हूं। यह राग द्वेष युक्त देवता मेरे नमस्कारको कभी सहन नहीं कर सकते। यदि मैं इन्हें नमस्कार करूंगा तो शिवपिंडीके खंड खंड हो जायेंगे।"

स्वामीजीका ओजस्वी वक्तव्य सुनकर राजाने समझा, अवश्य यह कोई महान व्यक्ति है, किन्तु शिवजीके अपमानकी बातको स्मरण करते ही उनका हृदय क्रोधसे संतापित हो उठा। उन्होंने कहा:— भिक्षुक! व्यर्थकी बातोंसे क्या लाभ? इस पिंडीको नमस्कार कर और अपना चमत्कार दिखला, अन्यथा अपने प्राणोंके ममत्वको त्यागकर शिवजीके अपमानके प्रतिफलके लिए तैयार हो जा।

स्वामीजीने पूर्वकी ही भांति तेजस्विनी भाषामें कहा:—राजन्! आप मेरा चमत्कार देखना चाहते हैं अच्छा! देखिए? सत्यभक्त कभी मृत्युसे नहीं डरता। मृत्युको तो वह सदैव निमंत्रण देता रहता है। आप कल इसी समय आकर मेरी शक्तिकी परीक्षा कीजिये, मैं कल शिवजीको नमस्कार करूंगा।

राजाने भिक्षुकका वचन स्वीकार किया, उन्होंने उसी समय अपने सेनापतिको आज्ञा दी कि इस भिक्षुकको इसी कोठरीमें कैद कर इसके चारों ओर सख्त पहरा लगा दो और खूब सावधानी रक्खो यह कहीं भागकर न जा सके, कल सबेरे आकर मैं इसकी परीक्षा लूंगा!

स्वामीजी सिपाहियोंके सख्त पहरेके साथ २ कोठरीमें बंद कर दिए गये। अंधकारके अतिरिक्त उनका यहां कोई सहायक नहीं था।

(७)

स्वामीजीको अपने ऊपर विश्वास था। उन्हें अपनी आत्म दृढ़ता

पर अभिमान था, वह सत्यको साक्षात् करा देनेवाले महान् आत्माओंमेंसे थे, उन्होंने उसी समय आत्म उपासनामें अपनेको तन्मय कर दिया। भक्तिकी प्रचंड तरंगें उनके हृदयमें अद्भुत प्रकाश फैलाने लगीं। उन्होंने अपनी समस्त मनोकामनाएँ, समस्त इच्छाएँ प्रभुभक्तिमें परिणत करदीं भक्तिकी अपूर्व शक्तिका चमत्कार उत्पन्न हुआ। अनायास ही दिव्य प्रकाशसे सारी कोठरी प्रकाशित हो उठी। स्वामीजीने नेत्र उद्घाटित किए, उन्होंने देखा एक अपूर्व सुंदरी रमणी उनके सम्मुख उपस्थित थी, वह पद्मावतीदेवी थी। स्वामीजीकी अनन्य भक्तिसे उसका आसन विचलित हो उठा था। उसने मधुर स्वरसे कहा—"वत्स"! तुम एक सत्यनिष्ठ तपस्वी हो, तुम्हारा विश्वास वज्रके समान अटल है, तुम अपने मनमें किसी प्रकारकी चिंता मत करना, तुम्हारा समस्त कार्य सफल होगा। तुम स्वयंभूस्तोत्रकी रचना करो, बस यही स्तोत्र अपने चमत्कारसे संसारको विस्मित कर देगा, इतना कह कर देवी अदृश्य होगयी।

योगीका हृदय नवीन उल्लाससे खिल उठा। उनके अन्तःकरणका कांटा निकल गया। वे गद्गद् हो उठे। अपूर्व आभास उनका उन्नत ललाट चमक उठा। मानो उन्होंने विजयको साक्षात् प्राप्त कर लिया।

प्रातःकाल हुआ। राजाने तपस्वीकी परीक्षाके लिए शिवालयकी ओर प्रस्थान किया। नगरकी जनता उमड़ पड़ी, शिवालय जन समूहसे व्याप्त हो गया। कोठरीका द्वार उद्घाटित हुआ। स्वामीजीने राजाको दर्शन दिए। वह आत्म तेजके दिव्य प्रकाशसे विकसित हुए मुख मण्डल पर अनंत प्रदीप्त धारण किए हुए थे, उनके दिव्य कान्तिमय

भव्य मुख मण्डलको देखकर राजा कुछ समयको अवाक रह गये। उन्होंने देखा—एकान्त अंधकारमय कोठरीमें बद्ध हुए मस्तकपर मृत्युके भयंकर दंडको लटकते हुए स्वामीजीके मस्तक पर तनिक भी बल नहीं है, उन्होंने सारी शक्तिका संचय कर कहा—" भिक्षुक! परीक्षाके लिए तैय्यार हो जा।"

स्वामीने कहा—महाराज! मैं कटिबद्ध हूं। आप शिव मूर्तिकी रक्षाके लिए उसे चौवीस जंजीरोंसे कसवा दीजिए और फिर मेरे प्रतापको देखिए।

राजाकी आज्ञाका शीघ्रतः पालन किया गया।

राजाको एकबार संबोधित करते हुए स्वामीजीने फिर कहा—राजन्! मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं शिव पिंडीको नष्ट भ्रष्ट करूं किन्तु तेरा आग्रह मुझे ऐसा करनेके लिए मजबूर कर रहा है, अच्छा देख, मेरे चमत्कारको देख! यह कहते हुए स्वामी समंतभद्रने प्रभावशाली भाषामें चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति पढ़ना शुरु की। वे स्तुति उसी समय रचते जाते थे और साथ ही साथ पढ़ते भी जाते थे। इसप्रकार उन्होंने सात तीर्थंकरोंकी स्तुति समाप्त कर डाली और आठवें तीर्थंकरकी स्तुतिका प्रथम छन्द समाप्त कर उन्होंने दूसरे छन्दका " यस्यांगलक्ष्मी परिवेश भिन्नं।" को प्रारम्भ ही किया था कि तत्काल ही शिवलिंगकी सब जंजीरें अपने आप टूट गयीं और पिंडी फटकर उसमें श्री चंद्रप्रभ प्रभुकी चतुर्मुख प्रतिमा प्रकट हो गई।

महात्माके दृढ़ आत्मतेजका जीता जागता चित्र देखकर राजा अत्यन्त प्रभावान्वित हुए। उनके हृदयपर जैनधर्मके महत्वकी अविच्छिन्न

हाथ लग गई, भक्तिके उद्रेकसे पूरित होकर वह महात्माके चरणोंमें पड़ गए, बोले:-महात्मन् ! आपकी भक्तिको धन्य है, साधारणमें ऐसी असाधारण शक्तिका होना अत्यंत असम्भव है ! कृपया आप अपना आत्मपरिचय देकर कृतार्थ कीजिए। कहिए आपने किस वंशको कृतार्थ किया है और यह छद्मवेश आपको किस लिए धारण करना पड़ा। राजाकी प्रार्थना सुनकर महात्माजीने अपना निम्नाकार परिचय देते हुए कहा:-

कांच्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लांबुशे पाण्डुपिण्डः।
पुण्ड्रोण्डे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट् ॥
वाराणस्यामभूवं शशिधरधवलः पाण्डुरंगस्तपस्वी।
राजन् ! यस्यास्तिशक्तिः सवदतु पुरतो जन निर्ग्रंथवादी ॥

मैं कांची नगरीका नग्न दिगम्बर ऋषि, शरीरमें भस्मक व्याधि होनेसे पुंड्रनगरीमें बौद्ध भिक्षुक बनकर रहा। फिर दशपुर नगरमें मिष्टान्न भोजी परिव्राजक बन रहा। फिर तेरे नगर बनारसमें आकर व्याधि शान्तिकी इच्छासे शैव तपस्वी बन कर रहा। हे राजन् ! मैं जैन निर्ग्रंथ स्याद्वादी हूं, यहां जिसकी शक्ति वाद करनेकी हो, वह उपस्थित होकर मेरे सम्मुख वाद करे।

महात्माके अन्तिम शब्द बिजलीकी भांति राजाके कानोंमें गूँज उठे। उनकी अद्भुत क्षमता और उनका आत्म-परिचय प्राप्त कर राजाने समझ लिया कि यह जैनधर्मके एक समर्थ आचार्य और उत्कृष्ट विद्वान् हैं। उन्होंने अपने पूर्व कार्योंकी स्वामीजीसे क्षमा मांगी और उनकी स्तुति की।

उपर्युक्त घटनाका राजा शिवकोटिके हृदय पर अभूतपूर्व प्रभाव

पड़ा, उनको जैनधर्म पर गहरी श्रद्धा होगई उन्होंने स्वामीजीसे श्रावकके व्रत ग्रहण किए। उनके साथ २ और भी अनेक लोगोंने जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण की।

स्वामीजी भस्मक व्याधिसे मुक्त हो चुके थे, उन्होंने आचार्यके समीप जाकर पुनः अपना दीक्षा संस्कार किया और वह पुनः दिगम्बर मुनि होगए।

दिगम्बर मुनि हो जानेपर वह पुनः दीर्घतपश्चरण करनेमें तन्मय होगए और शीघ्र ही संघके आचार्य बन गए। राजा शिवकोटिने स्वामीजीके पास रहकर जैनधर्मके उच्च सिद्धान्तोंका अध्ययन किया, और वह एक अच्छे विद्वान् बन गए। कुछ दिनोंके पश्चात् उन्होंने स्वामीजीके पास जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की, और निर्ग्रंथ जैन साधु बन गए। उन्होंने प्राकृत भाषामें मुनियोंके आचार सम्बन्धी भगवती आराधना नामका एक उच्चकोटिका ग्रन्थ बनाया।

आचार्य पदवी प्राप्त कर स्वामी समंतभद्रने अनेक देशोंमें भ्रमण किया और अपनी अलौकिक वाग्मिकता द्वारा भारतके अनेक मतावलंबी विद्वानोंको परास्त कर यत्र तत्र जैन धर्मका प्रकाश किया। उनके सिंह नादसे एक समय भारतका कोना कोना गूंज उठा, कोई भी वादी उनके साम्हने वाद करनेको तत्पर नहीं होता था। वह वादके क्रीड़ा क्षेत्रमें अप्रतिद्वंदी सिंहके समान विचरण करते थे, उनकी प्रति स्पर्द्धा करनेवाला उस समय दक्षिण भारतमें ही नहीं किन्तु सारे भारतमें कोई नहीं था।"

एक समय स्वामीजी वाद करते हुए "करहाटक" नामक नगरमें पहुंचे, उस समय वह नगर वादियोंका क्रीड़ा क्षेत्र था, अनेक

उद्भट विद्वान् राजाकी सभामें रहते थे वहां पर इन्होंने रण भेरी बजाते हुए निम्नप्रकार घोषणा की थीः—

पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता।
पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये काञ्चीपुरे वैदिशे ॥
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटम्।
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम ॥
अवटु तटमटति झटिति स्फुट पटुवाचाट धूर्जटेर्जिह्वा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति सति का कथान्येषाम् ॥

विन्ध्यगिरीके एक जिन मंदिरमें एक शिलापर मल्लिषेण प्रशस्ति नामका बड़ाभारी लेख खुदा है जिसकी नकल प्रो० राइस नामके अंग्रेजने अपनी श्रवणबेलगोल नामकी पुस्तकमें प्रकाशित की है उसमें यह श्लोक अंकित है।

अर्थ—पहले मैंने पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें वादकी भेरी बजाई फिर मालवा सिन्धु देश ठक्का (ढांका-बंगाल) काञ्चीपुर वैदेशीमें भेरी बजाई, और अब बड़े बड़े विद्वान वीरोंसे भरे हुए इस करहाटक नगरको प्राप्त हुआ हूं, इस प्रकार हे राजन्! मैं वाद करनेके लिए सिंहके समान इतस्ततः क्रीड़ा करता फिरता हूं।

हे राजन्! जिसके आगे स्पष्ट वा चतुराईसे चटपट उत्तर देनेवाले महादेवकी भी जिह्वा शीघ्र ही अटक जाती है उस समंतभद्र वादीके उपस्थित होते हुए तेरी सभामें विद्वानोंकी तो कथा ही क्या है?

इस प्रकार स्वामी समन्तभद्रने सारे भारतमें भ्रमण कर अपनी अकाट्य युक्तियों द्वारा बौद्ध, नैयायिक, सांख्य आदिके एकान्तवादको

नष्टकर अनेकांतका प्रकाश फैलाया। आपकी विद्याके प्रकाशसे कुछ समयके लिए जैन धर्म उग्रदीप्तिसे प्रकाशमान होगया था।

जैन धर्म प्रचारके अतिरिक्त स्वामीजीने अनेक उच्च कोटिके न्याय ग्रंथोंकी रचना कर जैन धर्मका महान उपकार किया है। यद्यपि संस्कृत भाषाके अतिरिक्त, प्राकृत, कनडी, तामिल, आदि अनेक भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार था किन्तु उन्होंने संस्कृत भाषाके उद्धारके लिए अपने ग्रन्थोंकी रचना संस्कृतमें ही की है। यद्यपि उस समय प्राकृत भाषामें ग्रंथ निर्माण होते थे. परन्तु संस्कृत भाषाको संसारमें प्रस्तरित करनेका एक उद्देश्य उन्होंने ग्रहण किया और इस प्रकार संस्कृत भाषाका उद्धार कर संस्कृत साहित्यके इतिहासमें अपने आपको अमर बनाया।

वर्तमानमें स्वामी समन्तभद्र द्वारा बनाए हुए निम्न ग्रन्थ जैन समाजमें प्रसिद्ध हैं—गंधहस्ति महाभाष्य, युक्त्यनुशासन, स्वयंभू स्तोत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, जिनस्तुतिशतक, तत्वानुशासन, जीवसिद्धि, प्राकृत व्याकरण, प्रमाण पदार्थ, कर्मप्राभृत टीका।"

स्वामी समंतभद्रके समस्त ग्रंथोंमें गंधहस्ति महाभाष्य अत्यंत महान् ग्रन्थ है, तत्त्वार्थसूत्रकी यह सबसे बड़ी टीका है, इसकी श्लोक संख्या चौरासी हजार है। यह ग्रन्थ कितना महत्वशाली और अपूर्व होगा इसका अनुभव इसके १४० श्लोकोंके प्रारंभिक मंगलाचरणसे लगाया जा सकता है जिसे देवागम स्तोत्र व आप्तमीमांसा कहते हैं, उसपर बड़े२ टीका ग्रन्थ बन चुके हैं।

इसकी पहली टीका अष्टशती नामकी है जो ८०० श्लोकोंमें है और जिसके कर्ता वादिगजकेशरी अकलंक भट्ट हैं। दूसरी टीका

अष्टसहस्री है जिसे विद्यानंदि स्वामीने अष्टशतीके ऊपर बनाई है। एक टीका श्री वसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्तिने की है जिसे देवागम वृत्ति कहते हैं, ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथसे आज जैनियोंका शास्त्र-भंडार शून्य है यह उसके अत्यंत दुर्भाग्यकी बात है। वास्तवमें इस ग्रन्थके खो जानेसे जैनियोंका सर्वस्व ही खो गया।"

स्वामीजीके ग्रंथोंमेंसे रत्नकाण्ड श्रावकाचार और वृहत्स्वयंभू स्तोत्रका काफी प्रचार है। रत्नकाण्ड श्रावकाचार जैन समाजके प्रत्येक धार्मिक हृदय-बालकके कंठ होगा। यह श्रावकाचार छोटा किन्तु महत्व-पूर्ण ग्रन्थ है। वृहत्स्वयंभू स्तोत्रमें न्यायसे परिपूर्ण प्रार्थनात्मक श्लोकसे भक्तिके साथ साथ न्यायका अपूर्व संबंध जोड़ा गया है।

जिन शतक महा चमत्कारपूर्ण अलंकारोंसे विभूषित एवं मनोहर चित्र काव्य है। इसके पढ़नेसे स्वामीजीके शब्द चमत्कारका अपूर्व परिचय प्राप्त होता है। शेष ग्रन्थ अभी प्रकाशमें नहीं आए हैं स्वामी-जीके वह शेष ग्रन्थ भी बड़े महत्वपूर्ण होंगे।

न्याय और सिद्धान्तके अतिरिक्त काव्य और व्याकरणादि विषयोंपर स्वामीजीके लिखे हुए ग्रन्थोंका अनुमान किया जाता है किन्तु दुर्भाग्यसे अभी उनका कहीं पता नहीं है।

इसप्रकार स्वामीजीने अपने जीवनमें लोककल्याणके लिए सर्वत्र भ्रमण कर व अनेकांतके महत्वको संसारमें प्रकट किया और जैन-धर्मके झंडेको उन्नतिके उच्च गगनमें फहरा दिया।

धन्य है उनकी धार्मिक दृढ़ता और अपूर्व प्रतिभा और धन्य है उनका अमर काव्य!

[२३]

मुनिरत्न ब्रह्मगुलाल ।

(महान् भावपरिवर्तक ।)

(१)

राजकुमारके सम्मुख आज एक विवाद उपस्थित था, मित्र-मंडली उनकी बात स्वीकार नहीं करती थी। उसका कहना था—आप अनुचित प्रशंसा कर रहे हैं। उसकी कला साधारण श्रेणीकी है। उसमें भाव परिवर्तनकी वह स्वाभाविक शक्ति नहीं है जो कला-विदोंको संतोष दे सके।

राजकुमार उनकी कलाको सर्व-श्रेष्ठ प्रमाणित करना चाहते थे, उन्हें उनकी कलामें एक विचित्र आकर्षण ज्ञात पड़ता था। गुण-द्रोही दुर्जन मित्रोंको एक जैन व्यक्तिकी यह प्रशंसा असह्नीय हो उठी थी, द्वेषाग्निने प्रचंड रूप धारण कर लिया था।

एक दिनकी बात थी, राजकुमारके एक अनन्य संबंधी उस दिन आए थे। राजकुमार कलाविद ब्रह्मगुलालके भावपरिवर्तनकी प्रशंसाका लोभ संवरण नहीं कर सके।

मित्रगण उनकी प्रशंसासे आज अधिक उत्तेजित हो उठे थे। उनका एक मित्र अपने हृदयकी उत्तेजनाको नहीं रोक सका। वह बोला—इस तरहका स्वांग रच लेना एक साधारण नटका कार्य है उसमें कलाके दर्शन कहीं भी नहीं मिलते। हां, यदि वह कलाविद है तो आज हम उसकी कलाके दर्शन करना चाहते हैं, वह अपनी उच्चकोटिकी कलाका परिचय दे।

राजकुमारको ब्रह्मगुलालके स्वाभाविक कलाप्रदर्शन पर विश्वास था। वह बोले—मित्र महोदय परीक्षण कर सकते हैं।

मित्रने कहा—तब हम आज उन्हें सिंहके रूपमें देखना चाहते हैं।

राजकुमारने दृढ़तासे कहा—आप उन्हें जिस रूपमें देखना चाहते हैं, उसीमें देखेंगे। मुझे विश्वास है आपको उनके परीक्षणसे संतोष होगा।

'वेष रख लेना तो साधारण बात है। लेकिन उसमें बड़ी पराक्रम और तेज होना चाहिए' दूसरे मित्रने कहा—

'उनके लिए यह सब संभव है' राजकुमारने फिर उत्तर दिया। मित्रमंडली आज अपने हृदयकी भावनाएं पूर्ण करना चाहती थीं, उन्हें अवसर भी मिल रहा था, बोले—तब हम सिंहका पराक्रम देखनेके लिए प्रस्तुत हैं।

आपकी इच्छा पूर्ण होगी, राजकुमारने उन्हें विश्वास दिलाया।

मित्रमंडलीने उनके इस कार्यका अनुमोदन किया।

(२)

नाट्यकला विशारद ब्रह्मगुलाल पद्मावती पोरवाल जातिके एक जैन युवक थे, उनका जन्म विक्रम संवत् सोलहसौके लगभग टापा नामक नगरमें हुआ था। टापा नगरकी राजधानी सू देश थी।

ब्रह्मगुलालको बाल्यावस्थामें ही नाट्यकलासे स्नेह था। युवक होजानेपर अब उनकी नाट्यकला पूर्ण विकसित होचुकी थी।

राजकुमारकी अंतरंग परिषद्में वे अपनी कलाका प्रदर्शन किया करते थे। उनके भावपरिवर्तन पर राजकुमार और उनकी मंडली मुग्ध थी। दर्शकोंके हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लेनेकी उनमें विचित्र शक्ति थी। जो वेष वे रखते थे उनमें स्वाभाविकताके वास्तविक दर्शन मिलते थे, यह सब होते हुए भी राजकुमारकी मित्रमंडली उनसे प्रसन्न नहीं थी, वह उन्हें किसी प्रकार अपमानित करनेका अवसर देख रही थी, आज उन्हें अवसर मिल गया था, वे अत्यंत प्रसन्न थे।

(३)

राजकुमारने ब्रह्मगुलालजीको बुलाकर कहा—कलाविद् ! आज तुम्हें अपनी कलाको कुछ और ऊंचे लेजाकर उसके दर्शन कराना होंगे, मित्रमंडली आज तुम्हारी कलाका परीक्षण चाहती है।

ब्रह्मगुलालके सामने आज यह रहस्यमय प्रश्न उपस्थित हुआ था। वे रहस्यका उद्घाटन चाहते थे लेकिन—क्या आपकी मित्रमंडली अबतक मेरी कलाका परीक्षण नहीं कर सकी! कितने समयसे मैं कलाका प्रदर्शन कर रहा हूं। फिर आज यह नवीन धारा क्यों !

कलाविद् ! आज तुम्हें अपनी कलाका परीक्षण देना ही होगा,

यूं तो तुम्हारा प्रत्येक कलाका प्रदर्शन महत्वशाली और आकर्षक होगा, लेकिन आज तुम्हें कुछ और अधिक करना होगा। राजकुमारने कुछ दृढ़ताके साथ कहा।

यदि ऐसा है तो बतलाइए मुझे इस परीक्षणके लिए क्या करना होगा। जानते हो सिंहके पराक्रमको? वह तुम्हें स्पष्ट बतलाना होगा। राजकुमार रहस्यका उद्घाटन करते हुए बोले।

यह सब संभव है लेकिन आपको भी इसके लिए कुछ करना होगा। ब्रह्मगुलालजीने एक रहस्य उनके सामने रक्खा।

मैं वह सब करूंगा। बतलाइए ऐसा कौनसा कठोर कार्य है जो मेरे लिए संभव नहीं? राजकुमार बोले—

तब आपको राजराजेश्वर द्वारा एक प्राणीके वधका आज्ञापत्र लाना होगा, फिर आप अपनी रंगशालामें सिंहके पराक्रमका दर्शन कर सकेंगे। यही होगा, राजकुमारने उन्हें संतोषित करते हुए कहा—

(४)

राजकुमारकी नाट्यशाला आज विशेष रूपसे सजाई गई थी, स्वयं राजकुमार एक सुन्दर सिंहासन पर आसीन थे। उनके दोनों ओर मित्रमंडली बैठी हुई थी। नागरिक भी आज सिंहके वास्तविक दर्शनके लिए उत्सुक होकर रंगमंडपकी ओर आ रहे थे। धीरे धीरे दर्शकोंके वृहत समूहसे सम्पूर्ण सभामंडप भर गया, कहीं तिल रखनेको भी स्थान नहीं था। मित्रोंके अनुरोधसे राजकुमारने एक बकरा बुलवा लिया, जो सिंहासनके निकट ही बंधा हुआ था। उपस्थित जनताके नेत्र सिंहकी प्रतीक्षामें उत्सुक होरहे थे।

इसी समय एक भयानक सिंहने उछलते हुए सभामंडपमें प्रवेश किया, चकित दृष्टिसे मानवोंने उसे देखा, वही रूप, वही भाव, वही तेज और वही पराक्रम था। सभासद सिंहके निर्भय रूपको देखकर एक क्षणके लिए सहम गए। बालक गण सिंहकी उस विकराल मूर्तिके दर्शन कर भयसे भयभीत होकर भागने लगे, यह सब बनावटी सिंहका रूप था, लेकिन सिंहकी संपूर्ण क्रूरताओंका उसमें समावेश था। सिंह आकर राजकुमारके सामने एक तीव्र गर्जना कर कुछ क्षणको खड़ा होगया।

सिंहकी तीव्र गर्जना और विकराल रूपको देखकर राजकुमार डरे नहीं। वे उसे निश्चिन्त खड़ा देखकर वे तीव्र स्वरसे बोले—अरे! तू कैसा सिंह है? सामने बकरा बंधा हुआ है, और तू इस तरह गीदड़की तरह निश्चेष्ट खड़ा हुआ है, क्या सिंहका यही पराक्रम और शक्ति है? वास्तवमें तू सिंह नहीं है, यदि होता तो यह बकरा इस तरह तेरे सामने जीवित खड़ा रहता?

सिंहने सुना—उसके नेत्र लाल होगए, वह अपने पंजोंको ऊपर उठा कर आगे बढ़ा।

राजकुमारके मित्र यह दृश्य देख कर प्रसन्न थे। उन्होंने सोचा था। अमृतलाल अहिंसा पालक है, वह किसी प्रकारकी हिंसा हत्या नहीं कर सकेगा तब वह सिंहके कर्त्तव्य पालनमें अवश्य ही असफल होगा, और हमारी विजय होगी। यदि वह यह हिंसा कृत्य करेगा तो जैन समाजमें उसका उपहास होगा। अपने धर्मके विरुद्ध वह इस प्रदर्शनको जीव हिंसासे नहीं रंग सकेगा। वह इसी चिंतामें मग्न थे, इसी समय उन्होंने देखा।

सिंह अपने पंजोंको उठाकर एक छलांगमें राजकुमारके सिंहा-

उनके निकट पहुंच गया था । एक दहाड़ मार कर उसने अपने पंजोंसे राजकुमारको सिंहासनके नीचे पछाड़ दिया था । एक करुण चित्कारसे नाट्य मंडल गूंज उठा, दर्शकोंके हृदय किसी भयानक कृत्यकी आशंकासे कांप उठे । एक क्षण बाद ही दर्शकोंने देखा, राजकुमारका मृत शरीर सिंहासनके नीचे पड़ा हुआ था, वे सिंहके तीव्र पंजोंके आघातको नहीं सह सके थे ।

एक क्षणको नाट्य मंडलका संपूर्ण दृश्य विषादके रूपमें परिवर्तित हो गया । आनंदका स्थान शोकने ले लिया, सिंहका कृत्य समाप्त होगया था । ब्रह्मगुलाल अपने वास्तविक रूपमें थे । विषादके गहरे प्रभावके साथ नाट्य परिषदका कार्य समाप्त हुआ ।

(५)

राजाने पुत्र वधका संपूर्ण समाचार सुना, लेकिन वे निरुपाय थे । एक प्राणीके वधका आज्ञा-पत्र वह स्वयं दे चुके थे । शोकके अतिरिक्त अब उनके पास कोई उपाय नहीं था ।

पुत्रकी अकाल मृत्युसे राजाका हृदय अत्यंत शोक पूर्ण था—प्रयत्न करने पर भी वे इस शोक भारको नहीं उतार सके । ब्रह्मगुलालके इस कृत्यसे उनका हृदय एक भयंकर विद्वेषसे भर गया था । वे किसी प्रकार इसका प्रतिशोध चाहते थे । बदलेकी इस भावनाने उनके हृदयको निर्मल बना दिया था । वे अपने हृदयकी उत्तेजना दबाकर अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे, वह अवसर भी आगया ।

एक दिन उन्होंने ब्रह्मगुलालजीको अपने निकट बुलाकर कहा—कलाविद ! सिंहके भयंकर दृश्यका आपने बड़ी सफलतासे चित्रण कर

दिखलाया। आपके रौद्र रूपका दर्शन होचुका। अब मैं आपके शांत रूपका दर्शन करना चाहता हूं। आप दिगम्बर साधुका वेष धारण कर मुझे शिक्षा दीजिए, जिससे पुत्रशोकसे संतापित हृदयको शांतिलाभ हो।

महाराजकी यह आज्ञा रहस्यपूर्ण थी, इसे सुनकर ब्रह्मगुलालजी विचार-समुद्रमें बहने लगे—लेकिन उनका यह भाव शीघ्र ही भंग होगया। उन्होंने निर्णय कर लिया था, वे बोले—महाराज जो आज्ञा दें मुझे स्वीकार होगी, लेकिन इसके लिए कुछ समय आवश्यक होगा।

महाराजके मनकी इच्छा पूर्ण हो रही थी, वे प्रसन्न होकर बोले—जितना समय आवश्यक हो उतना आप ले सकते हैं, लेकिन साधुके उच्चतम उपदेश द्वारा आपको मेरे हृदयका शोक मंथन करना ही होगा। ब्रह्मगुलालजी आज्ञा लेकर अपने घर आ गए।

(६)

महाराजकी आज्ञा पालन करनेका विचार ब्रह्मगुलालजी निश्चित कर चुके थे। कार्य कठिन था, जीवनकी बाजी लगाना थी। उन्होंने सोच लिया था, साधुका पवित्र वेष दिग्दर्शन मात्रके लिए नहीं होता, एक बार उसे रखकर फिर उतारा नहीं जा सकता। यह खेल मात्र ही नहीं है, इसके अन्दर एक महान् आत्मतत्व सन्निहित है।

वैराग्य भावनाओंका चिंतन कर उन्होंने अपने हृदयको विरक्त बना लिया था। उनका सारा समय आत्मचिंतन और अध्यात्ममें व्यतीत होने लगा। विरक्तिको वे वास्तविक रूप देना चाहते थे।

उन्होंने अब अपने हृदयमें पूर्ण विरक्तिको जागृत कर लिया था। गृहजालका बंधन तोड़ने में समर्थ हो चुके थे। आत्मज्ञानके

प्रकाशसे उनकी अन्तरात्मा जगमग होगया था, वासना और विकारोंकी शृङ्खलाएं टूट चुकी थीं।

वैराग्य क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेके लिए पूर्ण तैयारी कर लेनेके पश्चात् उन्होंने अपनी पत्नी और जननी जनकके सामने यह सब रहस्य प्रकट किया, और साधु होनेके लिए उन सबसे आज्ञा मांगी।

सभी मोहासक्त थे, वैराग्यकी बात सुनकर अंतरंगका मोह उबल पड़ा। प्रचंड लहरें एकवार ब्रह्मगुलालको मोहसागरमें बहा ले जानेके लिए लहराने लगी, लेकिन उन्होंने अपने आपको इन लहरोंको बहुत ऊपर उठा लिया था, वे लहरें उनका स्पर्श भी नहीं कर सकती थीं।

अपने पवित्र उपदेश द्वारा उन्होंने जनक, जननी और पत्नीके हृदयका मोहजाल विनष्ट कर दिया। उज्वल मनकी भावनाओंके प्रभावसे उनको पूर्ण प्राप्ति हुई, ब्रह्मगुलालजी वनकी ओर चल दिए।

विपिनमें जाकर उन्होंने अपने संपूर्ण वस्त्र उतार डाले, और दिगंवर बनकर एक उज्वल शिलापर पद्मासनसे बैठ गए, फिर उन्होंने अपने हृदयके दिव्य उद्गारोंको प्रकट कर स्वयं ही साधुदीक्षा ग्रहण की।

संसार नाटकके अनेक स्वांगोंको धारण करनेवाला कलाविद् एक क्षणमें आत्मकलाका प्रदर्शक बन गया, उनका हृदय अब आत्मज्ञानसे पूर्ण था, उसमें न कोई इच्छा थी और न कोई कामना ही थी।

(७)

सवेरेका सुन्दर समय था, महाराज अपने राजसिंहासन पर विराजमान थे। मंत्री और सभासद यथास्थान बैठे थे, इसी समय साधु ब्रह्मगुलालजी प्राणी मात्रपर समभाव धारण किये हुए, मंद गतिसे चलते हुए, राजभवनकी ओर आते हुए दिखलाई दिए। राजाने दूरसे

हो उनके पवित्र भेषको देखा—वे उठे, उन्होंने आह्वानन किया। उन्हें उच्चासन पर विराजमान किया धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की।

ब्रह्मगुलालजीने पवित्र आत्मतत्वका विवेचन किया। उनका दिव्य ज्ञानोपदेश सुनकर महाराजके हृदयका शोक नष्ट हो गया—उनके मनका पाप धुल गया। अन्तस्तलमें स्थान पानेवाली विद्वेषकी ज्वाला बुझ गई। उन्हें ब्रह्मगुलालजीके पवित्र व्यक्तित्व पर आज पहले दिन ही अनन्य श्रद्धा हुई। वे हर्षित हृदय बोले—ब्रह्मगुलालजी! आपने महात्माका कर्तव्य पूर्ण तरहसे निभाया है। साधु वेष धारण कर आपने मेरे मनका शोक नष्ट कर दिया है। मैं आपके इस साधु वेषको देखकर बहुत प्रसन्न हूं, आप इच्छित वरदान मांगिए। इस समय मैं आपको सब कुछ देनेको तैयार हूं।

ब्रह्मगुलालजी पर प्रलोभनका यह एक जाल फेंका गया था परन्तु वे उसमें फंस नहीं सके। वे बोले—महाराज! एक दिगम्बर साधुके सामने आप इन अनुचित शब्दोंका प्रयोग क्यों कर रहे हैं? राजन्! जैन साधुओंके लिए राज्य वैभवकी इच्छा नहीं रहती, वे अपने आत्म वैभवके सामने उसके सामने संसारके वैभवकी परवाह नहीं करते।

नरेश्वर! मैं ममताके संपूर्ण बंधनोंको तोड़ चुका हूं, मैं निर्ग्रंथ जैन साधु हूं। मुझे आपसे किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं है। मैं तो आत्म—पथका पथिक हूं। पूर्ण स्वतंत्रता मेरा ध्येय है और आत्म-ध्यान मेरी संपत्ति, मैं अपनी संपत्तिसे संतुष्ट हूं मुझे और कुछ न चाहिये।

ब्रह्मगुलालजीके समता सिंधुकी तरंगोंमें बहनेवाले हृदयके महाराजा एकबार और भी परीक्षण करना चाहते थे। वे बोले—परन्तु

आपने यह वेष तो केवल स्वांग मात्रके लिए ग्रहण किया है। यह तो मेरी आत्मतुष्टिके लिए था, इसमें कोई वास्तविकता नहीं होना चाहिये। अब आपको यह स्वांग बदल देना चाहिए और इच्छित: वैभव प्राप्त कर अपना जीवन सुखमय व्यतीत करना चाहिए।

ब्रह्मगुलालजीके हृदयकी दृढ़ता खुल पड़ी, वे बोले—महाराज! साधुका वेष स्वांगके लिए नहीं रक्खा जाता। मुनि-दीक्षा स्वांग जैसी वस्तु नहीं है, यह तो जीवनभरके लिए त्याग और वैराग्यकी कठोर साधना है। मैं सांसारिक वैभवका त्याग कर चुका हूं. वह मेरे लिए उच्छिष्टकी तरह है। सज्ञान मानव उच्छिष्टको पुनः ग्रहण नहीं करता। मैं अब स्वांगधारी साधु नहीं रहा, मेरा अन्तरात्मा वास्तविक साधुकी साधनामें रम गया है, उसमें अब राज्यवैभवके प्रलोभनके लिए कोई स्थान नहीं है। मेरी वासनाएं मर चुकी हैं, अब तो मैं अपने साधुपदके कर्तव्यमें स्थिर हूं, अब मैं आत्मकल्याणके स्वतंत्र पथपर विचरण करूंगा, और संसारको दिव्य आत्मधर्मका संदेश सुनाऊंगा। आप मेरा मन चलित करनेका निष्फल प्रयत्न मत कीजिए।

ब्रह्मगुलालजी उठे, अपनी पिच्छिका और कमंडल उठा कर वे मृदुगतिसे जंगलकी ओर चल दिए।

तपश्चरणकी ज्वालामें उन्होंने अपने शरीरको होम दिया। वे आत्मतत्व चिंतनमें संपूर्णतया निमग्न थे। संसारको उन्होंने आजीवन पवित्र आत्म-तत्वका उपदेश दिया। लोक कल्याणकी एक उज्वल धारा प्रवाहित हो उठी, और विश्व उसमें सराबोर होगया।